प्राकृत गद्य-सोपान

डॉ. प्रेम सुमन जैन

राजस्थान
प्राकृत भारती संस्थान
जयपुर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत भारती पुष्प–२५

प्राकृत गद्य-सोपान

लेखक एवं सम्पादक
डॉ. प्रेम सुमन जैन
सह-आचार्य एवं अध्यक्ष
जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान
जयपुर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक :

देवेन्द्रराज मेहता

सचिव, राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान;

जयपुर

•

प्रथम संस्करण । 1983

•

मूल्य : 16.00 रुपये

•

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

•

प्राप्ति स्थान :

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान

3826, यति श्यामलालजी का उपाश्रय

मोतीसिंह भोमियों का रास्ता,

जयपुर—302 003 (राजस्थान)

•

मुद्रक ।

ऋषभ मुद्रणालय,

धानमण्डी, उदयपुर – 313 001

PRAKRIT GADYA-SOPANA

(Prose selection & Text Book)

by

Prem Suman Jain /Jaipur/1983

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

प्राकृत भारती संस्थान ने अब तक 25 प्रकाशन पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिये हैं। उनमें से प्राकृत भाषा एवं साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए 5-6 पुस्तकें संस्थान ने प्रस्तुत की हैं। उनका प्राकृत भाषा के प्रेमी पाठकों एवं शिक्षा-संस्थानों में समादर हुआ है। प्राकृत भाषा को प्रारम्भिक स्तर पर सीखने-सिखाने के लिए तथा प्राकृत साहित्य की विभिन्न विधाओं से परिचित कराने के लिए डॉ. प्रेम सुमन जैन ने कुछ पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से प्राकृत स्वयं-शिक्षक एवं प्राकृत काव्य-मंजरी संस्थान ने प्रकाशित की हैं। डॉ. जैन की इस तीसरी पुस्तक प्राकृत गद्य-सोपान को भी प्रकाशित करते हुए संस्थान को प्रसन्नता है कि वह प्राकृत भाषा की इन महत्त्व-पूर्ण पुस्तकों को प्राचीन भाषाओं के प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत कर उनके ज्ञानार्जन में सहयोगी बन रहा है। डॉ. जैन की इन तीनों पुस्तकों के द्वारा माध्यमिक शिक्षा से लेकर स्नातक स्तर तक की कक्षाओं में प्राकृत भाषा व साहित्य के पठन-पाठन को जारी रखा जा सकता है। धार्मिक शिक्षण संस्थाएं भी अपने पाठ्यक्रमों में प्राकृत भाषा का प्रारम्भिक शिक्षण इन पुस्तकों के माध्यम से प्रदान कर सकती हैं। डॉ. जैन ने यद्यपि प्राकृत एवं जैनविद्या के उच्च स्तरीय शोध-अनुसंधान के क्षेत्र में भी पुस्तकें लिखी हैं। किन्तु उन्होंने प्राकृत भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए प्रारम्भिक स्तर पर जो ये पुस्तकें तैयार कर संस्थान को उन्हें प्रकाशित करने का अवसर दिया है, उसके लिए संस्थान लेखक का आभारी है।

डॉ. जैन की यह पुस्तक माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अजमेर द्वारा कक्षा 9 व 10 के लिए स्वीकृत प्राकृत-पाठ्यक्रम के अनुसार है। इस तरह प्राकृत पद्य एवं गद्य दोनों की पुस्तकें संस्थान ने प्रकाशित कर दी हैं। आशा है, अजमेर बोर्ड एवं अन्य राज्यों के माध्यमिक बोर्ड भी प्राकृत भाषा के पठन-पाठन के लिए संस्थान की इन पुस्तकों का उपयोग कर सकेंगे। ये पुस्तकें प्राकृत भाषा-ज्ञान के अतिरिक्त भारतीय

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवन-मूल्यों का ज्ञान कराने में भी सक्षम हैं। लेखक ने प्राकृत साहित्य से उन सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों का चयन इन पुस्तकों में किया है, जो बालकों के जीवन-विकास के लिए आवश्यक हैं। जाति, सम्प्रदाय एवं संकीर्णता से ऊपर उठकर कोई भी पाठक इन पुस्तकों की विषयवस्तु से प्रेरणा ग्रहण कर सकता है। अत: विद्यालयों में नैतिक-शिक्षा के पठन-पाठन की पूर्ति भी इन पुस्तकों के माध्यम से हो सकती है। आशा है, प्राकृत-प्रेमी जनता एवं शिक्षाविद् संस्थान के इन प्रकाशनों का स्वागत करेंगे।

संस्थान ने प्राकृत भाषा एवं साहित्य के शिक्षण-कार्य के लिए डॉ. प्रेम सुमन जैन की उपर्युक्त तीन पुस्तकें प्रस्तुत की हैं। साथ ही प्राकृत व्याकरण-शिक्षण की नई शैली के लिए डॉ. उदयचन्द्र जैन की पुस्तक **हेम-प्राकृत व्याकरण-शिक्षण** (**खण्ड 1**) एवं खण्ड 2 (शीघ्र प्रकाश्य) पाठकों के समक्ष उपस्थित की हैं। डॉ. कमल चन्द सोगाणी की पुस्तकें **वाक्पतिराज की लोकानुभूति** एवं **आचारांग चयनिका** भी मूलत: प्राकृत-व्याकरण के ज्ञान को पुष्ट करने के लिए हैं। जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर से सम्बद्ध इन तीनों विद्वानों की नवीन शैली की प्राकृत की पुस्तकें प्रकाशित करके संस्थान गौरव का अनुभव करता है कि वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में अग्रसर हुआ है। आशा है, प्राकृत-प्रेमी समाज भी संस्थान के इन प्रकाशनों से लाभान्वित होगा।

संस्थान इस पुस्तक के शीघ्र एवं सुन्दर मुद्रण-कार्य हेतु ऋषभ मुद्रणालय, उदयपुर के प्रति धन्यवाद ज्ञापन करता है।

राजस्वरूप टांक	देवेन्द्रराज मेहता	म. विनयसागर
अध्यक्ष	सचिव	संयुक्त सचिव

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

प्राकृत भाषा में गद्य एव पद्य दोनों में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध हैं। प्राकृत के इस साहित्य को प्रकाश में लाने एवं विभिन्न स्तरों पर उसके शिक्षण को प्रोत्साहित करने के लिए जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया वि वविद्यालय, ने प्राकृत शिक्षण योजना' के अन्तर्गत कुछ पुस्तकें तैयार करने की योजना बनायी है। राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर, की माध्यमिक कक्षाओं के लिए स्वीकृत प्राकृत पाठ्यक्रम के अनुसार **प्राकृत काव्य-मंजरी** एवं **प्राकृत गद्य-सोपान** इन दो पुस्तकों को तैयार करना विभाग का दायित्व था। प्रसन्नता है कि राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर के सहयोग से ये दोनों पुस्तकें पाठकों के समक्ष समय पर प्रस्तुत हैं।

इस **प्राकृत गद्य-सोपान** में प्राकृत गद्य साहित्य के प्रतिनिधि ग्रन्थों के गद्यांश प्रायः कालक्रम से प्रस्तुत किये गये हैं। इन गद्य-पाठों में कथात्मक स्वरूप को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है। चुने हुए पाठ सरल, सार्वभौमिक एवं शिक्षा-परक हैं। इनके पठन-पाठन से प्राकृत साहित्य की लोक-चेतना उजागर होगी एवं पाठक सदाचरण के मूल्यों से सहज ही परिचित हो सकेगा। इस पुस्तक में प्राकृत आगम ग्रन्थों के प्रेरक प्रसंग हैं, महापुरुषों एवं शीलवती, साहसी और करुणामयी महिलाओं के उद्‌बोधक वर्णन हैं तथा लोक-जीवन की सरल अभिव्यक्तियां हैं। अहिंसा, मैत्री, परोपकार, साहस, पुरुषार्थ आदि जीवन-मूल्यों को सबल बनाने वाले पाठ भी इस संकलन में हैं। इस तरह यह पुस्तक केवल स्कूली शिक्षा के लिए ही उपयोगी नहीं है, अपितु विभिन्न स्तर के पाठक भी इससे लाभान्वित हो सकेंगे और प्राकृत साहित्य का रसास्वादन कर सकेंगे।

प्राकृत कथा एवं चरित साहित्य के ग्रन्थों में गद्य का प्रयोग अधिक हुआ है, किन्तु आगम-साहित्य, नाटक साहित्य एवं शिलालेखों में भी प्राकृत गद्य के नमूने

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध हैं। उन सबका प्रतिनिधित्व इस पुस्तक में किया गया है। पुस्तक के अन्त में संक्षेप में प्राकृत गद्य साहित्य का परिचय भी दिया गया है। कुछ पाठों में महाराष्ट्री प्राकृत के अतिरिक्त अर्धमागधी, शौरसेनी, मागधी आदि के भी प्रयोग हैं। अतः इन विभिन्न प्राकृतों का संक्षिप्त परिचय भी पुस्तक में दिया गया है। विशेष जानकारी शिक्षक से एवं अन्य ग्रन्थों से प्राप्त की जा सकेगी। प्राकृत साहित्य का अर्थ स्वतन्त्र रूप से और सही किया जाय इस दृष्टि से इस पुस्तक के पाठों का हिन्दी अनुवाद भी परिशिष्ट में दे दिया गया है। आशा है, विद्यार्थी एवं शिक्षक दोनों के लिए यह उपयोगी होगा। प्राकृत भाषा एवं व्याकरण के ज्ञान के लिए हमने इसके पूर्व 2-3 पुस्तकें प्रकाशित कर दी हैं। अतः इस पुस्तक में व्याकरण की सामान्य जानकारी ही दी गयी है। प्राकृत प्रेमियों द्वारा यह पुस्तक पसन्द की जायेगी, ऐसी आशा है।

आभार :

इस प्राकृत गद्य-सोपान में जिन ग्रन्थकारों, सम्पादकों एवं उनके ग्रन्थों से जो सामग्री ली गयी है उसका यथास्थान सन्दर्भ दे दिया गया है। इन सब प्राचीन एवं नवीन ग्रन्थकारों एवं सम्पादकों के हम आभारी हैं। पुस्तक को इस रूप में प्रस्तुत करने में आदरणीय डॉ. कमलचन्द सोगाणी, दर्शन-विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, डॉ. उदयचन्द्र शास्त्री, जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग, एवं अन्य मित्रों, स्वजनों के मार्गदर्शन व सहयोग के लिए मैं आभारी हूँ।

इस पुस्तक के प्रकाशन एवं मुद्रण-कार्य में श्रीमान् देवेन्द्रराज जी मेहता (सचिव), श्रीमान् म. विनयसागर जी (संयुक्त-सचिव), राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर के सक्रिय सहयोग के लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। श्री महावीर प्रसाद जैन, ऋषभ मुद्रणालय, उदयपुर को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने यथाशीघ्र पुस्तक का मुद्रण-कार्य सम्पन्न कर दिया।

प्रेम सुमन जैन

'समय'
२९, सुन्दरवास (उत्तरी)
उदयपुर (राजस्थान)

२३ सितम्बर, १९८३

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

(क) प्राकृत व्याकरण-अभ्यास पृष्ठ 2-23

पाठ १. कारक एवं विभक्तियां : 2-15

1. गिह-उववनं [षष्ठी विभक्ति]
2. विज्जालयं 3. उदाहरण वाक्य [" "]
4. कुडुम्बं [द्वितीया विभक्ति]
5. पभायवेला 6. उदाहरण वाक्य [" "]
7. गुणगरिमा 8. उदाहरण वाक्य [सप्तमी "]
9. दिणचरिया 10 उदाहरण वाक्य [तृतीया "]
11. सरोवरं 12 उदाहरण वाक्य [चतुर्थी "]
13. लोअ-सरूवं 14 उदाहरण वाक्य [पंचमी "]
15. नियम : कारक-शब्दरूप : 16

पाठ २. वत्तालावं : 19

पाठ ३. जीवलोओ : 20

पाठ ४. अम्हाणपुज्जणीआ : 22

(ख) प्राकृत गद्य-संग्रह पृष्ठ 24-121

पाठ ५	विज्जाविहीणो नस्सइ :	उत्तराध्ययनटीका	24
पाठ ६.	लोहस्स न अंतो :	"	27
पाठ ७.	असंतोसस्स दोसो :	उत्तराध्ययनचूर्णि	31
पाठ ८.	मेरुप्पभस्स हत्थिणो अनुकंपा:	ज्ञाताधर्मकथा	33
पाठ ९.	नंद मणिआरस्स जणसेवा :	"	36
पाठ १०.	कण्हेण थेरस्स सेवा :	अन्तकृद्दशा	41
पाठ ११.	कलहो विणास-कारणं :	निशीथविशेषचूर्णि	44
पाठ १२.	धुत्तो सागडिओ च :	दशवैकालिकचूर्णि	47

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ १३. कयग्घा वायसा	:	वसुदेवहिण्डी	49
पाठ १४. सिप्पी कोक्कासो	:	"	52
पाठ १५. अग्गिसम्मस्स पराहवं	:	समराइच्चकहा	55
पाठ १६. गुणसेणं पइ नियाणो	:	"	60
पाठ १७. मित्तस्स कवडं	:	कुवलयमालाकहा	67
पाठ १८. धणदेवस्स पुरिसत्थं	:	"	71
पाठ १९. णरवइणो ववहारो	:	चउप्पन्नमहापुरिसचरियं	74
पाठ २०. चन्दनबाला	:	मनोरमाकहा	77
पाठ २१. जहा गुरू तहा सीसो	:	रयणचूडरायचरियं	82
पाठ २२. मयणसिरीए सिक्खा	:	"	84
पाठ २३. दमयंती-सयंवरो	:	कुमारवालपडिबोह	87
पाठ २४. विज्जुपहाए साहस-करुणा	:	आरामसोहाकहा	92
पाठ २५. वरस्स णिण्णयं	:	रयणसेहरनिवकहा	97
पाठ २६. सेट्ठुयमा पुत्तलिगा	:	पाइअविन्नाणकहा	101
पाठ २७. परोवगारिणो पक्खिणो	:	सिरिचंदरायचरियं	105
पाठ २८. साहु-जीवणं	:	रयणवालकहा	109
पाठ २९. चेडस्स धम्मबुद्धि	:	मृच्छकटिकं	112
पाठ ३०. अंगुलीअयस्स पत्ति	:	अभिज्ञानशाकुन्तलं	114
पाठ ३१. कवि-गोट्ठी	:	कर्पूरमंजरी	117
पाठ ३२. पाइय-अहिलेहाणि	:	अशोक के शिलालेख	119

(ग) प्राकृत भाषा एवं साहित्य पृष्ठ 122 - 140

१. प्रमुख प्राकृत भाषाएं 122
२. प्राकृत गद्य साहित्य की रूपरेखा 126
(आगम, कथा, चरित, नाटक, एवं शिलालेखी साहित्य)

(घ) परिशिष्ट पृष्ठ 141 - 202

१. गद्य-पाठों का हिन्दी अनुवाद 141
२. अपठित प्राकृत गद्यांश 199

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत गद्य-सोपान

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(क) प्राकृत व्याकरण–अभ्यास

पाठ 1 : कारक एवं विभक्ति

1. गिह-उववनं [षष्ठी विभक्ति]

तं मज्झ गिहं अत्थि। इमं तुज्झ गिहं अत्थि। तस्स गिहं तत्थ अत्थि। ताअ गिहं अत्थ ण अत्थि। इमस्स गिहं कत्थ अत्थि ? कस्स गिहं दूरं अत्थि ? गिहस्स सामी मज्झ जणओ अत्थि। मज्झ जणणी तत्थ वसइ। मज्झ वहिणी तत्थ पढइ। मज्झ भायरो तुज्झ मित्तं अत्थि। अहं तस्स पोत्थअं णेमि।

इमं अम्हाण उववनं अत्थि। तुम्हाण मित्ताणि अत्थ खेलन्ति। ताण पुत्ता तत्थ धावन्ति। इमाण भायरा तत्थ ण गच्छन्ति। काण मित्ताणि तत्थ जीमन्ति ? उववनस्स इमे रुक्खा सन्ति। इमाणि ताण पुप्फाणि सन्ति। इमं णयरस्स सुंदेरं उववनं अत्थि। अत्थ कमलस्स पुप्फं अत्थि। पुप्फस्स लआ अत्थि। कमलाण पुप्फाण माला सोहइ। अत्थ वारिणो णई ण अत्थि। अम्हाण गिहस्स अण्णअरो वत्थुणो मुल्लं पुच्छइ। तस्स वत्थूण आवणो अत्थि।

अभ्यास

(क) हिन्दी में अर्थ लिखो : (ख) षष्ठी के रूप लिखो :

शब्द	अर्थ	पहिचान	शब्द	ए.व.	ब.व.
मज्झ	मेरा	(सर्व.ए.व.)	बालअ	बालअस्स	बालआण
तुज्झ	.....	.....	कवि	.....	.....
तस्स	.....	.....	साहु	.....	.....
ताअ	.....	.....	बाला	.....	.....
कस्स	.....	.....	नई	.....	.....
गिहस्स	.....	.....	धेणु	.....	.....

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

2. विज्जालयं [षष्ठी विभक्ति]

इमं सोहणस्स विज्जालयं अत्थि। अत्थ तस्स भायरा मित्ताणि य पढन्ति। विज्जालयस्स तं भवणं अत्थि। इमं तस्स दारं अत्थि। तत्थ तस्स खेत्तं अत्थि। चन्दणाअ बहिणी अत्थ पढइ। ताअ अभिहाणो कमला अत्थि। कमलाअ गुरू विउसो अत्थि। विउसाण गुरुणो सीसा विणीआ होन्ति। विणीअस्स सीसस्स णाणं वरं होइ। सोहणस्स इमं पोत्थअं अत्थि। ताणि पोत्थआणि तस्स मित्ताण सन्ति। तस्स भायराण पोत्थआणि काणि सन्ति ?

इमा कमलाअ लेहणी अत्थि। ताअ सहीए इमा माला अत्थि। मालाअ रंगं पीअं अत्थि। कमलाअ सहीण मालाण मुल्लं अप्पं अत्थि। इमं विज्जालयं बालआण अत्थि। तं विज्जालयं बालाण अत्थि। तत्थ विउसाण सम्माणं हवइ। अत्थ गुरूण पूआ हवइ। अत्थ बालआ पढन्ति। तत्थ बालाओ पढन्ति।

अभ्यास

(क) नये शब्द छांटकर लिखो :

शब्दरूप	मूलशब्द	विभक्ति	वचन
सोहणस्स	सोहण	षष्ठी	ए.व.
.....	.....	.....	.....
.....	.....	.....	.....
.....	.....	.....	.....
.....	.....	.....	.....

(ख) प्राकृत में अनुवाद करो :

वह मेरी पुस्तक है। यह तेरा घर है। वह किसका पुत्र है ? ये पुस्तकें तुम्हारी हैं। वहाँ कुलपति का शासन है। यह बच्चों का उपवन है। माला की दुकान कहाँ है ? यह युवति का भाई है। गाय का दूध मीठा होता है। यह फल का वृक्ष है। वह पानी की नदी है। वह फलों का रस है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

3. उदाहरण वाक्य [षष्ठी विभक्ति]

इदं रामस्स पोत्थअं अत्थि	=	यह राम की पुस्तक है।
तं छत्तस्स घरं अत्थि	=	वह छात्र का घर है।
इदं रुक्खस्स पत्तं अत्थि	=	यह वृक्ष का पत्ता है।
तं गंगाअ जलं अत्थि	=	वह गंगा का जल है।
सो धणस्स हेउणो पढइ	=	वह धन के कारण पढ़ता है।
रामो माआअ सुमरइ	=	राम माता को याद करता है।
छत्ताणं रामो सेट्ठो	=	छात्रों में राम श्रेष्ठ है।
घरस्स उवरिं किं अत्थि	=	घर के ऊपर क्या है ?
पोत्थअस्स पढणं वरं	=	पुस्तक का पढ़ना अच्छा है।

अभ्यास

(क) प्राकृत में अनुवाद करो :

वह मेरी पुस्तक है। यह उनका खेत है। बालक का पिता जाता है। यह बाजार का मार्ग है। गंगा का जल मीठा है। धन के हेतु विद्या को पढ़ो। सोहन पिता को याद करता है। नारियों में सीता श्रेष्ठ है। पेड़ के सामने बालक है। बालकों में मोहन चतुर है। बालक का सोना ठीक है। धन का दाता कौन है ?

(ख) नियम याद करें एवं उदाहरण शिक्षक से समझें :

1- सम्बन्ध कारक के अर्थ में षष्ठी होती है।

2- हेतु शब्द के साथ षष्ठी विभक्ति होती है।

3- स्मरण के अर्थ वाली क्रिया के साथ कर्म में षष्ठी होती है।

4- श्रेष्ठता बताने के अर्थ में, जिससे श्रेष्ठ बताया जाय उसमें षष्ठी होती है।

5- उवरिं, अग्गं, पच्छा, अहो आदि शब्दों के साथ षठी होती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

4. कुडुम्बं [द्वितीया विभक्ति]

इमं मम कुडुम्बं अत्थि। जणओ कुडुम्बं पालइ। सो ममं णेहं करइ। मज्झ भायरो तुमं जाणइ। मज्झ जणओ पोत्थअं पढइ। जणणी तं दुद्धं देइ। तुज्झ बहिणी कमला अत्थि। माअ तं पासइ। इमो अम्हाण पिआमहो अत्थि। अम्हे इमं नमामो। तुम्हे किं नमित्था ? माउलो अम्हे वत्थं देइ। सो तुम्हे धणं देइ। भाउजाया ते नमइ। ते ताओ बहूओ पासन्ति। बहिणी इमे भायरा पत्ताणि लिहइ। भायरा इमाओ बहिणीओ धणं पेसन्ति। माआ के पुत्ता इच्छइ? ताओ काओ कन्नाओ साडीओ देन्ति ?

अभ्यास

(क) पाठ में से द्वितीया विभक्ति के सर्वनाम रूप छाँटकर उनके अर्थ लिखो।

(ख) द्वितीया विभक्ति के शब्दरूप छांटकर उनके अर्थ लिखो।

(ग) कुटुम्ब के सदस्यों के प्राकृत शब्द लिखो :

पिता, भाई, छोटा भाई, माता, बहिन, पितामह, मामा, भौजी (भाभी), बहू पुत्र, कन्या।

(घ) प्राकृत में अनुवाद करो :

मित्र मुझको जानता है। वह तुमको पूछता है। माता उसको पालती है। कन्या उस स्त्री को नमन करती है। मैं इसको नहीं जानता हूँ। तुम किसको पत्र लिखते हो ? गुरु उन सबको जानते हैं। वे तुम सबको पूछेंगे। तुम इन सबको नमन करो।

(ङ) क्रियाएँ याद करो :

वस	= रहना	सोह	= अच्छा लगना	धाव	= दौड़ना
परिवट्ट	= बदलना	उपप्प	= उत्पन्न होना	आव	= आना
जाय	= पैदा होना	वीह	= डरना	गिण्ह	= ग्रहण करना
मग्ग	= मांगना	अच्च	= पूजा करना	धोव	= धोना

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

5. पभायवेला [द्वितीया विभक्ति]

इमं पभायं अत्थि । बालआ जग्गन्ति । ते जणअं नमन्ति । बालाओ जणाणि नमन्ति । सोहणो णियं करं पायं य धोवइ । सो णहाणं करइ । तया ईसरं नमइ । कमला उववनं पासइ । तत्थ पक्खिणो गीयं गान्ति । पुप्फाणि वियसन्ति । भमरा गुंजन्ति । बालआ कंदुअं खेलन्ति । छत्ता पोत्थआणि पढन्ति । कवी कव्वं लिहइ । गुरू सत्थं पढइ । किसाणो खेत्तं गच्छइ । सेवओ कज्जं करइ । बालआ विज्जालयं गच्छन्ति ।

गुरू विज्जालयं गच्छइ । तत्थ सो बालआ पुच्छइ । विणीआ छत्ता तत्थ पाइअं पढन्ति । ते गाहाओ सुणन्ति, कलाओ सिक्खन्ति, आयरियं नमन्ति ।

पभायं सुंदेरं हवइ । माआ बालं दुद्धं देइ । धूआ माअं नमइ । इत्थी मालं धारइ । सा जुवइं पासइ । जुवई नइं गच्छइ । तत्थ सा बहुं पुच्छइ । बहू धेणुं दुहइ । सा सासुं दुद्धं देइ । पुरिसो णयरं गच्छइ । तत्थ दुद्धं विक्कीणइ, फलाणि कीणइ तया घरं आगच्छइ ।

अभ्यास

(क) द्वितीया विभक्ति के शब्द छांटकर उनका अर्थ लिखो :

पुल्लिंग ....

नपुं. लिंग ....

स्त्रीलिंग ....

(ख) प्राकृत में अनुवाद करो :

पिता बालक को पालता है। राजा कवि को जानता है। हम साधु को नमन करते हैं। विद्वानों को कौन नहीं जानता है ? तुम जीव को न मारो। स्त्री माला को धारण करती है। बहू साड़ी को चाहती है। आदमी गायों को देखता है। बालक फलों को चाहते हैं। छात्र शास्त्र को पढ़ते हैं। वे वस्तुओं को नहीं चाहते हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

6. उदाहरण वाक्य [द्वितीया विभक्ति]

मोहणो विज्जालयं गच्छइ	=	मोहन विद्यालय को जाता है।
सो पण्हं पुच्छइ	=	वह प्रश्न को पूछता है।
अहं पोत्थअं पढामि	=	मैं पुस्तक को पढ़ता हूँ।
गामं अहिओ जलं अत्थि	=	गांव के दोनों ओर जल है।
दुज्जणं धिअ	=	दुर्जन को धिक्कार है।
विज्जं बिणा णाणं नत्थि	=	विद्या के बिना ज्ञान नहीं है।
अहं गामं गच्छामि	=	मैं गांव को जाता हूँ।
सो निवं नमइ	=	वह नृप को नमन करता है।
पुत्तो जणअं पहं पुच्छइ	=	पुत्र पिता से रास्ता पूछता है।

अभ्यास

(क) प्राकृत में अनुवाद करो :

मैं घर जाता हूँ। वह पिता को नमस्कार करता है। बालक सत्य कहता है। गुरु प्रश्न पुछता है। नगर के दोनों ओर जल है। राम के बिना सुख नहीं है। वह पुस्तक चुराता है। सोहन गाय को दुहता है। राम पुस्तक को मांगता है। जिनसेन कथा को कहता है।

(ख) नियम याद करें एवं उदाहरण शिक्षक से समझें :

1- कर्त्ता के अभीष्ट कार्य में द्वितीया विभक्ति होती है।

2- गमन (चलना, जाना आदि) के अर्थ वाली क्रियाओं के साथ द्वितीया विभक्ति होती है।

3- द्विकर्मक क्रियाओं के साथ गौण कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

4- अहिओ, परिओ, सव्वओ, पइ, धिअ, बिणा आदि शब्दों के साथ वाले शब्द में द्वितीया होती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

7. गुण-गरिमा [सप्तमी विभक्ति]

सव्वे पाणा चेअणगुणा हवन्ति । तेसु णाणं होइ । जहा अम्हम्मि जीवणं अत्थि तहा तुम्हम्मि वि । अचेअणदव्वेसु पाणा ण सन्ति । किन्तु तेसु गुणा हवन्ति । जहा–फले रसं अत्थि, पुप्फे सुयंधो अत्थि, दहिम्मि घअं अत्थि, जले सीयलआ अत्थि, अग्गिम्मि उण्हआ अत्थि । सरोवरे कमलाणि सन्ति । कमलेसु भमरा सन्ति । रुक्खेसु फलाणि सन्ति । नीडे पक्खिणो सन्ति । नईए नावा तरन्ति ।

घरे जणा निवसन्ति । पुरिसेसु खमा वसइ । जुवाणेसु सत्ति होइ । जुवईसु लज्जा अत्थि । तासु सद्धा अत्थि । बालए सच्चं अत्थि । छत्तो विनयं अत्थि । विउसम्मि बुद्धी अत्थि । सिसुम्मि अण्णाणं अत्थि । किन्तु साहुम्मि तेओ अत्थि । माआए समप्पणं अत्थि । धेणूए दुद्धं अत्थि । बहूए गुणा सन्ति । मालाए पुप्फाणि सन्ति । गअणे तारआ सन्ति । गुणेण बिणा किं वि वत्थू ण अत्थि ।

अभ्यास

(क) हिन्दी में अर्थ लिखो :

शब्दरूप	अर्थ	पहिचान
तेसु	उनमें	सर्व,ब.व.
अम्हम्मि	.....	... .
दव्वेसु	.....	.....
फले	.....	.....
दहिम्मि	.....	.....
नईए	.....	.....
मालाए	.....	.....

(ख) सप्तमी के रूप लिखो :

शब्द	ए.व.	ब.व.
अम्ह	अम्हम्मि	अम्हेसु
तुम्ह	.....	.....
त	.....	.....
णर	.....	.....
बहू	.....	.....
कवि	.....	.....
बाला	.....	.....

(ग) प्राकृत में अनुवाद करो :

मुझ में शक्ति है । उसमें जीवन है । उस (स्त्री) में लज्जा है । हम सब में क्षमा है । बालकों में विनय है । साड़ी में फूल हैं । वृक्षों पर पक्षी हैं । घरों में बालक हैं ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

8. उदाहरण वाक्य [सप्तमी विभक्ति]

सो विज्जालये पढइ	=	वह विद्यालय में पढ़ता है।
ते घरे वसन्ति	=	वे घर में रहते हैं।
छत्ते विनयं अत्थि	=	छात्र में विनय है।
णरे सत्ती अत्थि	=	मनुष्य में शक्ति है।
नईसु नावा तरन्ति	=	नदियों में नाव तैरती हैं।
तुज्झ पढणे अहिलासा अत्थि	=	तुम्हारी पढ़ने में अभिलाषा है।
मज्झ धम्मे वीसासो अत्थि	=	मेरा धर्म में विश्वास है।
कमले भमरो अत्थि	=	कमल पर भौंरा है।
सत्थे विज्जा वसइ	=	शास्त्र में विद्या रहती है।
जणओ पुत्ते सिणेहं करइ	=	पिता पुत्र पर स्नेह करता है।
मज्झ गुरुम्मि आयरो अत्थि	=	मेरा गुरु पर आदर है।
रामो विज्जाए निपुणो अत्थि	=	राम विद्या में निपुण है।
सो पढणे लग्गो	=	वह पढ़ने में लगा है।
कवीसु कालिदासो सेट्ठो	=	कवियों में कालिदास श्रेष्ठ है।

अभ्यास

(क) प्राकृत में अनुवाद करो :

मनुष्य में जीवन है। विद्यालय में छात्र हैं। बालक में विनय है। जल में कमल हैं। उसकी खेलने में रुचि है। तुम्हारा मोक्ष में विश्वास है। माता कन्या पर स्नेह करती है। मोहन की पिता पर श्रद्धा है। सोहन शास्त्र में निपुण है। वह कार्य में लगा है।

(ख) नियम याद करें एवं उदाहरण शिक्षक से समझें :

1- आधार स्थान में सप्तमी विभक्ति होती है।

2- किसी विषय में रुचि, विश्वास, श्रद्धा, आदर, स्नेह आदि के साथ सप्तमी होती है।

3- संलग्न एवं चतुर अर्थ वाले शब्दों के साथ सप्तमी होती है।

4- तुलना के अर्थ में षष्ठी, सप्तमी दोनों विभक्ति होती हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

9. दिणचरिया [तृतीया विभक्ति]

सुज्जस्स किरणेण सह जणा जग्गन्ति । बालआ जणएण सह उट्ठन्ति, जलेण मुहं पक्खालन्ति । जणा मन्दिरं गच्छन्ति । तत्थ ते देवं णयणेहिं पासन्ति । ते सिरेण हत्थेहि देवं नमन्ति । मुहेण देवस्स थुइं पढन्ति। ते पुप्फेहि फलेहि य देवं अच्चन्ति । जणा आयरियेण सत्थं सुणन्ति । सत्थेण बिणा मन्दिरस्स सोहा णत्थि । जहा धणेण अहवा गुणेण बिणा नरस्स सोहा णत्थि ।

देवं अच्चिऊण जणा भुंजन्ति । ते भिच्चेण सह आवणं गच्छन्ति । बालओ मित्तेण सह विज्जालयं गच्छइ । जुवई हत्थेहि वत्थं धोवइ । सा साडीए सोहइ । माआ सिसुणो सह खेलइ । सिसू तत्थ पएण चलइ । सो मित्तेण सह खेलइ, कंदुएण रमइ । तेण तं सुक्खं होइ । सो माआए बिणा ण भुंजइ ।

माआ जरेण पीडइ । ताए गिहस्स कज्जं ण होइ । तुमए ताअ सेवा होइ । सा दहिणा सह पत्थं गेण्हइ । घरेण बिणा सुहं णत्थि । जणा गेहे वसन्ति । ताण णेहेण गिहस्स सोहा होइ ।

अभ्यास

(क) पाठ में से तृतीया विभक्ति के शब्दरूप छांटकर उनके अर्थ लिखो ।

(ख) प्राकृत में अनुवाद करो :

यह कार्य मेरे द्वारा होता है । वह कार्य उसके द्वारा होता है । वह बालक के साथ जायेगा । हम शिष्य के साथ भोजन करते हैं । गुरु छात्रों के साथ रहता है । कवि के द्वारा कार्य होता है । वह साधु के साथ पढ़ता है । माता बच्चों के साथ रहती है । बालिका के साथ उसका भाई जाता है । बच्चे मालाओं से खेलते हैं । फलों के बिना वह भोजन नहीं करता है । मैं दही के साथ भोजन करता हूँ । वस्तुओं के साथ क्या है ?

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

10. उदाहरण वाक्य [तृतीया विभक्ति]

इदं कज्जं छत्तेण होइ	=	यह कार्य छात्र के द्वारा होता है।
सोहणो जलेण मुहं पच्छालइ	=	सोहन जल से मुंह धोता है।
सो दंडेण मारइ	=	वह दण्ड से मारता है।
सा कंदुएण खेलइ	=	वह गेंद से खेलती है।
पिआ पुत्तेण सह गच्छइ	=	पिता पुत्र के साथ जाता है।
दुज्जणेण सीसेण किं पयोअणं	=	दुर्जन शिष्य से क्या प्रयोजन ?
गुरू कहइ–अलं विवाएण	=	गुरु कहता है–झगड़ा मत करो।
वीरो सहावेण साहू	=	वीर स्वभाव से साधु है।
फलं रसेण महुरं अत्थि	=	फल रस से मीठा है।
जलं बिणा कमलं नत्थि	=	जल के बिना कमल नहीं है।
सो कण्णेण बहिरो अत्थि	=	वह कान से बहरा है।

अभ्यास

(क) प्राकृत में अनुवाद करो :

वह कलम से लिखता है। मैं जल से मुंह धोता हूँ। राम दन्ड से खेलता है। गुरु शिष्य के साथ जाता है। दुष्ट पुत्र से क्या लाभ ? पिता कहता है–हंसो मत। माता स्वभाव से सरल है। मोहन पांव से लंगड़ा है। बालक के बिना घर अच्छा नहीं लगता।

(ख) नियम याद करें एवं उदाहरण शिक्षक से समझें :

1- सबसे अधिक सहायक साधन में तृतीया विभक्ति होती है।

2- सह, समं आदि के साथ तृतीया होती है।

3- किं, अत्थं, पयोअणं आदि के साथ तृतीया होती है।

4- अलं (बस, मत) तथा बिना के साथ तृतीया होती है।

5- प्रकृति, स्वभाव और अंगविकार के अर्थ में तृतीया होती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

11. सरोवरं [चतुर्थी विभक्ति]

इमं गामस्स सरोवरं अत्थि। तत्थ जणा ण्हाणं करिउं गच्छन्ति। तस्स जलं जणस्स अत्थि। सरोवरे कमलाणि सन्ति। ताणि कमलाणि मज्झ सन्ति। सरोवरस्स तडे रुक्खा सन्ति। ताण पुप्फाणि तुज्झ सन्ति। ताण फलाणि तस्स सन्ति। ताअ बालाअ सरोवरे किं अत्थि? तत्थ अम्हाण देव-मन्दिरं अत्थि। अत्थ तुम्हाण सज्झायसाला अत्थि। ताण बालआण तत्थ रम्मं उववनं अत्थि। तत्थ ते खेलन्ति।

सरोवरे हंसा चलन्ति। जलस्स जंतुणा तत्थ निवसन्ति। तत्थ कविणो सुहं हवइ। सो तत्थ कव्वं लिहइ। सरोवरस्स तडे साहुणा वसन्ति। णिवो साहुणो भोअणं देई। तत्थ णरा कवीण वत्थूणि देन्ति। कवी बालाअ फलं देइ। तत्थ सिसू फलस्स कंदइ। सरोवरस्स जलं कमलस्स अत्थि। तस्स वारि खेत्तस्स अत्थि। खेत्तस्स धन्नं घरस्स अत्थि। सरोवरं णरस्स जीवणस्स बहुमुल्लं अत्थि। तं गामस्स सोहं अत्थि।

अभ्यास

(क) पाठ से चतुर्थी विभक्ति के शब्द छांटकर उनका अर्थ लिखो :

जणस्स=लोगों के लिए **मज्झ**=मेरे लिए ....=.....

.....=..... .....=..... .....=.....

.....=..... .....=..... .....=.....

(ख) प्राकृत में अनुवाद करो :

यह कमल मेरे लिए है। वह कमल उसके लिए है। ये वस्तुएँ उन स्त्रियों के लिए हैं। यह दूध बालक के लिए है। वे कुलपति के लिए नमन करते हैं। हम साधुओं के लिए भोजन देते हैं। वह बालिका के लिए माला देगा। माता युवति के लिए साड़ी देती है। सास बहुओं के लिए उपदेश देती है। यह वस्तु घर के लिए है। वह घर शास्त्रों के लिए है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

12. उदाहरण वाक्य [चतुर्थी विभक्ति]

अहं बालअस्स फलं देमि	=	मैं बालक के लिए फल देता हूँ।
सो माआअ धणं देइ	=	वह माता के लिए धन देता है।
मोहणो पुप्फं सिहइ	=	मोहन पुष्प को चाहता है।
बालअस्स मोयगं न रोयइ	=	बालक को लड्डू अच्छा नहीं लगता।
जणओ पुत्तस्स कुज्झइ	=	पिता पुत्र पर क्रोध करता है।
ते कुलवइणो नमन्ति	=	वे कुलपति के लिए नमन करते हैं।
मुणी बालअस्स उवदिसइ	=	मुनि बालक के लिए उपदेश देता है।
सो णाणस्स पढइ	=	वह ज्ञान के लिए पढ़ता है।
भत्ती मोक्खस्स अत्थि	=	भक्ति मोक्ष के लिए है।
सिसू फलस्स कंदइ	=	बच्चा फल के लिए रोता है।

अभ्यास

(क) प्राकृत में अनुवाद करो :

यह कमल मेरे लिए है। वह शास्त्र छात्र के लिए है। राजा कवि को धन देता है। वह पिता को नमन करता है। बालक को दूध अच्छा नहीं लगता। राजा कवि पर क्रोध करता है। गुरु शिष्य को उपदेश देता है। बालिका गेंद के लिए रोती है। ज्ञान मोक्ष के लिए है। माता बच्चे को चाहती है।

(ख) नियम याद करें एवं उदाहरण शिक्षक से समझें :

1- देने और नमन करने के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है।
2- अच्छा लगने और चाहने के अर्थ में चतुर्थी होती है।
3- क्रोध करने, ईर्ष्या करने आदि के अर्थ में चतुर्थी होती है।
4- जिस प्रयोजन के लिए जो वस्तु या क्रिया होती है, उसमें चतुर्थी होती है।
5- कहने, निवेदन करने, उपदेश देने के साथ चतुर्थी विभक्ति होती है।
6- प्राकृत में चतुर्थी एवं षष्ठी विभक्ति के रूप समान होते हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

13. लोअ-सरूवं [पंचमी विभक्ति]

इअं लोअं विचित्तं अत्थि । अत्थ चेअणाणि अचेअणाणि य दव्वाणि सन्ति । ताणं सरूवं सया परिवट्टइ । बालओ बालअत्तो जुवाणो हवइ । जुवाणो जुवणत्तो बुड्ढो हवइ । णरा णरत्तो पसुजोणीए गच्छन्ति । पसुणो पसुत्तो णरजम्मे उप्पन्नन्ति । रुक्खो बीजत्तो उप्पन्नइ । बीजो रुक्खत्तो उप्पन्नइ । फलत्तो रसं उप्पन्नइ । पुप्फत्तो सुयंधो आवइ । वारित्तो कमलं णिस्सरइ । रुक्खत्तो जुण्णाणि पत्ताणि पडन्ति । दहित्तो घयं जाअइ । दुद्धत्तो दहि हवइ ।

एगसमये मुक्खो विउसत्तो वीहइ । छत्तो गुरुत्तो पढइ । कवी णिवत्तो आयरं गेण्हइ । बहू सासुत्तो धणं मग्गइ । बाला माअत्तो दुद्धं मग्गइ । किन्तु अण्णसमये परिवट्टणं जाअइ । विउसा मुक्खाहिंतो बीहन्ति गुरुणा छत्ताहिंतो सिक्खन्ति । णिवा कवीहिन्तो पसंसं गेण्हन्ति । सासूओ बहूहिन्तो वत्थाणि मग्गन्ति । माआओ बालाहिन्तो भोअणं गेण्हन्ति । साहुणा असाहूहिन्तो भयं करन्ति । कुसला जणा सेवन्ति । सढा सासनं करन्ति । इमं लोअस्स विचित्तं सरूवं । जओ णाणीजणा विवेएण संसारस्स कज्जाणि करन्ति ।

अभ्यास

(क) पाठ में से पंचमी विभक्ति के रूप छाँटकर उनके अर्थ लिखो ।

(ख) प्राकृत में अनुवाद करो :

वह मुझ से धन लेता है । बालक तुमसे कमल लेता है । तुम उससे डरते हो । साधु राजा से पुस्तक मांगता है । कवि से काव्य उत्पन्न होता है । शिष्य गुरु से पढ़ता है । माला से सुगन्ध आती है । मैं नदी से पानी लाता हूँ । कमल से पानी गिरता है । वह घर से निकलता है । हम नगर से दूर जाते हैं । सास बहू से धन मांगती है ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

14. उदाहरण-वाक्य [पंचमी विभक्ति]

बालओ अस्सत्तो पडइ	=	बालक घोड़े से गिरता है।
कमलत्तो वारिं पडइ	=	कमल से पानी गिरता है।
मुक्खो निवत्तो बीहइ	=	मूर्ख राजा से डरता है।
कवित्तो कव्वं उप्पज्जइ	=	कवि से काव्य उत्पन्न होता।
कोहत्तो मोहो जायइ	=	क्रोध से मोह होता है।
रामो कलहत्तो बीहइ	=	राम झगड़े से डरता है।
जणओ सिसुत्तो विरमइ	=	पिता बच्चे से दूर होता है।
मालत्तो सुयंधो आयइ	=	माला से सुगन्ध आती है।
सो पावत्तो दुगुच्छइ	=	वह पाप से घृणा करता है।
सीसो साहुत्तो पढइ	=	शिष्य साधु से पढ़ता है।

अभ्यास

(क) प्राकृत में अनुवाद करो :

बच्चा माता से डरता है। पेड़ से पत्ता गिरता है। मूर्ख कवि से घृणा करता है। कमल से सुगन्ध आती है। झगड़े से क्रोध होता है। सांप से भय होता है। वह नगर से दूर जाता है। पुत्र पिता से पढ़ता है। बीज से अंकुर होता है। धन से ज्ञान अच्छा है।

(ख) नियम याद करें एवं उदाहरण शिक्षक से समझें :

1- अलग होने के अर्थ में और गिरने के अर्थ में पंचमी होती है।
2- भय और रक्षा की अर्थ वाली क्रियाओं के साथ पंचमी होती है।
3- उत्पन्न होने और आने के अर्थ में पंचमी होती है।
4- घृणा एवं विराम लेने के अर्थ में पंचमी होती है।
5- जिससे विद्या पढ़ी जाय उसमें पंचमी विभक्ति होती हैं।
6- जिससे तुलना की जाय उसमें पंचमी विभक्ति होती है। जैसे :—
दुज्जणत्तो सज्जणो सेट्ठो।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

नियम : कारक शब्दरूप

षष्ठी विभक्ति :

नियम 1 : षष्ठी विभक्ति के एकवचन में सर्वनाम **अम्ह** का **मज्झ** और **तुम्ह** का **तुज्झ** रूप बनता है।

नियम 2 : पुल्लिग तथा नपुंसकलिग सर्वनाम एवं अकारान्त संज्ञा शब्दों के षष्ठी विभक्ति एकवचन में **स्स** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे :—

सर्वनाम	त	=**तस्स**	इम	=**इमस्स**	क =**कस्स**
पु०सं०	पुरिस	=**पुरिसस्स**	णर	=**णरस्स**	छत्त =**छत्तस्स**
नपुं०सं०	जल	=**जलस्स**	फल	=**फलस्स**	घर =**घरस्स**

नियम 3 : पुल्लिग तथा नपुं० इकारान्त एवं उकारान्त शब्दों के आगे **णो** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे :—

सिसु=**सिसुणो**	कवि=**कविणो**	दहि=**दहिणो**
सुधि=**सुधिणो**	हत्थि=**हत्थिणो**	वत्थु=**वत्थुणो**

नियम 4 : (**क**) स्त्रीलिग आकारान्त सर्वनाम तथा संज्ञा शब्दों के आगे षष्ठी एक वचन में **अ** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे :—

ता+अ=**ताअ** माला+अ=**मालाअ, इमाअ, बालाअ** आदि।

(**ख**) स्त्री० इ, ईकारान्त शब्दों के आगे **आ** प्रत्यय एवं उ, ऊकारान्त शब्दों के आगे **ए** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे :—

आ = **जुवईआ, नईआ, साडीआ**

ए = **धेणूए, बहूए, सासूए आदि।**

नियम 5 : पु०, नपुं० तथा स्त्री० सर्वनाम एवं संज्ञा शब्दों के षष्ठी बहुवचन में **ण** प्रत्यय जुड़ता है तथा शब्द का ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है। जैसे :—

सर्वनाम— तुम्ह=**तुम्हाण, अम्ह=अम्हाण, त=ताण, इमा=इमाण।**

पु०नपुं०—**पुरिसाण, सुधीण, सिसूण, दहीण, वत्थूण।**

स्त्री० — **मालाण, बालाण, जुवईण, साडीण, बहूण।**

चतुर्थी विभक्ति :

नियम 6 : प्राकृत में चतुर्थी विभक्ति में सभी सर्वनाम एवं संज्ञा शब्द षष्ठी विभक्ति के समान ही प्रयुक्त होते हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीया विभक्ति :

नियम 7 : द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम्ह का **ममं** एवं तुम्ह का **तुमं** रूप बनता है।

नियम 8 : सभी सर्वनामों एवं संज्ञा शब्दों में द्वितीया विभक्ति के एकवचन में (ं) लगता है तथा दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाते हैं। जैसे :—

सर्व०— **तं, कं, इमं,** ता=**तं,** का=**कं,** इमा=**इमं।**

पु० — **बालअं, पुरिसं, सुधिं, सिसुं।**

नपुं०— **जलं, णयरं, वारिं, वत्थुं।**

स्त्री०— **मालं, जुवइं, बहुं, सासुं।**

नियम 9 : सभी सर्वनाम एवं संज्ञा शब्दों के प्रथमा विभक्ति बहुवचन के रूप ही द्वितीया विभक्ति बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं। जैसे :—

सर्व० — **ते, के, अम्हे, तुम्हे, काओ, इमाओ, ताणि, इमाणि।**

पु० — **पुरिसा, कविणो, सिसुणो।**

नपुं० — **जलाणि, णयराणि, वारीणि, वत्थूणि।**

स्त्री० — **मालाओ, नईओ, बहूओ, सासूओ।**

सप्तमी विभक्ति :

नियम 10 : सभी पु० सर्वनामों तथा पु०, नपुं० के इ एवं उकारान्त शब्दों में सप्तमी एकवचन में **म्मि** प्रत्यय लगता है। जैसे :—

सर्व० — **अम्हम्मि, तुम्हम्मि, तम्मि, इमम्मि, कम्मि।**

संज्ञा — **सुधिम्मि, सिसुम्मि, वारिम्मि, वत्थुम्मि।**

नियम 11 : स्त्री० सर्वनामों, अकारान्त पु०, नपुं० शब्दों एवं स्त्री० शब्दों में सप्तमी एकवचन में **ए** प्रत्यय लगता है। इ एवं उ दीर्घ हो जाते हैं। जैसे :—

सर्व० — **ताए, इमाए, काए।** पु०— **पुरिसे, छत्ते, सीसे, जले, फले।**

स्त्री० — **बालाए, साडीए, बहूए, जुवईए, धेणूए।**

नियम 12 : सभी सर्वनामों एवं संज्ञा शब्दों में सप्तमी बहुवचन में सु प्रत्यय लगता है। अकारान्त शब्दों में एकार हो जाता है तथा ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाते हैं। जैसे ,—

सर्व०—**अम्हेसु, तेसु, तासु।** पु०—**पुरिसेसु, जलेसु, सुधीसु, सिसूसु।**

स्त्री० –**बालासु, जुवईसु, धेणूसु, सासूसु।**

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तृतीया विभक्ति :

नियम 13 : तृतीया विभक्ति के एकवचन में अम्ह का **मए** एवं तुम्ह का **तुमए रूप** बनता है।

नियम 14 : पु० एवं नपुं० सर्वनाम तथा अकारान्त शब्दरूपों में तृतीया विभक्ति के एकवचन में शब्द के **अ** को **ए** होता है तथा **ण** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे :— सर्व०-**तेण, इमेण, केण**। संज्ञा—**पुरिसेण, छत्तेण, जलेण**।

नियम 15 : पु० तथा नपुं० इ एवं उकारान्त शब्दों के आगे **णा** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे :— **कविणा, साहुणा, वारिणा, वत्थुणा**।

नियम 16 : स्त्री० सर्वनाम एवं संज्ञा शब्दों में तृतीया विभक्ति के एकवचन में **ए** प्रत्यय जुड़ता है। ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाते हैं। जैसे :—
सर्व०— **ताए, इमाए, काए**। संज्ञा- **बालाए, नईए, बहूए**।

नियम 17 : सभी सर्वनामों एवं सभी संज्ञा शब्दों में तृतीया विभक्ति के बहुवचन में **हि** प्रत्यय लगता है। शब्द के **अ** को **ए** तथा ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाते हैं। जैसे :—
संज्ञा (पु०)-**पुरिसेहि, छत्तेहि, कवीहि, सिसूहि** (नपुं.)—**वारीहि, वत्थूहि**
स्त्री०—**बालाहि, नईहि**। सर्व०-**अम्हेहि, तेहि, ताहि**।

पंचमी विभक्ति :

नियम 18 : पंचमी विभक्ति एकवचन में अम्ह का **ममाओ** एवं तुम्ह का **तुमाओ** रूप बनता है।

नियम 19 : पु० एवं नपुं० सर्वनामों के दीर्घ होने के बाद उनमें **ओ** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे :— **ताओ, इमाओ, काओ**।

नियम 20 : स्त्री० सर्वनाम एवं संज्ञा शब्दों में ह्रस्व होकर तथा नपुं० एवं पु० शब्दों में पंचमी विभक्ति के एकवचन में **त्तो** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे :—
स्त्री०— ता=**तत्तो**, इमा=**इमत्तो**, बाला=**बालत्तो, बहुत्तो**।
पु०- **पुरिसत्तो, कवित्तो, सिसुत्तो, जलत्तो, वारित्तो** आदि।

नियम 21 : सभी सर्वनामों एवं संज्ञा शब्दों में दीर्घ स्वर होने के बाद पंचमी विभक्ति के बहुवचन में **हिंतो** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे :—
अम्हाहिंतो, ताहिंतो, पुरिसाहिंतो, बालाहिंतो, बहूहिंतो आदि।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 2 : वत्तालावं

सोहणो — मोहण, तुमं कआ जग्गसि ?
मोहणो — अहं पभाये जग्गामि ।
सोहणो — तआ तुमं किं करसि ?
मोहणो — अहं जणएण सह भमिउं गच्छामि ।
सोहणो — तअणन्तरं तुमं किं करसि ?
मोहणो — अहं पइदिणं पढामि ।
सोहणो — तुमं संझावेलं वि पढसि ?
मोहणो — ण, अहं तआ खेलामि ।
सोहणो — तुमं कत्थ खेलसि ?
मोहणो — अहं गिहस्स समीवं खेलामि ।
सोहणो — तुमं विज्जालयं कआ गच्छसि ?
मोहणो — पायं दसवअणकाले ।
सोहणो — तुज्झ विज्जालए रामो वि पढइ ?
मोहणो — आं, सो तत्थ पढइ ।
सोहणो — तुमं अहुणा कत्थ गच्छसि ?
मोहणो — अहं अज्ज आवणं गच्छामि ।
सोहणो — तुमं मम गिहं चलहि ।
मोहणो — अज्ज अवआसो णत्थि । कल्लं आगच्छिहिमि ।
सोहणो — तुमं सआ एवं भणसि । किन्तु कयावि ण आगच्छसि ।
मोहणो — तुमं मा रूसहि । कल्लं अवस्सं आगच्छिहिमि ।
सोहणो — वरं, अहं मग्गं पासिहिमि । दाणिं गच्छामि । तुमं सिग्घं आगच्छहि ।
मोहणो — वरं ।

अभ्यास

(क) **पाठ में से अव्यय छांटकर उनके अर्थ लिखो :**

कआ = कब ..... = ... = ...
..... = ... = ... = ...

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 3 : जीवलोओ

इमे लोए बहु जीवा सन्ति । रुक्खेसु, लग्गासु, जले, अग्गिए, पवणे थले वि पाणा हवन्ति । इमे एगिन्दिया जीवा सन्ति । मक्कुणे (खटमले) दोण्णि इंदियाणि हवन्ति । पिवीलिग्राए तिण्णि इंदियाणि हवन्ति । मक्खिग्राए चउरो इंदियाणि हवन्ति । सप्पे पंच इंदियाणि हवन्ति । पक्खी, पसू, मणुस्सो, पंचिन्दियो जीवो ग्रत्थि । तेसु फासो, रसणा, घाणो, चक्ख सवणो य इमाणि पंच इंदियाणि सन्ति ।

पक्खिणो ग्रम्हाण सहग्ररा हवन्ति । ते मणुस्साण मित्ताणि हवन्ति । पभाये पक्खिणो कलग्रलसरेण गीग्रं गान्ति । ताण सरो महुरो हवइ । पक्खीसु काग्रो कण्हो हवइ । हंसो धवलो हवइ । कोइला काली हवइ किन्तु सा महुरसरेण गाइ । मोरा ग्रइसुन्दरा हवन्ति । ते वरिसाकाले णच्चन्ति । सुग्गा जणाण ग्रइपिग्रा हवन्ति । ते माणुसस्स भासाए वि बोल्लन्ति । कुक्कुडा पभाये जणाण पवोहयन्ति । पिवीलिग्राग्रो सपरिस्समेण जणाण पेरणा देन्ति ।

माणुसस्स जीवणे पसूण वि महत्तं ग्रत्थि । पसुणो जणस्स सहयोगिणो सन्ति । ग्रस्सो भारं वहइ । जणा ग्रस्सेण सह जत्तासु गच्छन्ति । ग्रस्सो णरस्स मित्तं ग्रत्थि । कुक्कुरो माणुसस्स रक्खं करइ । सो ग्रम्हाण गिहाणि चोराहिन्तो रक्खइ । बइलो किसाणस्स मित्तं ग्रत्थि । सो हलं सग्रडं य करिसइ । बइला खेत्तं करिसन्ति । धेणु ग्रम्हाण दुद्धं देइ । सा तणाणि खाइऊण बहुमुल्लं बलजुत्तं ग्राहारं देइ । ग्रजा वि दुद्धं देइ । जणाण गिहेसु मज्जारा मूसग्रा वि वसन्ति ।

मरुथले कमेला (ऊट्टा) संचरन्ति । वणे गग्रा भमन्ति । तेसु ग्रहिग्रं बलं हवइ । तत्थ सीहो वि गज्जइ । तस्स गज्जणेण मिग्रा धावन्ति । सिग्राला गच्छन्ति । वाणरा साहाएसु कूदन्ति । सव्वे जीवा जीविउं इच्छन्ति, ण मरिउं । ग्रग्रो तेसु ग्रभयं भविग्रव्वं । ते सहावेण हिंसग्रा ण सन्ति । ग्रग्रएव के वि जीवा ण पीडिग्रव्वा ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास

(क) पाठ में से दस शब्दों को छांटकर उनकी विभक्ति और वचन लिखिए :—

1- जीवा	प्रथमा	ब.व,	2. ते	प्रथमा (सर्व०)	ब.व.
3-	.....	.... ..	4-	.....	.....
5-	.....	... .	6-	.....	.....
7-	.....	.....	8-	.....	.....
9-	.....	.....	10-	....	.....

(ख) पाठ के संख्यावाची शब्द लिखकर उनके अर्थ लिखो :—

एग = एक	दोण्णि = दो	..... = ...
..... = ...	..... = ...	..... = ...
..... = ...	..... = ...	..... = ...

(ग) पाठ की नई क्रियाएँ छांटकर उनके अर्थ लिखो :—

क्रिया	अर्थ	क्रिया	अर्थ	क्रिया	अर्थ
.....	.....	.....	....	.....	.....
.....	.....	.... ..	.....	.....	.....

(घ) प्राकृत में अनुवाद करो :

राम गाँव को जाता है। वे फलों को खाते हैं। राजा के द्वारा कार्य होता है। कवि काव्य लिखता है। बालक भाई के साथ विद्यालय जायेगा। यह दूध उस पुत्र के लिए है। वह कमल उस कन्या के लिए है। सोहन की पुस्तक कहाँ है ? मनुष्यों का मित्र कौन है ? हाथी में शक्ति है। फूलों में सुगन्ध है। वृक्षों से पत्ते गिरते हैं। कमल से पानी गिरता है। वह मुझ से धन मांगता है।

(ङ) पाठ में आये विभिन्न जीवों का मानव-जीवन में क्या महत्त्व है, इसे अपने शब्दों में लिखिए।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 4 : अम्हाण पुज्जणीआ

जणा सगुणेहि पुज्जणीआ हवन्ति। माणवजीवणे गुरुणा, पिअरस्स, जणणीए ठाणं महत्तपुण्णं अत्थि। जओ ते अम्हाण पुज्जणीआ सन्ति। सव्वेसु धम्मेसु गुरूण ठाणं उच्चं अत्थि। गुरुणा बिणा को णाणं लहिहिइ? गुरुणो अम्हाण दोसाणि दूरं करन्ति। स-उवदेसजलेण अम्हाण बुद्धिं पक्खालयन्ति। जआ सीसा गुरूण समीवे पढिउं गच्छन्ति तआ ते एवं उवदिसन्ति-'सच्चं बोल्लह। धम्मं कुणह। सज्झाए पमायं मा कुणह। सआ देसस्स धम्मस्स सेवं कुणह।' अअएव गुरुणो अम्हाण मग्गदरिसआ सन्ति। जे सीसा सगुरुणा सेवं करन्ति, तेसु सद्धं करन्ति, ताहिन्तो णाणं गिण्हन्ति। ते सआ लोए सुहं लहन्ति।

अम्हाण जीवणे पिअरस्स ठाणं वि महत्तपुण्णं अत्थि। पिअरो अम्हाण पालओ अत्थि। सो नियएण परिस्समेण धणेण य अम्हे पालइ रक्खइ य। पिअरो कुडुम्बस्स पहाणो हवइ। अओ अम्हेहि तस्स आणं सआ पालणीअं। पिअरो केवलं पालओ ण होइ, किन्तु सो बालआण मित्तो, विज्जादाआ वि हवइ। पिअरो सआ कुडुम्बस्स कल्लाणं चिन्तइ। अओ गुणवन्ता पुत्ता पिअरे सद्धं करन्ति, तस्स आणं मण्णन्ति तहा सेवं करन्ति।

अम्हाण पुज्जणीएसु जणणीए ठाणं सव्वोच्चं अत्थि। माआ सिसुं केवलं ण जम्मइ, किन्तु सा तस्स निम्माणं करइ। माआ अम्हे जणाइ। अम्हे माआअ दुद्धं पिबामो। माआअ दुद्धं सिसुणा जीवणं हवइ। जणणी सिसुं णेहं कुणइ। सा सअं दुक्खं सहइ, किन्तु कआवि सिसुं दुक्खं ण देइ। अओ लोए पसिद्धं-'माआ कआवि कुमाआ ण हवइ।' जे पुत्ता जणणीए आणं पालन्ति, ताअ सेवं कुणन्ति, ते लोए सुपुत्ता हवन्ति। इमा पुढवी वि जणस्स माआ अत्थि। अम्हे भारअमाआअ पुत्ता सन्ति। अअएव जम्मभूमीए रक्खणं अम्हाण कत्तव्वं अत्थि।

अम्हाण इमं कत्तव्वं अत्थि जओ अम्हे गुरूण, पिअरस्स, जणणीए एवं जम्मभूमीए आयरं सेवं य कुणमो। इमे अम्हाण पुज्जणीआ सन्ति।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास

(अ) पाठ में से सातों विभक्तियों के शब्द छांटकर लिखो :

प्रथमा .....

द्वितीया .....

तृतीया .....

चतुर्थी .....

पंचमी .....

षष्ठी .....

सप्तमी .....

(आ) प्रश्नों के उत्तर अपने शब्दों में लिखो :

(क) गुरु शिष्यों को क्या उपदेश देते हैं ?

(ख) पिता अपने कुटुम्ब के लिए क्या करता है ?

(ग) माता के सम्बन्ध में क्या प्रसिद्धि है ?

(घ) हमें पूज्यनीय व्यक्तियों के साथ क्या व्यवहार करना चाहिए ?

इ) प्राकृत में अनुवाद करो :

वह मुझे देखता है। मैं उसे नमन करता हूँ। तुम ईश्वर को नमन करो। जीवों को मत मारो। मैं हाथ से पत्र लिखता हूँ। वह जीभ से फल चखती है। छात्र पुस्तकों के लिए धन माँगता है। बच्चा माता से डरता है। वृक्षों से पत्ते गिरते हैं। उन शरीरों में प्राण हैं। नदियों में पानी है। बालिकाओं का विद्यालय कहाँ है ? कमलों के लिए बच्चा रोता है। हम वहाँ पढ़ेंगे। तुम कहाँ खेलोगे। वह वहाँ नहीं गया। वे सब आज पुस्तकें पढ़ें।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(ख) प्राकृत गद्य-संग्रह

पाठ 5 : विज्जाविहीणो नस्सइ

पाठ परिचय :

प्राकृत के आगम ग्रन्थ उत्तराध्ययनसूत्र की व्याख्या करने के लिए 12 वीं शताब्दी के विद्वान् **नेमिचन्द्रसूरी** ने **सुखबोधाटीका** लिखी है। इसमें कई सुन्दर कथाएँ हैं। जर्मनी के विद्वान् हर्मन जैकोबी ने इस ग्रन्थ की कथाओं का संग्रह प्रकाशित किया था। मुनि जिनविजय ने 'प्राकृत कथा-संग्रह' में इस टीका की कुछ कथाएँ प्रस्तुत की हैं।

इस कथा में एक अज्ञानी ग्रामीण विद्या-युक्त घड़े को सिद्ध-पुरुष से मांग लेता है। वह सोचता है कि इस घड़े से वह सब वस्तुएँ प्राप्त कर लेगा। किन्तु उसने इस घड़े को बनाने की विद्या नहीं सीखी थी। अतः जब उसकी असावधानी से वह घड़ा फूट गया तो वह किसान बहुत दुखी हुआ।

एगो गोहो अभग्ग-सेहरो अईव-दोगच्चेण बाहिओ। किसिकम्माइं करेंतस्स वि तस्स न किंचि फलइ। तओ वेरग्गेण निग्गओ गेहाओ लग्गो पुहइं हिंडिउं। कुणइ अणेग-धणोवज्जणोवाए, परं न किंचि संपज्जइ। तओ सो निरत्थय-परिब्भमणेण निव्विण्णो पुणरवि घरं पडिणियत्तो।

एगम्मि गामे देवालए रत्तिं वासोवगओ। ताव देवालयाओ एगो पुरिसो निग्गओ चित्त-घड-हत्थ-गओ। सो एग-पासे ठाइऊण तं चित्त-घडं पूइऊण भणइ-'लहुं मे परम-रमणिज्जं वासहरं सज्जेहि।' तेण तक्खण-मेव कयं। एवं सयणासण-धण-धन्न-परियणभोग-साहणाइं कारिओ। एवं जं जं भणइ तं तं करेइ चित्त-घडो जाव पहाए पडिसाहरइ।

तेण गोहेण सो दिट्ठो। पच्छा सो चिंतेइ-- "किं मज्झं बहुएण

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

परिभमिएण ? एयं चेव ओलग्गामि ।" तस्संतियं गंतूण तेण सो विणएण आराहिओ । सो पुच्छइ—'किं करेमि ?" तेणं भण्णइ—'अहं मंद-भग्गो, दोग्गच्चेण कयत्थिओ, तुम्ह सरणमागओ । ता तुम्ह पसाएण अहं एवं चेव भोगे भुंजामि " सिद्ध-पुरिसेणं चिंतियं— 'अहो! एसो वराओ अईव दारिद्द-दुहक्कंतो । दुहियाणवच्छला हवंति महा-पुरिसा । अन्नं च—

संपत्ति पावेउं कायव्वो सव्व-सत्त-उवयारो ।
अत्तोवयाल-लिच्छू उयरं पूरेइ काओ वि ।।1।।

ता करेमि इमस्स उवयारं' ति ।

तओ तेण भण्णइ- "किं विज्जं देमि, उयाहु विज्जभिमंतियघडयं?" तेण विज्जा-साहण-पुरच्चरण-भीरुणा मंद-बुद्धिणा भोगतिसिएण भणियं— "विज्जाहिमंतियं घडं देहि ।" तेण दिन्नो । सो तं गहाय हट्ठ-तुट्ठ-मणो गओ सगासं । चिंतियं च तेण-

'किं तीए सिरीए पीवराए जा होइ अन्न-देसम्मि ।
जा य न मित्तोहि समं जं चामित्ता न पेच्छन्ति ।।2।।'

तत्थ बंधूहिं मित्तोहि य समं जहाभिरुइयं भवणं विउव्विऊण भोगे भुंजंतो अच्छइ ।

सो कालंतरेण अइ-तोसेण घडं खंधे काऊण "एयस्स पहावेण अहं बंधु-मज्झे पमोयामि" त्ति भणिऊण आसव-पीओ पणच्चिओ । तस्स पमाएण सो घडो भग्गो । सो विज्जा-कओ उवभोगो नट्ठो । पच्छा सो पलईभूय-विहवो पर-पेसणईहिं दुक्खाणि अणुहवइ । जइ पुण सा विज्जा गहिया हुंता तओ भग्गे वि घडे पुणो करिंतो ।*

---

* उत्तराध्ययन सुखबोधाटीका (नेमिचन्द्रसूरि), निर्णयसागर प्रेस, 1937 पाना 110-111 ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

गोहो = ग्रामीण	**बाहिओ** = पीड़ित	**वासहरं** = महल
ओलग्ग = सेवा करना	**दोग्गच्च** = दुर्गति	**अत्त** = अपना
उवयार = हित	**लिच्छू** = चाहने वाला	**उयाहु** = अथवा
पीवर = अधिक	**विउव्व** = बनाना	**तोस** = संतोष
पलई = नष्ट	**पेसणई** = प्रयोजन	**भग्ग** = नष्ट

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. ग्रामीण ने सिद्ध-पुरुष से मांगा –
   (क) धन (ख) विद्या
   (ग) विद्या से युक्त घड़ा (घ) भवन [ ]

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. ग्रामीण ने देवमन्दिर में किसे देखा ?
2. सिद्ध-पुरुष को देखकर ग्रामीण ने क्या सोचा ?
3. ग्रामीण से सिद्ध-पुरुष ने कौन-सी वस्तु लेने के लिए पूछा ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) विद्यायुक्त घड़े से क्या-क्या प्राप्त होता था ?

(ख) महापुरुष का स्वभाव कैसा होता है ?

(ग) इस पाठ की शिक्षा अपने शब्दों में लिखिए ।

———

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 6 : लोहस्स न अन्तो

पाठ-परिचय :

उत्तराध्ययन सुखबोधाटीका में **नेमिचन्द्रसूरि** ने कई शिक्षाप्रद कथाएँ दी हैं। इस कथा में बतलाया गया है कि कपिल अपने नगर से दूर शिक्षा प्राप्त करने गया था, ताकि वह अपनी माँ का दुःख दूर कर सके। किन्तु वह वहाँ शिक्षा की उपेक्षा कर भोजन कराने वाली स्त्री को खुश करने के लिए धन कमाने के लोभ में पड़ गया। दो माशा स्वर्ण की जरूरत होने पर वह लाखों-करोड़ों की इच्छा करने लगा। फिर भी लोभ का कोई अन्त नहीं था। अतः कपिल को अन्तःप्रेरणा से सद्बुद्धि आ गयी और वह लोभ को छोड़कर ज्ञानार्जन में लग गया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसंबी नाम नयरी। जियसत्तू राया। कासवो उवज्झाओ विज्जाठाणपारगो राइणो बहुमओ। वित्ती से उवकप्पिया। तस्स जसा नाम भारिया। तेसिं पुत्तो कविलो नाम।

कासवो तम्मि कविले खुड्डुलए चेव कालगओ। ताहे तम्मि मए तं पयं राइणा अन्नस्स विप्पस्स दिन्नं। सो य आसेण छत्तेण य धरिज्जमाणेण वच्चइ। तं दट्ठूण जसा परुण्णा। कविलेण पुच्छिया। ताए सिट्ठं जहा– 'पिया ते एवं विहाए इड्ढीए निग्गच्छियाइओ, जेण सो विज्जासंपन्नो।'

सो कविलो भणइ– 'अहं पि अहिज्जामि।' सा भणइ- 'इह तुमं मच्छरेण न कोइ सिक्खावेइ, वच्च सावत्थीए नयरीए पिउमित्तो इंददत्तो नाम उवज्झाओ सो तुमं सिक्खावेही।' सो गओ सावत्थीं, पत्तो य तस्स समीवं, निवडिओ चलणेसु। पुच्छिओ– 'कओ सि तुमं?' तेण जहावत्तं कहियं। विणयपुव्वयं च पंजलिउडेण भणियं– 'भयवं! अहं विज्जत्थी तुम्हं तायनिव्विसेसाणं पायमूलमागओ। करेह मे विज्जाए अज्झावणेण पसायं।'

उवज्झाएण वि पुत्तयसिणेहमुव्वहंतेण भणियं– 'वच्छ! जुत्तो ते

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

विज्जागहणुज्जमो, विज्जाविहीणो पुरिसो पसुणो निव्विसेसो होइ। इह-परलोए य विज्जा कल्लाणहेऊ। ता अहिज्जसु विज्जं, साहीणाणि य तुह सव्वाणि विज्जासाहणाणि, परं भोयणं मम घरे निप्परिग्गहत्तणओ नत्थि। तमंतरेण न संपज्जए पढणं।'

तेण भणियं– 'भिक्खावित्तेण वि संपज्जइ भोयणं।' उवज्झाएण भणियं- 'न भिक्खावित्तीहिं पढिउं सक्किज्जए, ता आगच्छ पत्थेमो किंचि इब्भं तुह भोयणनिमित्तं।' गया ते दो वि तन्निवासिणो सालिभद्दइब्भस्स सयासं। कया उवसत्थी। पुच्छिओ इब्भेण पओयणं। उवज्झाएण भणियं- 'एस मे मित्तस्स पुत्तो कोसंबीओ विज्जत्थी आगओ। तुज्झ भोएण निस्साए अहिज्जइ विज्जं मम सयासे। तुज्झ महंतं पुण्णं विज्जोवग्गहकरणेण।' सहरिसं च पडिवन्नं तेण। सो कविलो तत्थ जिमिउं जिमिउं अहिज्जइ। एगा दासी तस्स परिवेसइ।

अन्नया सा दासी उव्विग्गा दिट्ठा। तेण पुच्छिआ– 'कओ ते अरई?' तीए भणियं– 'मम समीवे पत्त-फुल्लाणं वि मोल्लं नत्थि। सहीण मज्झे विगुप्पिस्सं। अओ तुमं मज्झ किंचि धणं आणेह। एत्थ धणो नाम सेट्ठी। अप्पहाए चेव जो णं पढमं वद्धावेइ सो तस्स दो सुवण्णमासए देइ। तत्थ तुमं गंतूण वद्धावेहि।'

'आमं' ति तेण भणिए तीए सो अइपभाए तत्थ पेसिओ। वच्चंतो य आरक्खियपुरिसेहिं गहिओ बद्धो य। तओ पभाए पसेणइस्स सो उवणीओ। राइणा पुच्छिओ। तेण सब्भावो कहिओ। राइणा भणियं- 'जं मग्गसि तं देमि।' सो भणइ- 'चिंतिउं मग्गामि।' राइणा 'तह' त्ति भणिए असोगवणियाए चिंतेउमारद्धो–

'दोहिं मासेहिं वत्थाभरणाणि न भविस्संति ता सुवण्णसयं मग्गामि। तेण वि भवण-जाणवाहणाइं न भविस्संति ता सहस्सं मग्गामि। इमेण वि डिंभरूवाणं परिणयणाइवओ न पूरेइ ता लक्खं मग्गामि। एसो वि सुहि-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सयण-बन्धु-सम्माणदीणाणाहाइ दाण-विसिट्ठ-भोगोवभोगाण ण पज्जत्तो ता कोडि कोडिसयं कोडिसहस्सं वा मग्गामि ।'

एवमाइ चिंतंतो सुहकम्मोदएण तक्खणमेव सुहपरिणाममवगओ संवेगमावन्नो लग्गो परिभाविउं- 'अहो! लोभस्स विलसियं, दोण्ह सुवण्ण-मासाण कज्जेणागओ लाभमुवट्ठियं दट्ठूण कोडीहि पि न उवरमइ मणोरहो। अन्नं च विज्जापढणत्थं विदेसमागओ जाव ताव अवहीरिऊण जणणि, अवगणिऊण उवज्झायहिय-उवएसं, अवमन्निऊण कुल एएण लोहेण जाण-माणो वि मोहिओ।'

इय चिंतिऊण सो कविलो आगओ राइसगासं। राइणा भणियं-'किं चिंतियं?' तेण य निय-मणोरह-वित्थरो कहिओ।*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

खुड्डलय	= छोटा	**सिट्ठं**	= कहा	**अज्झावण**	= अध्यापन
साहीण	= प्राप्त	**इब्भं**	= धनी	**निस्सा**	= आश्रय
अरई	= दुःख	**विगुप्प**	= लज्जित होना	**सब्भाव**	= सरलता
डिंभरूव	= सन्तान	**पज्जत्त**	= पर्याप्त	**विलसियं**	= विस्तार

2 वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. कपिल के पिता को राज्य-सम्मान प्राप्त था—
   (क) धनी होने के कारण (ख) ब्राह्मण होने के कारण
   (ग) बलशाली होने के कारण (घ) विद्या-सम्पन्न होने से [ ]

---

* उत्तराध्ययन सुखबोधाटीका (नेमिचन्द्रसूरि) निर्णयसागर प्रेस, 1937 पाना 124-125।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1- कपिल को उसकी माता ने कहाँ भेजा था ?

2- कपिल के भोजन की व्यवस्था किसने की ?

3- कपिल में धन का लोभ किसने जागृत किया ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) कपिल विद्याध्ययन के लिए क्यों गया ?

(ख) लोभ में पड़ जाने पर कपिल ने क्या सोचा ?

(ग) इस पाठ की शिक्षा अपने शब्दों में लिखिए।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 7 : असंतोसस्स दोसो

पाठ-परिचय :

प्राकृत भाषा के जो आगम ग्रन्थ प्राप्त होते हैं उनमें उत्तराध्ययन एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की व्याख्या के लिए **जिनदासगणि महत्तर** ने **उत्तराध्ययनचूर्णि** की रचना लगभग 6-7 वीं शताब्दी में की थी। इस ग्रन्थ में प्राकृत **गद्य** में कई कथाएँ हैं। उन्हीं में से यह कथा यहाँ प्रस्तुत क गयी है।

इस कथा में दो पड़ौसी वृद्धा स्त्रियों के ईर्ष्याभाव को प्रकट किया गया है। संतोष न होने से एक बूढ़ी स्त्री अपने देवता से ऐसा वर माँगती है कि उससे दुगना नुकसान उसकी पड़ोसिन को हो। इस दुष्ट प्रवृत्ति से वह स्वयं लूली-लंगड़ी हो जाती है।

एगा छाण-धारिया थेरी होत्था। तीए एगो वाणमंतरो तोसिओ। तेण थेरि वरो दिन्नो। सा जाणि छाणाणि पल्लत्थेइ ताणि रयणाणि होन्ति। सा थेरी इस्सरी जाया। तीए चाउस्सालं घरं कारियं।

थेरीए समोसियाए पुच्छियं– 'किमेयं ?' ति। तीए भणियं– जहा तहं। ताहे सा वि एयं चेव वाणमंतरं आराहिउं पवत्ता। आराहिओ वाणमंतरो भणइ– 'किं करेमि ?' तीए भणियं– 'जइ पसाओ ता समोसिय-थेरीए जो वरो दिन्नो सो मम दुगुणो होउ।'

वाणमंतरेण भणियं-- 'एवं होउ।'

जं जं पढमं थेरी चिंतेइ तं तं समोसियाए थेरीए दुगुणं होइ। तओ तीए पढमं थेरीए नायं जहा-- 'एयाए वरो लद्धो ममाहितो दुगुणो।'

सा इमं जाणिऊण तं असहंती पुणो तं देवं भणइ-- 'मम चाउस्सालं गिहं फिट्टउ। तण-कुडिया मे भवउ।' तओ इएरीए थेरीए दो तणकुडियाओ निम्मियाओ। चाउस्सालाणि घराणि फिट्टाणि।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पढमं थेरी पुणो चिंतेइ-- 'मह एक्कमच्छि काणं होउ।' इयरीए दो वि अच्छीणि काणि भूयाणि।

पुणो वि सा चिंतेइ-- 'मम एगो हत्थो भवउ।' समोसियाए दो वि हत्था नट्ठा। पुणो सा चिंतेइ-- 'मम एगो पाओ होउ।' समोसियाए थेरीए दो वि पाआ नट्ठा। सा पडिया अच्छइ।

सिरीए मतिमं तुस्से अइ सिरिं तु न पत्थए।
अइ-सिरिमिच्छंतीए थेरीए विणासिओ अप्पा ॥1॥*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

छाण	= कण्डा	**पल्लत्थ**	= पार्थना	**इस्सरी**	=धनवान स्त्री
समोसिय	= पड़ौसी	**नायं**	= ज्ञात किया	**फिट्ट**	=नष्ट होना
इयरी	= दूसरी	**अच्छी**	= आँख	**पाअ**	=पैर

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1- पहली बूढ़ी स्त्री को व्यंतर ने वर दिया था—

(क) सुन्दर होने का (ख) बुद्धि प्राप्त करने का

(ग) धनवान होने का (घ) ईर्ष्या करने का [ ]

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1- दूसरी पड़ौसिन ने व्यंतर से क्या वरदान मांगा ?

2- पहली वृद्धा ने अपना भवन क्यों गिरवा दिया ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) व्यंतर ने प्रथम वृद्धा को क्या वरदान दिया ?

(ख) प्रथम वृद्धा ने अपनी पड़ौसन के नुकसान के लिए क्या किया ?

(ग) इस पाठ की शिक्षा अपने शब्दों में लिखो।

---

* उत्तराध्ययनचूर्णि (जिनदासगणि महत्तर) रतलाम, 1933 से उद्धृत।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 8 : मेरुप्पभस्स हत्थिणो अणुकंपा

पाठ-परिचय :

ज्ञाताधर्मकथा प्राकृत आगम ग्रन्थों में प्रमुख ग्रन्थ है। इसमें भगवान् महावीर के उपदेशों को कथाओं और दृष्टान्तों के द्वारा समझाया गया है। इस ग्रन्थ की रचना ईसा के पूर्व 2-3 री शताब्दी में हो चुकी थी। इस ग्रन्थ में प्रमुख रूप से 19 कथाएँ हैं। उनमें एक मेघकुमार की कथा है, जिसमें उसके वैराग्यपूर्ण जीवन का वर्णन है।

इस मेघकुमार की कथा में उसके पूर्व-जन्मों की कथा भी भगवान् महावीर द्वारा कही गयी है। उसमें एक बार मेघकुमार मेरुप्रभ हाथी था। मेरुप्रभ हाथी ने एक बार जंगल में आग लग जाने पर स्वयं कष्ट सहकर एक खरगोश के जीवन की रक्षा की थी। जीव-रक्षा के प्रति उसकी इसी अनुकम्पा का वर्णन इस कथा में है। इस गद्यांश की भाषा अर्धमागधी प्राकृत है।

तए णं तुमं मेहा! पुव्वभवे चउद्दंते मेरुप्पभे नाम हत्थी होत्था। अन्नया तं वणदवं पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था– 'तं सेयं खलु मम इयाणिं गंगाए महानदीए दाहिणल्लंसि कूलंसि विंझगिरिपायमूले दवग्गिसंजायकारणट्ठा सएणं जूहेणं महालयं मंडलं घाइत्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेसि। संपेहित्ता सुहं सुहेणं विहरसि।

अन्नया कयाइं कमेण पंचसु उउसु समइक्कंतेसु गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूले मासे पायव-संघंस-समुट्ठिएणं संवट्टिएसु मिय-पसु-पक्खि-सिरीसिवेसु दिसोदिसिं विप्पलायमाणेसु तेहिं बहूहिं हत्थीहि य सद्धिं जेणेव मंडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्थ णं अण्णे बहवे सीहा य, वग्घा य, विगया दीविया, अच्छा य, रिच्छतरच्छा य, पारासरा य, सरभा य, सियाला, विराला, सुणहा, कोला

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ससा, कोकंतिया, चित्ता, चिल्लला पुव्वपविट्ठा अग्गिभयविद्दुया एगयओ बिलधम्मेणं चिट्ठंति ।

तए णं तुमं मेहा! जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छिसि, उवागच्छित्ता तेहिं बहूहिं सीहेहिं चिल्लएहिं य एगयओ बिलधम्मेणं चिट्ठसि ।

तए णं तुमं– 'पाएणं गत्तं कंडुइस्सामि' त्ति कट्टु पाए उक्खित्ते, तंसि च णं अंतरंसि अन्नेहिं बलवंतेहिं सत्तेहिं पणोलिज्जमाणे ससए अणुपविट्ठे तुमं 'गायं कंडुइत्ता पुणरवि पायं पडिनिक्खमिस्सामि' त्ति कट्टु तं ससयं अणुपविट्ठं पाससि पासित्ता पाणाणुकंपयाए भूयाणुकंपयाए जीवाणुकंपयाए सत्ताणुकंपाए से पाए अंतरा चेव संधारिए, नो चेव णं णिक्खित्ते ।

तए तुमं ताए पाणाणुकंपयाए सत्ताणुकंपयाए संसारे परित्तीकए माणुस्साउए निबद्धे । तए णं से वणदवे अड्ढाइज्जाइं राइंदियाइं त वणं झामेइ, झामेत्ता निट्ठिए-उवरए, उवसंते विज्झाए यावि होत्था ।

तए णं ते बहवे सीहा य चिल्ला य तं वणदवं निट्ठयं विज्झायं पासंति, पासित्ता अग्गिभयविप्पमुक्का तण्हाए य छुहाए य परब्भाहया समाणा तओ मंडलाओ पडिनिक्खमंति । पडिनिक्खमित्ता सव्वओ समंता विप्पसरित्था ।

तए णं तुमं मेहा! जुन्न जरा-जज्जरियदेहे सिढिलवलितयापिणिद्धगत्ते दुब्बले किलंते भुंजिए पिवासिए अत्थामे अबले अपरक्कमे अचंकमणे वा ठाणुखंडे– 'वेगेण विप्पसरिस्सामि' त्ति कट्टु पाए पसारेमाणे विज्जुहए विव रययगिरिपब्भारे धरणियलंसि सव्वंगेहि य सन्निवइए ।

तए णं तव सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया । तिन्नि राइंदियाइं वेयणं वेएमाणे विहरित्ता एगं वाससयं परमाउं पालइत्ता इहेव जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे सेणियस्स रन्नो धारिणीए देवीए कुच्छिंसि कुमारत्ताए पच्चायाए ।*

---

* ज्ञाताधर्मकथा (सं०- पं० शोभाचन्द भारिल्ल) ब्यावर, 1981 पृ० 83-88 ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

अज्झत्थिए	= चिन्तन	**जूह**	= समुदाय	**घाइत्तए**	= बनाऊँ
उउ	= ऋतु	**सिरीसिव**	= सरकने वाले	**पहारेत्थ**	= दौड़े
दीविया	= चीते	**कोकंतिया**	= लोमड़ी	**पाय**	= पैर
ससए	= खरगोश	**गायं**	= शरीर	**संधारिए**	= धारण किया
झाम	= जलना	**विज्झायं**	= बुझा हुआ	**अत्थामे**	= शक्तिहीन

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1- जंगल में आग लगने पर खरगोश ने शरण ली —
(क) शेर की गुफा में (ख) जमीन के नीचे
(ग) हाथी के पैर के नीचे (घ) घास की झोपड़ी के नीचे [ ]

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1- मेरुप्रभ हाथी ने जंगल में मैदान क्यों बनाया ?

2- उस मैदान में मेरुप्रभ हाथी ने अपना पैर क्यों उठाया ?

3- मेरुप्रभ को अनुकम्पा करने पर क्या फल मिला ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) मेरुप्रभ हाथी ने जंगल की अग्नि को देखकर क्या किया ?

(ख) मेरुप्रभ ने खरगोश के जीवन की रक्षा के लिए क्या कष्ट सहे ?

(ग) 'प्राणी-रक्षा' पर 10-15 पंक्तियाँ लिखिए ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 9 : नंदमणिआरस्स जणसेवा

पाठ-परिचय :

ज्ञाताधर्मकथा में एक ओर धर्म कथाएँ हैं तो दूसरी ओर लौकिक जीवन के भी कई दृष्टान्त हैं। तेरहवें अध्ययन की दर्दुरक (मेंढक) की कथा के प्रसंग में नंद नामक मणिकार (स्वर्णकार) की कथा वर्णित है।

इस कथा में बतलाया गया है कि एक बार नंद को बहुत प्यास लगी। उससे दुःखी होकर उसने सोचा कि भूख-प्यास से बहुत से प्राणी दुःखी होते हैं। अतः उनके लिए प्याऊ एवं भोजनशाला आदि बनवानी चाहिए। इसी भावना से नंद ने एक बावड़ी, एक बगीचा, एक चित्रसभा (मनोरंजनशाला), एक रसोइशाला, एक औषधालय और एक अलंकारसभा (सेवाकेन्द्र) बनवायी। इनके द्वारा जनता की उसने निस्वार्थभाव से सेवा की। नंद के इन्ही लोक-कल्याणकारी कार्यों का वर्णन इस कथा में है।

इस गद्यांश की भाषा अर्धमागधी प्राकृत है।

पोक्खरिणी :

तएणं णंदे सेणिएणं रण्णा अब्भणुण्णाए समाणो हट्ठ-तुट्ठ राजगिहं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता वत्थुपाढयरोइयंसि भूमिभागंसि णंद पोक्खरिणिं खणाविउं पयत्तो यावि होत्था।

तएणं सा णंदा पोक्खरिणी अणुव्वेणं खणमाणा-खणमाणा पोक्खरिणी जाया यावि होत्था–चाउक्कोणा, समतीरा, अणुपुव्वसुजायवप्पसीयलजला, संछण्णपत्तविस-मुणाला, बहुप्पल-पउम-कुमुदनलिणीसुभगसोगंधिय-पुंडरीय-महापुंडरीय-सयपत्त-सहस्सपत्त-पफुल्लकेसरोववेया, परिहत्थ-भमंत-मत्तछप्पय-अणेग–सउणगण-मिहुण-वियरिय-सद्दुन्नइय-महुरसर–नाइया, पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

वणसंडा :

तएणं से णंदे मणियारसेट्ठी णंदाए पोक्खरिणीए चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडे रोवावेइ। तएणं ते वणसंडा अणुपुव्वेणं सारक्खिज्जमाणा य संगोविज्जमाणा य संवड्ढियमाणा य वणसंडा जाया किण्हा निकुरंबभूया पत्तिया पुप्फिया फलिया हरियगरेरिज्जमाणा सिरीए अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

चित्तसभा :

तएणं णंदे मणियारसेट्ठी पुरच्छिमिल्ले वणसंडे एगं महं चित्तसभं कारावेइ, अणेगखंभसयसंनिविट्ठं पासादीयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं। तत्थ णं बहूणि किण्हाणि य नीलाणि य लोहियाणि य हालिद्दाणि य सुक्किलाणि य कट्ठकम्माणि य पोत्थकम्माणि य चित्तकम्माणि य लिप्पकम्माणि य गंथिम-वेढिम-पूरिम-संघाइमाइं उवदंसिज्जमाणाइं उवदंसिज्जमाणाइं चिट्ठन्ति।

तत्थ णं बहूणि आसणाणि य सयणीयाणि य अत्थुयपच्चत्थुयाइं चिट्ठंति। तत्थ णं बहवे नडा य णट्टा य जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलवंग-कहग-पवग--लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंबवीणिया य दिन्नभइभत्तवेयणा तालायरकम्मं करेमाणा विहरंति। रायगिहविणिग्गओ तत्थ बहुजणो तेसु पुव्वन्नत्थेसु आसणसयणेसु संन्निसन्नो य संतुयट्टो य सुणमाणो य पेच्छमाणो य साहेमाणो य सुहंसुहेणं विहरइ।

महाणससाला :

तएणं णंदे मणियार सेट्ठी दाहिणिल्ले वणसंडे एगं महं महाणससालं कारावेइ, अणेग-खंभसय-संनिविट्ठं पासादीयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं। तत्थ णं बहवे पुरिसा दिन्नभइभत्तवेयणा विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खणेंति, बहूणं समण-माहण-अतिहि-किवणवणीमगाणं परिभाएमाणा परिभाएमाणा विहरंति।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तेगिच्छियसाला :

तएणं णंदे मणियारसेट्ठी पच्चत्थिमिल्ले वणसंडे एगं महं तेगिच्छिय-सालं कारेइ, अणेगखंभसयसन्निविट्ठं पडिरूवं। तत्थ णं बहवे वेज्जा य, वेज्जपुत्ता य, जाणुया य, जाणुयपुत्ता य, कुसला य, कुसलपुत्ता य, दिन्नभइभत्त-वेयणा बहूणं वाहियाणं, गिलाणाण य, रोगियाण य, दुब्बलाण य तेइच्छं करेमाणा विहरंति। अण्णे य एत्थ बहवे पुरिसा दिन्नभइभत्तवेयणा तेसिं ओसह-भेसज्ज-भत्त-पाणेणं पडियारकम्मं करेमाणा विहरंति।

अलंकारियसभा :

तएणं णंदे मणियारसेट्ठी उत्तरिल्ले वणसंडे एगं महं अलंकारियसभं कारेइ, अणेगखंभसयसन्निविट्ठं पडिरूवं। तत्थ णं बहवे अलंकारियपुरिसा दिन्नभइभत्तवेयणा बहूणं समणाण य, अणाहाण य, गिलाणाण य, रोगियाण य, दुब्बलाण य अलंकारियकम्मं करेमाणा विहरंति।

तए णं तीए णंदाए पोक्खरिणीए बहवे सणाहा य, अणाहा य, पंथिया य, पहिया य, करोडिया य, कारिया य, तणाहारा य, पत्तहारा य, कट्ठहारा य, अप्पेगइया ण्हायंति, अप्पेगइया पाणियं पियंति, अप्पेगइया पाणियं संवहंति, अप्पेगइया विसज्जिय सेयजल्ल-मल्ल-परिस्समनिद्दखुप्पिवासा सुहंसुहेणं विहरंति।

रायगिहविणिग्गओ वि जत्थ बहुजणो किं ते ? जलरमण-विविह-मज्जण-कयलि-लयाघरय-कुसुमसत्थरय अणेग सउणगणरुयरिभितसंकलेसु सुहंसुहेणं अभिरममाणो अभिरममाणो विहरइ।

तएणं णंदाए पोक्खरिणीए बहुजणो ण्हायमाणो य, पीयमाणो, पाणियं च संवहमाणो य अन्नमन्नं एवं वयासी–धण्णे णं देवाणुप्पिया! णंदे मणियारसेट्ठी, कयत्थे, जम्मजीवियफले जस्स णं इमेयारूवा णंदा पोक्खरिणी जत्थ बहुजणो आसणेसु य सयणेसु य सन्निसन्नो य संतुयट्टो य पेच्छमाणो य

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

साहेमाणो य सुहंसुहेणं विहरइ। सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले णंदस्स मणियारस्स।

तए णं णंदे मणियारे बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठे धारा-हयकलंबगं पिव समूससियरोमकूवे परं सायासोक्खमणुभवमाणे विहरइ।*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

अब्भणुण्णाए	= आज्ञा प्राप्त कर	**परिहत्थ**	= जलजन्तु
छप्पय	= भौंरा	**पुरिच्छिमिल्ले**	= पूर्व दिशा में
तालायर	= नाटक	**उवक्खड**	= पकाना
वणीमग	= भिखारी	**जाणया**	= जानकार
गिलाण	= अशक्त रोगी	**तेइच्छं**	= चिकित्सा
पडियारकम्म	= सेवा कार्य	**कारिया**	= मजदूर
अप्पेगइया	= कोई-कोई	**संघाडग**	= चौपाल

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. पथिकों को भोजन मिलता था-

(क) बावड़ी में (ख) चित्र-सभा में

(ग) महानसशाला में (घ) अलंकार-सभा में [ ]

---

* ज्ञाताधर्मकथा (सं०-पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल), ब्यावर, 1981, पृ 342-346।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. वावड़ी आदि का निर्माण किसलिए कराया गया ?
2. नंद मणिकार ने कितने सेवा-केन्द्र बनवाये थे ?
3. इन सेवाकेन्द्रों से कौन व्यक्ति लाभ लेते थे ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) नंद मणिकार द्वारा बनवायी गयी संस्थाओं की उपयोगिता पर निबन्ध लिखिए।

(ख) जन-सेवा के महत्त्व को अपने शब्दों में लिखिए।

(ग) पाठ के आधार पर किसी एक सेवाकेन्द्र का वर्णन कीजिए।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 10 : कण्हेण थेरस्स सेवा

पाठ-परिचय :

प्राकृत के आगम ग्रन्थों में एक आगम ऐसा है, जिसमें संसार-भ्रमण का अन्त करने वाले अर्हंतों (महापुरुषों) की कथाएं हैं। इस ग्रन्थ का नाम **अन्तकृद्दशा** है। इसकी रचना ईसा की 4-5 वीं शताब्दी के लगभग हो चुकी थी।

इस ग्रन्थ में गजसुकुमाल की कथा है, जो श्रीकृष्ण वासुदेव के समय में हुए थे। उसी प्रसंग में श्रीकृष्ण की करुणा और सेवाभाव का एक उदाहरण इस कथा में प्रस्तुत किया गया है। श्रीकृष्ण ने एक बूढ़े व्यक्ति के कार्य में स्वयं मदद की तो उनका अनुगमन करके उनके सभी मित्र भी सेवा में जुट गये।

इस गद्यांश में अर्धमागधी प्राकृत का प्रयोग हुआ है।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पल-कमल-कोमलुम्मिलियंमि, अह पंडुरे पभाए, रत्तासोगपगास-किसुय-सुयमुह-गुंजद्धराग-बंधुजीवग--पारावयचलण--नयणपरहुय--सुरत्तलोयणजासुमिणकुसुम--जलिय-जलण--तवणिज्जकलस-हिंगुलयनियर-रूवाइरे गरेहन्तसस्सिरीए दिवागरे अहक्कमेण उदिए, तस्स दिणकर-परंपरावयारपारद्धम्मि अंधयारे, बालातव कुंकुमेणं खइए व्व जीवलोए, लोयणविसआणुआसविगसंत-विसददंसियम्मि लोए, कमलागरसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते, ण्हाए, विभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्ज-माणेणं सेयवरचामरेहिं उद्धुव्वमाणीहिं महयाभड-चडगर-पहकरवंद-परि-क्खित्ते बारवइं नयरिं मज्झं-मज्झेणं जेणेव अरहा अरिट्ठनेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झं-मज्झेणं निगच्छमाणे एक्कं पुरिसं जुण्णं जरा-जज्जरिय-देहं आउरं झूसियं पिवासियं दुब्बलं किलितं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

महइमहालयाओ इट्ठगरासीओ एगमेगं इट्ठगं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पविसमाणं पासइ ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकंपणट्ठाए हत्थिखंधवरगए चेव एगं इट्ठगं गेण्हइ, गिण्हित्ता बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए ।

तए णं कण्हेणं वासुदेवेणं एगाए इट्ठगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं पुरिसेहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ ।

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

तवणिज्ज	= स्वर्ण	**परहुय**	= कोयल	**दिवागर**	= सूर्य
खइए	= व्याप्त	**संड**	= कमलवन	**सेय**	= सफेद
झूसियं	= क्लान्त	**महालए**	= बड़े	**रासि**	= समूह

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. श्रीकृष्ण ने वृद्ध की सहायता की-

(क) यश पाने के लिए (ख) बड़प्पन दिखाने के लिए

(ग) वृद्ध का काम बंटाने के लिए (घ) मित्रों को प्रेरणा देने के लिए [ ]

अन्तकृद्दशा (सं.-साध्वी दिव्यप्रभा), ब्यावर, 1981, पृ० 81-82

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. श्रीकृष्ण ने वृद्ध की क्या सहायता की ?

2. श्रीकृष्ण के मित्रों ने क्या किया ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) वृद्धों की सेवा करने का महत्त्व लिखिए ।

(ख) इस पाठ की शिक्षा अपने शब्दों में लिखिए ।

———

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 11 : कलहो विणास-कारणं

पाठ-परिचय :

प्राकृत आगम ग्रन्थों में निशीथ नामक एक ग्रन्थ है, जिसमें मुनियों के आचरण-सम्बन्धी नियम वर्णित हैं। इस निशीथ की व्याख्या के रूप में **जिनदासगणि-महत्तर** ने लगभग 6-7 वीं शताब्दी में **निशीथविशेषचूर्णि** लिखी है। इस ग्रन्थ में कई दृष्टान्त और कथाएं दी गयी हैं।

प्रस्तुत दृष्टान्त में दो गिरगिटों की लड़ाई का वर्णन है। कथाकार ने यहाँ उदाहरण प्रस्तुत किया है कि यद्यपि गिरगिट बहुत छोटे प्राणी हैं। उनके लड़ने से बड़े पशु एवं जानवरों के आराम में कोई विघ्न नहीं पड़ना चाहिए। किन्तु कलह का कोई भरोसा नहीं, कब क्या रूप ले ले। इन दो गिरगिटों की लड़ाई ने सभी वनचर, थलचर एवं जलचर प्राणियों की शान्ति को नष्ट कर दिया था।

अरण्णमज्झे अगाहजलं सरं जलयोवसहियं वणसंडमंडियं। तत्थ य बहूणि जलचर-खहचर-थलचराणि य सत्ताणि आसिताणि। तत्थ य एगं महल्लं हत्थिजूहं परिवसति। अण्णता गिम्हकाले तं हत्थिजूहं पाणियं पाउं ण्हाउत्तिण्णं मज्झण्हदेसकाले सीयलरुक्खछायासु सुहंसुहेण पामुत्तं चिट्ठति।

तत्थ य अदूरे दो सरडा भंडिउमारद्धा। वणदेवयाए उ ते दट्ठुं सव्वेसिं सभाए आघोसियं–

णागा जलवासिया, सुणेह तसथावरा।
सरडा जत्थ भंडंति, अभावो परियत्तई ।। 1 ।।

देवयाए भणियं–'मा एते सरडे भंडंते उवेक्खह, वारेह। तेहिं जलचर-थलचरेहिं चिंतियं–'किं अम्हं एते सरडा भंडंते काहिंति ?'

तत्थ य एगो सरडो भंडंतो भग्गो पेल्लितो सो धाडिज्जंतो सुहसुत्तस्स

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हत्थिस्स बिलं ति काउं णासावुडं पविट्ठो। बितिओ वि पविट्ठो। ते सिरकंपले जुद्धं लग्गा।

हत्थी विउलीभूतो महंतीए असमाहीए वेयणट्टो य तं वणसंडं चूरियं। बहवे तत्थ वणसिणो सत्ता घातिता। जलं च आडोहंतेण जलचरा घातिता। तलागपाली भेदिता। तलागं विणट्ठं। जलचरा सव्वे विणट्ठा।*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

मंडिय	= सुशोभित	सत्त	= प्राणी	महल्लं	= बड़ा
सरडा	= गिरगिट	भंड	= लड़ना	उवेक्ख	= उपेक्षा करना
बितिओ	= दूसरा	णासावुड	= नथुना	तलाग	= तालाब

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. सभी प्राणी सुखपूर्वक ठहरे थे—

(क) पेड़ पर (ख) तालाब में

(ग) वृक्षकुंज में (घ) सड़क पर [ ]

निशीथविशेषचूर्णि (सं.—उपाध्याय अमरमुनि), आगरा, 1960, प्राकृत साहित्य का इतिहास (डा. जगदीशचन्द्र जैन) पृ. 241 से उद्धृत।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. वन देवता ने क्या घोषणा की थी ?
2. हाथी किस बात से क्रोधित हो गया ?
3. सभी प्राणियों के विनाश का कारण क्या था ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) इस पाठ की शिक्षा अपने शब्दों में लिखिए ।

(ख) झगड़े से होने वाले नुकसान की कोई घटना लिखिए

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 12 : धुत्तो सागडिओ च

पाठ-परिचय :

जिनदासगणिमहत्तर ने **दशवैकालिकचूर्णि** नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसमें दशवैकालिक के विषय को स्पष्ट किया गया है। उस प्रसंग में कई दृष्टान्त और कथाएं इस चूर्णि-ग्रन्थ में दी गयी हैं।

प्रस्तुत कथा एक लौकिक कथा है। इसमें एक ग्रामीण किसान को शहर का एक धूर्त दलाल अपनी बुद्धि से संकट में डाल देता है। उसकी गाड़ी की ककड़ियां जूठी कर शर्त के अनुसार उससे नगर के दरवाजे से न निकलने वाली (इतना बड़ा) लड्डू मांगता है। तब वह गाड़ीवान् एक बुद्धिमान् की मदद लेकर उस धूर्त की शर्त पूरी करता है।

एगो मणूसो तउसाणं भरिएण सगडेण नगरं पविसइ। सो पविसंतो धुत्तेण भण्णइ– 'जो य तउसाणं सगडं खाएज्जा तस्स तुमं किं देसि ?' ताहे सागडिएण सो धुत्तो भणिओ- 'तस्स अहं तं मोदगं देमि जो नगरद्दारेणं न निप्फिडइ।'

धुत्तेण भण्णइ- 'ताहे एयं तउससगडं खायामि। तुमं पुण मोदगं देज्जासि जो नगरदारेण न निस्सरइ।' पच्छा सागडिएण अब्भुवगए धुत्तेण सक्खिणो कया। सगडं अधिट्ठतो, तेसिं तउसाणं एक्केक्काउ खंडं खंडं अवणेता पच्छा तं सागडियं मोदगं मग्गइ।

ताहे सागडिओ भणइ–'इमे तउसा ना खइत्ता तुमे।' धुत्तेण भणइ- 'जइ न खइया तउसे अग्घवेहि तुमं।' अग्घविएसु कइया आगया। पासन्ति खंडिया तउसा। ताहे कइया भणंति–'को एते खतिए किणत्ति ?'

ततो कारणे ववहारे जाओ। खत्तिय त्ति जितो सागडिओ। ताहे धुत्तेण मोदगं मग्गिज्जइ। अच्चइओ सागडिओ। जुत्तिकए ओलग्गिता। ते

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तुट्ठा पुच्छंति । तेसिं जहावत्तं सव्वं कहइ । 'एवं कहिए तेहिं उत्तरं सिक्खाविओ–जहा–'तुमं खुड्डलगं मोयगं नगरदारे ठावेत्ता भण–'एस मोदगो सयं न निस्सरइ नगरदारेण, गिण्ह ति ।' तओ जिओ धुत्तो ।*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

तउस	= ककड़ी	निण्फिड	= निकलना	ताहे	= तब
अब्भुवगए	= स्वीकार	अवणेत्ता	= तोड़कर	अग्घव	= बेचना
खतिए	= खाये हुए	अच्चइओ	= नहीं छोड़ा गया	भण	= कहो
खुड्डलगं	= छोटा	ठावेत्ता	= रखकर	गिण्ह	= ग्रहण करो

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. ग्रामीण गाड़ीवान को संकट में डाल दिया —

(क) नगर-रक्षक ने (ख) चुंगी वसूल करने वाले ने

(ग) राजा ने (घ) चालाक धूर्त ने [ ]

3. लघूत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. धूर्त ने गाड़ीवान् से क्या शर्त लगाई ?
2. धूर्त ने गाड़ी की पूरी ककड़ियां कैसे खा लीं ?
3. गाड़ीवान् ने धूर्त की शर्त कैसे पूरी की ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) इस पाठ की शिक्षा अपने शब्दों में लिखो ।

(ख) 'जैसे के साथ तैसा' विषय पर कोई अन्य उदाहरण लिखो ।

---

* दशवैकालिकचूर्णि, रतलाम, 1933, प्राकृत साहित्य का इतिहास (डा. जैन) पृ. 258 से उद्धृत ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 13 : कयग्घा वायसा

पाठ-परिचय :

प्राकृत का कथासाहित्य विशाल है। उसमें कई स्वतन्त्र कथा-ग्रन्थ लिखे गये हैं। उनमें **संघदासगणि** द्वारा 2-3 री शताब्दी में लिखे गये **वसुदेवहिण्डी** नामक ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के भ्रमण-वृतान्त का वर्णन है। उस प्रसग में इसमें कई कथाएं प्रस्तुत की गयी हैं।

प्रस्तुत कथा में कृतघ्न कौओं की मनोवृत्ति को उजागर किया गया है। अकाल पड़ जाने से ये कौए अपने भानजे कापंजल के यहाँ चले जाते हैं, जहाँ उनको भोजन आदि मिलने लगता है। किन्तु अकाल समाप्त होने पर ये कौए बड़ी मुश्किल से अपने देश को लौटते हैं। और जाते समय यह कह जाते हैं कि हम इसलिए वापिस जा रहे हैं क्योंकि हमसे कापंजल का सौभाग्य नहीं देखा जाता है।

इओ य किर अतीते काले दुवालसवरसिओ दुब्भिक्खो आसि। तत्थ वायसा मेलयं काऊणं अण्णोण्णं भणंति–'किं कायव्वमम्हेहिं ? वट्टो छुहमारो उवट्ठिओ, नत्थि जणवएसु वायसपिंडयाओ, अण्णं वा तारिसं किंचि न लब्भइ उज्झणधम्मियं, कहियं वच्चामो ?' त्ति।

तत्थ वुड्ढवायसेहिं भणियं–समुद्दतडं वच्चामो, तत्थ कायंजला अम्हं भायणेज्जा भवंति, ते अम्हं समुद्दाओ भोयणं लाऊणं दाहिंति। अण्णहा नत्थि जीवणोपाओ' संपहारेत्ता गया समुद्दतडं। ततो तुट्ठा कायंजला, सागयाऽभागएण य सम्माणिया, कयं च तेसिं पाहुणायं। एवं ततो तत्थ कायंजला भोयणं देंति। वायसा तत्थ सुहेणं कालं गमेंति।

तत्तो वत्ते बारससंवच्छरिए दुब्भिक्खे जणवएसु सुभिक्खं जायं। ततो तेहिं वायसेहिं संपहारेत्ता वायससंघाडओ–'जणवयं पलोएह' त्ति पेसिओ। 'जइ सुभिक्खं भविस्सइ तो गमिस्सामो'।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सो य संघाडओ अचिरकालस्स उवलद्धी करेत्ता आगतो। साहति च वायसाणं जहा– 'जणवएसुं वायसपिंडयाओ मुक्कमाणीओ अच्छंति, उट्ठेह, वच्चामो त्ति। ततो ते संपहारेंति–'किह गंतव्वं?' ति। जइ आपुच्छामो नत्थि गमणं' एवं परिगणेत्ता कायंजले सद्दावेत्ता एवं वयासी– 'भागिणेज्जा! वच्चामो।'

ततो तेहिं भणियं–'किं गम्मइ?' ततो ते भणंति–'न सक्केमो पइदिवसं तुम्हं अहोभागं पासित्ता अणुट्ठिए चेव सूरे।' एवं भणित्ता गया।*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

दुवालस	= बारह	**मेलयं**	= झुण्ड	**वड्ढो**	= भारी
छुहाभारो	= भुखमरी	**कहिय**	= कहाँ	**भायणेज्जा**	= भनेज
संपहारेत्ता	= विचारकर	**वत्ते**	= व्यतीत होने पर	**संघाडओ**	= मुखिया
सद्दावेत्ता	= बुलाकर	**वयासी**	= कहा	**पासित्ता**	= देखकर

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. अकाल पड़ने पर कौओं की मदद की—

(क) गिद्धों ने (ख) आदमियों ने

(ग) कोयल ने (घ) भानजे कायंजल ने [ ]

---

* वसुदेवहिण्डी (सं०-मुनि पुण्यविजय), भावनगर, 1930, पृ० 33

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1, कौए अपना स्थान छोड़कर समुद्रतट पर क्यों गये ?

2. कौओं ने वापस लौटने पर अपने उपकारी भानजे को क्या कहा ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) कौओं की कृतघ्नता पर अपने विचार लिखो।

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

1. **पिछले पाठों से कृदन्त छांटकर लिखें :**

भंडत = झगड़ते हुए	**गन्तूण** = जाकर
..... = ...	..... = ...
..... = ...	..... = ...
..... = ...	..... = ...
..... = ...	..... = ...

2. **पिछले पाठों से समास छांटकर लिखें :**

णरजम्मं	णरस्स + जम्मं	षष्ठी तत्पुरुष
.....	..... + ...	.....
.....	..... + ...	.....
.....	..... + ...	.....

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 14 : सिप्पी कोक्कासो

पाठ-परिचय :

संघदासगणि द्वारा रचित वसुदेवहिण्डी नामक प्राकृत कथा-ग्रन्थ में तत्कालीन ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित भी कई कथाएं हैं। उस समय काष्ठकला इतनी उन्नत थी कि लकड़ी के विमान बनाकर उन्हें आकाश में उड़ाया जा सकता था।

प्रस्तुत कथा का नायक कोक्कास भी इसी प्रकार का कुशल शिल्पी था। उसने राजपुत्रों के साथ रहते हुए अपनी कुशाग्र बुद्धि से एक कलाचार्य से काष्ठकला सीख ली थी। कोक्कास ने एक यन्त्रकपोत विमान बनाया था, जिसमें उसके साथ बैठकर राजा भ्रमण करता था। उस विमान में चालक के साथ एक व्यक्ति ही बैठ सकता था। किन्तु एक दिन रानी भी अपनी हठ से उसमें बैठ गयी। इससे वह विमान मार्ग में टूटकर गिर पड़ा। कोक्कास की बात न मानने पर राजा-रानी दोनों दुखी हुए।

अह सो कोक्कासो सएज्झयस्स सत्थसंजत्तयकुलस्स कोट्ठागस्स घरं गंतूण दिवसं खवेइ। तस्स य पुत्ता नाणाविहाइं कम्माइं सिक्खंति। तेण य पिउणा सिक्खाविज्जंता न गेण्हंति। ततो तेण कोक्कासेण भणिया-'एवं करेह एवं होउ' त्ति। ततो तेण आयरिएण विम्हियहियएण भणिओ-'पुत्त! सिक्ख उवएसं ति। अहं ते कहेहामि।' तओ तेण भ'णिओ-'सामि! जहा आणवेह' त्ति। ततो सिक्खिउं पयत्तो। आयरिय-सिक्खागुणेणं सव्वं कट्ठकम्मं सिक्खिओ। निप्फण्णो य गुरुजणाणुण्णाओ पुणरवि सो वहणमारुहिऊण तामलित्तिं गतो।

तत्थ य खामो कालो वट्टइ। ततो तेण अप्पणो जीवणोवायनिमित्तं रण्णो जाणावणत्थं सज्जियं कवोयजुवलयं। ते य कपोइया गंतूण पइदिवसं आयासतले सुवक्कमाणं रायसंतियं कलमसालिं घित्तूण एंति। ततो रक्ख-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

वालेहिं धण्णं हीरमाणं दट्ठूणं रण्णो सत्तुदमणस्स निवेदितं। तेण य अमच्चा आणत्ता—'जाणह' ति ।

ततो तेहिं नीइकुसलेहिं आगमियं, निवेदितं च रण्णो— 'देव! कोक्कासघरस्स जंत-कवोय-मिहुणयं धेत्तूणं णेइ । राइणा आणत्ता—'आणह' त्ति । आणीओ य सो पुच्छिओ । कहियं च णेणं सव्वं रण्णो अपरिसेसं ।

तओ राइणा परितुट्ठेण संपूइओ कोक्कासो, भणिओ य—'आगासगमं जंतं सज्जेहि त्ति । तेण दो वि जणा इच्छियं देसं गंतुं एमो' ति । ततो तेण रण्णो आणासमकालं जंतं सज्जियं । तहिं च राया सो य आरूढो इच्छियं देसं गतूण इंति । एवं च कालो वच्चइ ।

तं च दट्ठूणं राया अग्गमहिसीए विन्नविओ— 'अहं पि तुब्भेहिं समं आयासेण देसंतरं काउमिच्छामि।' ततो राइणा कोक्कासो वाहरिऊणं भण्णइ— 'महादेवी अम्हेहिं समं वच्चउ' त्ति । ततो तेण लवियं— 'सामि!' न जुज्जइ तइयस्स आरोढुं, दोन्नि जणे इम जाणवत्तं वहइ' त्ति ।

ततो सा निब्बंधं करेइ । वारिज्जंती वि अप्पच्छंदिया, रायाय अबुहो तीए सह समारूढो । ततो कोक्कासेण लवियं— 'पच्छायावो भे, खलियमवस्सं भविस्सइ' त्ति भणिऊण आरूढेण कड्ढियाओ तंतीओ, अहया जंतकीलिया गगण-गमणकारिया, तो उप्पइया आयासं । वच्चंताण य बहुएसु जोयणेसु समइक्कंतेसु अइभरक्कंताउ छिन्नाओ तंतीओ, भट्ठं जंतं, पडिया कीलिया, सणियं च जाणं भूमीए ट्ठियं । सो य राया देवीसहिओ असुणंतो पच्छायावेण संतप्पिउं पयत्तो ।*

---

* वसुदेवहिण्डी (सं०-मुनि चतुरविजय, पुण्यविजय), भावनगर, 1980, पृ. 62-63 ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

सएज्झय	= पड़ौसी	**कोट्टाग**	= बढ़ई	**खव**	= व्यतीत करना
विम्हिय	= विस्मित	**निप्फण्ण**	= चतुर	**वहणं**	= जहाज
जुवलयं	= जोड़ा	**हीर**	= चुराना	**अमच्च**	= मन्त्री
आणत्ता	= आज्ञा दी	**जंत**	= विमान	**अग्गमहिसी**	= पटरानी
बाहरिऊण	= बुलाकर	**लवियं**	= कहा	**निब्बंधं**	= हठ
मे	= हम लोग	**खलियं**	= गिरना	**अहया**	= चोट की
भट्ठं	= नीचे गिरा	**तंती**	= मशीन	**सणियं**	= धीरे

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

कोक्कास ने काष्ठकला की शिक्षा ग्रहण की —

(क) विद्यालय से (ख) राजकुमार से

(ग) पड़ौसी बढ़ई से (घ) गुरुकुल से [ ]

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. कोक्कास ने किस विमान का निर्माण किया था ?
2. कपोत-यन्त्र पर कितने व्यक्ति घूमने जा सकते थे ?
3. तीन व्यक्तियों की सवारी से कपोत-विमान का क्या हुआ ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) पाठ का सार अपने शब्दों में लिखिए ।

(ख) कपोतयन्त्र और हवाईजहाज की तुलना कीजिए ।

———

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 15 : अग्गिसम्मस्स पराहवं

पाठ-परिचय :

आठवीं शताब्दी के कथाकार **हरिभद्रसूरि** ने **समराइच्चकहा** नामक कथाग्रन्थ चित्तौड़ में लिखा था। इस ग्रन्थ में उज्जैन के राजा समरादित्य और उसके बचपन के साथी अग्निशर्मा के नौ जन्मों का वर्णन है। इस ग्रन्थ में यह बतलाया गया है कि यदि कोई व्यक्ति किसी के प्रति कलुषित भावनाएं मन में कर लेता है और उससे बदला लेने की सोचता है तो उसे कई जन्मों तक इसका फल भोगना पड़ता है।

प्रस्तुत गद्यांश में अग्निशर्मा और गुणसेण (समरादित्य) के बचपन की घटनाएं वर्णित हैं। अग्निशर्मा अपनी कुरूपता और निर्धनता के कारण राजकुमार गुणसेन से बहुत अपमान प्राप्त करता है। उससे दुखी होकर वह साधु बन जाने का निश्चय कर लेता है। एक आश्रम में जाकर वह साधु-जीवन व्यतीत करने लगता है। अग्निशर्मा एक माह में एक बार भोजन करने का प्रण करता है। इस प्रकार वह कठोर जीवन व्यतीत करता है।

अत्थि इहेव जम्बूदीवे दीवे, अवरविदेहे वासे, उत्तुंगधवलवागार-मंडियं, नलिणिवणसंछन्नपरिहासणाहं, सुविभत्ततिय-चउक्क-चच्चरं, भवणेहिं जियसुरिन्दभवणसोहं खिइपइट्ठियं नाम नयरं।

जत्थ विलयाउ कमलाइं कोइलं कुवलयाइं कलहंसे।
वयणेहि जंपिएण य नयणेहि गईहि य जिणन्ति ।। 1 ।।

जत्थ य नराण वसणं विज्जासु, जसम्मि निम्मले लोहो।
पावेसु सया भीरुत्तणं च धम्मम्मि धणबुद्धी ।। 2 ।।

तत्थ य राया संपुण्णमण्डलो मयकलंकपरिहीणो।
जण-मण-नयणाणन्दो नामेणं पुण्णचन्दो त्ति ।। 3 ।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्तेउरप्पहाणा देवी नामेण कुमुइणी तस्स ।
सइ वड्ढियविसयसुहा इट्ठा य रइ व्व मयणस्स ।। 4 ।।

ताण य सुओ कुमारो गुणसेणो नाम गुणगणाइण्णो ।
बालत्तणओ वंतरसुरो व्व केलिप्पिओ णवरं ।। 5 ।।

तम्मि य नयरे अतीव सयलजणबहुमओ, धम्मसत्थ-संघायपाढओ, लोग-ववहारनीइकुसलो, अप्पारम्भपरिग्गहो जन्नदत्तो नाम उवज्झाओ त्ति । तस्स य सोमदेवागब्भसंभओ, महल्लतिकोणुत्तिमंगो, आपिंगलवट्टलोयणो, ठाणमेत्तोवलक्खिय-चिविडनासो, बिलमेत्तकण्णसन्नो, विजियदन्तच्छयमहल्ल-दसणो, वंकमुदीहरसिरोहरो, विसमपरिहस्सबाहुजुयलो, अइमडहवच्छत्थलो, वंकविसमलम्बोयरो, एक्कपासुन्नयमहल्लवियडकडियडो, विसमपइट्ठिऊरुजुयलो, परिथूलकढिणहस्सजंघो, विसमवित्थिण्णचलणो, हुतहुयवह-सिहाजालपिंग-केसो, अग्गिसम्मो नाम पुत्तो त्ति ।

तं पुत्तं च कोउहल्लेण कुमार गुणसेणो पहय-पडुपडहमुइंगवंसकंसाल-यप्पहाणेण महया तूरेण नयरजणमज्झ सहत्थ तालं हसन्तो नच्चावेइ, रास-हम्मि आरोवियं, पहट्ठबहुडिम्भविन्दपरिवारियं, छित्तरमयधरियपोण्डरीयं, मणहरुत्तालावज्जन्तडिन्डिमं, आरोवियमहारायसद्दं, बहुसो रायमग्गे सुतुरिय-तुरियं हिण्डावेइ ।

एवं च पइदिणं कयन्तेणेव तेण कयत्थिज्जन्तस्स तस्स वेरग्गभावणा जाया । चिन्तियं च णेण —

बहुजणधिक्कारहया ओहसणिज्जा य सव्वलोयस्स ।
पुव्वि अकयसुपुण्णा सहन्ति परपरिभवं पुरिसा ।। 6 ।।

जइ ता न कओ धम्मो सप्पुरिसनिसेविओ अहन्नेणं ।
जम्मन्तरम्मि घणियं सुहावहो मूढहियएणं ।। 7 ।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

एणिहं पि फलविवागं उग्गं दट्ठूणमकयपुण्णाणं ।
परलोयबन्धुभूयं करेमि मुणिसेवियं धम्मं ।। 8 ।।

जम्मन्तरे वि जेणं पावेमि न एरिसं महाभीमं ।
सयलजणोहसणिज्जं विडम्बणं दुज्जणजणाओ ।। 9 ।।

एवं च चिन्तिय पवन्नवेरग्गमग्गो निग्गओ नयराओ, पत्तो य मासमेत्तेण कालेण तव्विसयसन्धिसंठियं .....सुपरिओसं नाम तवोवणं त्ति । अह पविट्ठो सो तवोवणं । दिट्ठो य तेण तावसकुलप्पहाणो अज्जवकोडिण्ण नामो त्ति । पेच्छिऊण य पणमिओ तेणं । पुच्छिओ इसिणा— 'कुओ भवं आगओ ?' त्ति । तओ तेण सवित्थरो निवेइओ से अत्तणो वुत्तन्तो । भणिओ य इसिणा— 'वच्छ! पुव्वकयकम्मपरिणइवसेणं एवं परिकिलेसभाइणो जीवा हवन्ति । ता नरिन्दावमाणपीडियाणं, दारिद्दुक्खपरिभूयाणं, दोहग्गकलंकदूमियाणं, इट्ठजणविओगदहणतत्ताणं य एयं परं इह-परलोयसुहावहं परमनिव्वुइट्ठाणं त्ति । एत्थ—

पेच्छन्ति न संगकयं दुक्खं अवमाणणं च लोगाओ ।
दोग्गइपडणं च तहा वणवासी सव्वहा धन्ना ।। 10 ।।

एवमणुसासिएण भणियं अग्गिसम्मेणं— 'भगवं ! एवमेयं, न संदेहो त्ति । ता जइ भयवओ ममोवरि अणुकम्पा, उचिओ वा अहं एयस्स वयविसेसस्स, ता करेहि मे एयवयप्पयाणेणाणुग्गहं' त्ति । इसिणा भणियं— 'वच्छ ! वेरग्गमग्गाणुगओ तुमं ति करेमि अणुग्गहं, को अन्नो एयस्स उचिओ' त्ति । तओ अइकन्तेसु कइवयदिणेसु संमिऊण य सवित्थरं नियममायारं, पसत्थे तिहिकरणमुहुत्त-जोग-लग्गे दिन्ना से तावसदिक्खा ।

महापरिभवजणियवेरग्गाइसयभाविएण याणेण तम्मि चेव दिक्खादिवसे सयलतावसलोयपरियरियगुरुसमक्खं कया महापइन्ना । जहा— 'जावज्जीवं मए मासाओ मासाओ चेव भोत्तव्वं, पारणगदिवसे य पढमपविट्ठेणं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पढमगेहाओ चेव लाभे वा अलाभे वा नियत्तियव्वं, न गेहन्तरमभिगन्तव्वं ति ।' एवं च कयपइन्नस्स तस्स जहाकयं पइन्नमणुपालिन्तस्स अइक्कन्ता बहवे दियहा ।*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

संछन्न	= व्याप्त	**तिय**	= तिराहा	**चच्चरं**	= चौक
विलया	= स्त्री	**वसणं**	= अभ्यास	**इट्ठा**	= मनपसन्द
आइण्ण	= भरा हुआ	**उत्तिमंग**	= सिर	**वट्ट**	= गोल
चिविड	= चपटी	**बिलमेत्त**	= छेदमात्र	**तिरोहर**	= गर्दन
मडह	= छोटा	**कंसालय**	= मंजीरे	**रासह**	= गधा
कयत्थ	= अपमान	**पवन्न**	= प्राप्त	**दूमिय**	= दुखी
संग	= परिग्रह	**संसिऊण**	= समझाकर	**पसत्थ**	= अच्छा

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. क्षितिप्रतिष्ठित नगर में लोगों का लोभ था—

(क) धन में (ख) सन्तान में
(ग) युद्ध में (घ) निर्मल यश में [ ]

2. परलोक का एक मात्र बन्धु है—

(क) महल (ख) धन-पैसा
(ग) धर्म (घ) मित्र [ ]

---

* समराइच्चकहा— प्रथमखण्ड (सं०-डॉ. छगनलाल शास्त्री), बीकानेर, 1966 पृ. 12-18 से संक्षेप रूप में उद्धृत ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. गुणसेण के माता-पिता का क्या नाम था ?
2. अग्निशर्मा किस बात से दुखी था ?
3. अपमान से छुटकारा पाने के लिए अग्निशर्मा ने क्या किया ?
4. तपोवन में अग्निशर्मा ने क्या प्रतिज्ञा की ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) क्षितिप्रतिष्ठित नगर का वर्णन अपने शब्दों में करो।

(ख) अग्निशर्मा की कुरूपता का वर्णन करो।

(ग) गुणसेन अग्निशर्मा को कैसे सताता था, संक्षेप में लिखो।

(घ) अग्निशर्मा की वैराग्य भावना को संक्षेप में लिखो।

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

(क) संधिवाक्य	विच्छेद	संधिकार्य
नयणाणन्दो	नयण + आणन्दो	अ + आ = आ
गुणगणाइण्णो	गुणगण + आइण्णो	.....
जम्मन्तरे	जम्म + अन्तरे	.....

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 15 : गुणसेणं पइ नियाणो

पाठ-परिचय :

आचार्य हरिभद्रसूरि द्वारा रचित **समराइच्चकहा** में जो अग्निशर्मा एवं गुणसेन की कथा है, वह कई जन्मों तक चलती है। प्रथम जन्म में अग्निशर्मा एवं गुणसेन बचपन में मित्र थे। किन्तु गुणसेन के अपमान से दुखी होकर अग्निशर्मा साधु बन जाता है। और गुणसेन बड़े होने पर राजा बन जाता है।

इस गद्यांश में राजा गुणसेन और तापस अग्निशर्मा के पुनः मिलन तथा अनजाने में ही हुए अपमान का प्रसंग वर्णित है। राजा गुणसेन आश्रम में जाकर विनयपूर्वक अग्निशर्मा को अपने महल में भोजन लेने का निमन्त्रण देकर आता है। अग्निशर्मा भी बचपन के अपमान को भूलकर इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लेता है।

किन्तु अग्निशर्मा जब भोजन करने के लिए महल में पहुँचा तो उस दिन राजा गुणसेन के सिर में तीव्रवेदना होने से वहाँ किसी ने अग्निशर्मा की तरफ ध्यान नहीं दिया। वह वापिस लौटकर अपनी तपस्या में लीन हो गया। किन्तु राजा के द्वारा क्षमा मांगने पर वह दूसरे माह में महल में भोजन करने गया। उस दिन राजा शत्रु-सेना से लड़ने चला गया। अतः अग्निशर्मा को भोजन नहीं मिला। किसी प्रकार बहुत मनाकर राजा तीसरे माह में भोजन के लिए उसे बुला गया। किन्तु उस दिन राजा के यहाँ पुत्र-जन्म होने के कारण अग्निशर्मा को फिर भोजन नहीं मिला। तब उसने समझा कि यह गुणसेन बचपन की तरह अभी भी मेरा अपमान करने के लिए महल में बुलाता है। इस कारण अग्निशर्मा गुणसेन के प्रति दुर्भावना से भर जाता है। वह अपने मन में यह संकल्प करता है कि मैं जन्म-जन्मातर तक इस गुणसेन को इस अपमान का बदला चुकाऊँ। यही निदान उसके दुखों का कारण बनता है।

इओ य पुण्णचन्दो राया कुमारगुणसेणं कयदारपरिग्गहं रज्जे अभिसिंचिऊण सह कुमुइणीए देवीए तवोवणवासी जाओ। सो य कुमार-गुणसेणो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अणेय-सामन्तपणिवइय- चलणजुयलो, निज्जय-नियमण्डलाहियाणेगमण्डलो, दसदिसि विसट्टनिम्मलविस्सुय-जसो, धम्मत्थकामलक्खण तिवग्गसंपायणरओ महाराया संवुत्तो त्ति ।

एकदा सो राया गुणसेणो भत्ति-कोउगेहि गओ तं तवोवणं ति । दिट्ठा य तेणं तत्थ बहवे तावसा, कुलवई य । दिट्ठो य तेण पउमासणोवविट्ठो, थिरधरियनयणजुयलो, पसन्तविचित्तचित्तवावारो, किंपि तहाविहं झाणं झायन्तो अग्गिसम्मतावसो त्ति । तओ राइणा भणियं- 'भयवं ! किं ते इमस्स महादुक्करस्स तवचरणववसायस्स कारणं ?' अग्गिसम्मतावसेण भणियं- 'भो महासत्त ! दारिद्दुक्खं, परपरिहवो, विरूवया, तहा महारायपुत्तो य गुणसेणो नाम कल्लाणमित्तो' त्ति ।

तओ राइणा कुमारवुत्तन्तं सुमरिऊण भणियं लज्जावणयवयणेण- 'भयवं ! अहं सो महापावकम्मयारी तुह हिययसंतावयारी अगुणसेणो' त्ति । अग्गिसम्मतावसेण भणियं- 'भो महाराय ! सागयं ते । कहं तुमं अगुणसेणो ? जेण तए परपिण्डजीवियमेत्तविहवो अहं ईइसिं तवविभूइं पाविओ' त्ति । राइणा भणियं- 'अहो ! ते महाणुभावया, किं वा तवस्सिजणो पियं वज्जिय अन्नं भणिउं जाणइ ? न य मियंकबिम्बाओ अंगारवुट्ठीओ पडन्ति । ता अलं एइणा । भयवं ! कया ते पारणगं भविस्सइ ?'

अग्गिसम्मेण भणियं- 'महाराय ! पंचहिं दिणेहिं ।' राइणा भणियं- 'भयवं ! जइ ते नाईव उवरोहो, ता कायव्वो मम गेहे पारणएण पसाओ । विन्नाओ य मए कुलवइणो सयासाओ तुज्झ पइन्नाविसेसो, अओ अणागयं पत्थेमि' त्ति । अग्गिसम्मेण भणियं- 'महाराय ! आगच्छउ ताव सो दियहो, को जाणइ अंतरे किंपि भविस्सइ ।' राइणा भणियं- 'भयवं ! विग्घं मोत्तूण संगच्छह ।' अग्गिसम्मतावसेण भणियं- 'जइ एवं ते निब्बन्धो, ता एव पडिवन्ना ते पत्थणा ।' तओ राया पणमिऊण हरिसवसपुलइयंगो कंचि वेलं गमेऊण पविट्ठो नयरं ।

अइक्कन्तेसु य पंचसु दिणेसु पारणगदिवसे पढमं चेव पविट्ठो अग्गि-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्मतावसो पारणग-निमित्तं रायगेहं त्ति । तम्मि य दियहे कहंचि राइणो गुणसेणस्स अतीव सीसवेयणा समुप्पन्ना । तओ आउलीहूयं सव्वं चेव राय-उलं । तओ सो अग्गिसम्मतावसो एवं विहे रायकुले कंचि वेलं गमेऊणं वयण-मेत्तेणावि केणावि अकयपडिवत्ती निग्गओ रायगेहाओ त्ति । निग्गन्तूण गओ तवोवणं । तेण कुलवई निवेइओ जहावत्तं ।

इओ य राइणा गुणसेणेणं उवसन्तसीसवेयणेणं पुच्छिओ परियणो । परियणेहिं संलत्तं जहावत्तं । राइणा भणियं– 'अहो ! मे अहन्नया, चुक्कोमि महालाभस्स, संपत्तो य तवस्सिजणदेहपीडाकरणेण महन्तं अणत्थं' ति । एवं विलविऊणं बिइय दियहे पहायसमए चेव गओ तवोवणं । तेण निवेइओ कुलवई निअपमायं अवराहं च ।

तओ कुलवइणा सद्दाविओ अग्गिसम्मतावसो, सबहुमाणं हत्थे गिण्हि-ऊण भणिओ य णेण– 'वच्छ! जं तुमं अकयपारणगो निग्गओ नरिन्दगेहाओ, एएण दढं संतप्पइ राया । अत्थ निवस्स अवराहं नत्थि । अओ इण्हिं संपत्त-पारणगकालेण भवया अविग्घेण मम वयणाओ नरिन्दबहुमाणओ य एयस्स गेहे पारणगं करियव्वं' ति । अग्गिसम्मतावसेण भणियं– 'भयवं ! जं तुब्भे आणवेह ।'

पुणो य कालक्कमेण राइणो विसयसुहमणुहवन्तस्स, अग्गिसम्मस्स य दुक्करं तवचरणविहिं करेन्तस्स समइक्कन्तो मासो त्ति । एत्थन्तरम्मि य संपत्तो पारणगदिवसे रायउले अइ सम्भमं संजायं । राया गुणसेणो मन्ति-साम-न्ताइसंतिओ ससेन्नो संगामभूमिए गच्छिउं पवत्तो । तम्मि समए अग्गिसम्म-तावसो पारणगनिमित्तं पविट्ठो नरिन्दगेहं । तओ तम्मि महाजणसमुदए आउलीहूए नरिन्द-निग्गमणनिमित्तं पहाणपरियणे न केणइ समुवलक्खिओ अग्गिसम्मो । तओ सो कंचि वेलं गमेऊण दरियकरि-तुरयसंघायचमढण-भीओ निग्गओ नरवइगेहाओ ।

तस्स निग्गमणं आयण्णिऊण ससंभन्तो राया पयट्टो तस्स मग्गे, दिट्ठो य णेणं नयराओ निग्गच्छन्तो अग्गिसम्मतावसो । तओ सो भत्तिनिब्भरं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

निवडिऊण चलणेसु विन्नत्तो सबहुमाणं—'भयवं! करेह पसायं, विणियत्तसु। लज्जिओ म्हि इमिणा पमायचरिएणं' त्ति। अग्गिसम्मेण भणियं—'महाराय! अनिमित्तं ते दुक्खं। तहावि एयस्स इमो उवसमोवाओ। अविग्घेण संपत्ते पारणगदिवसे पुणो वि तुह चेव गेहे आहारगहणं करिस्सामि त्ति पडिवन्नं मए। ता मा संतप्पसु' त्ति।

तओ भणियं राइणा- 'भगवं! अणुगिहीओ म्हि। सरिसं इमं तुह अकारणवच्छलायाए।' एवं भणिय पणमिऊण य अग्गिसम्मतावसं नियत्तो राया। अग्गिसम्मो वि य गन्तूण तवोवणं निवेइयं कुलवइणो जहावित्तं वृत्तन्तं।

अणुदियहं च पवड्ढमाणसंवेगेण राइणा सेविज्जन्तस्स तस्स समइच्छिओ मासो, पत्तो य रन्नो मणोरहसएहिं पारणयदियहो। तम्मि य पारणयदियहे राइणो गुणसेणस्स देवी वसन्तसेणा दारयं पसूय त्ति। तओ राइणा आएसेण नयरे महूसवो पवत्तो। एवंविहे य देवीपुत्तजम्मब्भुदयाणन्दिए महापमत्ते सह राइणा रायपरियणे अग्गिसम्मतावसो पारणगनिमित्तं रायउलं पविसिऊण वयणमेत्तेणावि केणइ अकयपडिवत्ती असुहकम्मोदएणं अट्टझाणदूसियमणो लहुं चेव निग्गओ।

चिन्तियं च अग्गिसम्मेण— 'अहो! से राइणो आबालभावाओ चेव असरिसो ममोवरि वेरानुबन्धो त्ति। पेच्छह से अइणिगूढायारमाचरियं जेण तं तहा मम समक्खं मणाणुकूलं जंपिय करणेण विवरीयमायरइ' त्ति चिन्तयन्तो सो निग्गओ नयराओ।

एत्थन्तरम्मि य अन्नाणदोसेणं अभावियपरमत्थमग्गत्तणेण य गहिओ कसाएहिं, अवगया से परलोयवासणा, पणट्ठा धम्मसद्धा, समागया सयलदुक्खतरुबीयभूया अमेत्ती, जाया य देहपीडाकरी अतीव बुभुक्खा। आकरिसिओ बुभुक्खाए। तओ—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पढमपरीसहवइएण तेण अन्नाणकोहवसएणं ।
घोरं नियाणमेयं पडिवन्नं मूढहियएणं ।। 1 ।।

जइ होज्ज इमस्स फलं मए सुचिण्णस्स वयविसेसस्स ।
ता एयस्स वहाए पइजम्मं होज्ज मे जम्मो ।। 2 ।।

न कुणइ पसाईण पियं जो पुरिसो विप्पियं च सत्तूणं ।
किं तस्स जणणिजोव्वणविउडणमेत्तेण जम्मेणं ।। 3 ।।

सत्तू य एस राया मम सिमुभावाउ चेव पावो त्ति ।
अवराहमन्तरेण वि करेमि तो विप्पियमिमस्स ।। 4 ।।

इय काऊण नियाणं अप्पडिकन्तेण तस्स ठाणस्स ।
अह भावियं सुबहुसो कोहाणलजलियचित्तेण ।। 5 ।।

एत्थन्तरम्मि पत्तो एसो तवोवणं । तत्थ एगागी उवविट्ठो अणुसयवसेण पुणो वि चिन्तिउमारद्धो– अहो ! से राइणो ममोवरि पडिणीय भावो । तहोवणिमन्तिय असंपाडणेण पारणयस्स किल मं खलीकरेइ त्ति । अहवा अपरिचत्ताहारमेत्तासंगस्स मे एत्तहमेत्ता कयत्थणा त्ति । ता अलं मे जावज्जीवं चेव परिहवमेत्तेण आहारेण ति गहियं जावज्जीवियं महोववासवयं ।'

सव्वं वि जाणिऊण कुलवइणा भणियं– 'वच्छ ! जइ परिचत्तो आहारो गओ इयाणिं कालो आणाए । सच्चपइन्ना खु तवस्सिणो हवन्ति । किंतु तुमए नरिन्दस्स उवरिं कोवो न कायव्वो । जओ–

सव्वं पुव्वकयाणं कम्माणं पावए फलविवागं ।
अवराहेसु, गुणेसु य निमित्तमेत्तं परो होइ ।। 6 ।।*

* समराइच्चकहा, वही, पृ. 18 से 36 संक्षेपरूप में उद्धृत ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

विस्सुय	= प्रसिद्ध	**पसन्त**	= शान्त	**झाण**	= ध्यान
विरूवया	= कुरूपता	**सुमरिऊण**	= यादकर	**ईइसि**	= इस प्रकारकी
वज्जिय	= छोड़कर	**बुट्ठी**	= वर्षा	**पारणगं**	= भोजन
उवरोहो	= आपत्ति	**पइज्ञा**	= प्रतिज्ञा	**पत्थ**	= प्रार्थना करना
निबन्धो	= आग्रह	**आउलीहूय**	= व्याकुल	**पडिवत्ती**	= खबर
इण्हिं	= इस बार	**समुदअ**	= भीड़	**चमढण**	= कुचलना
पडिवन्नं	= स्वीकार	**दारय**	= पुत्र	**अट्टझाण**	= दूषित ध्यान

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) शब्दरूप	मूलशब्द	विभक्ति	वचन	लिंग
रज्जे	रज्ज	सप्तमी	ए. व.	न. पुं.
तावसा	तावस	.....	.....	.....
इमस्स	इम	.....	.....	.....
जेण	ज	.....	.....	.....
कुलवइणा	कुलवई	.....	.....	.....
वयणाओ	वयण	.....	.....	.....
कसाएहिं	कसाअ	.....	.....	.....
बुभुक्खाए	बुभुक्खा	.....	.....	.....

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. 'कल्लाणमित्तो' विशेषण कहा गया है—

(क) कुलपति के लिए (ख) गुणसेन के लिए

(ग) अग्निशर्मा के लिए (घ) द्वारपाल के लिए [ ]

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

2. अग्निशर्मा को भोजन के लिए बुलाया था—

(क) नगर-सेठ ने (ख) कुलपति ने

(ग) गुणसेन राजा ने (घ) तपस्वी ने [ ]

4. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. अग्निशर्मा ने अपनी कठोर साधना के क्या कारण बतलाये थे ?
2. राजा के यहाँ अग्निशर्मा को भोजन न मिल पाने के क्या कारण थे ?
3. गुणसेन की हार्दिक भावना क्या थी ?
4. अन्त में अग्निशर्मा के गुणसेन के प्रति क्या विचार बने ?
5. कुलपति ने अग्निशर्मा को क्या समझाया ?

5. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) इस पाठ का सार अपने शब्दों में लिखो।

(ख) अग्निशर्मा के स्वभाव की विशेषताएं लिखिए।

(ग) इस पाठ की गाथा 3 एवं 6 का अर्थ समझाकर लिखिए।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 17 : मित्तस्स कवडं

पाठ-परिचय :

प्राकृत कथा साहित्य का एक अनुपम ग्रन्थ है— **कुवलयमालाकहा**। इसे उद्द्योतनसूरि ने सन् 779 में जालौर (राज.) में लिखा था। इस ग्रन्थ में क्रोध, मान, माया, लोभ, और, मोह जैसी वृत्तियों को पात्र बनाकर उनकी कथा कही गयी है। कुवलयमाला धर्म-कथा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति का भी प्रतिनिधि ग्रन्थ है।

प्रस्तुत कथांश मायादित्य की कथा का है। मायादित्य और स्थाणु मित्र बन जाते हैं। दोनों धन कमाने के लिए दक्षिण भारत के नगर प्रतिष्ठान जाते हैं। लौटते समय दश रत्नों के रूप में वे अपने धन को एक पोटली में बांधकर लाते हैं। रास्ते में मायादित्य अपने मित्र स्थाणु से कपट-व्यवहार कर रत्नों की पोटली ले जाना चाहता है। किन्तु दुर्भाग्य से वह कंकड़ों की पोटली लेकर भाग निकलता है। रत्न स्थाणु के पास ही रह जाते हैं। फिर भी मायादित्य मित्र को ठगने का प्रयत्न करता रहता है और अन्त में दुःख पाता है।

महाणयरीए वाणारसीए पच्छिम-दक्खिणे दिस भ ाए सालिग्गामं णाम गामं। तहिं च एक्को वइस्सजाई परिवसइ गंगाइच्चो णाम। तम्मि य गामे अणेय-धण-धण्ण-हिरण्ण-सुवण्णसमिद्धजणे वि सो च्चेय एक्को जम्मदरिद्दो। तस्स कवडपुण्णववहारेण मायाइच्चो नामं पसिद्धं जायं। अह तम्मि चेय गामे एक्को वाणियओ पुव्वपरियलिय-विहवो थाणू नाम। तस्स तेण सह मायाइच्चेण कहवि सिणेहो संलग्गो। तेसिं मेत्ती जाया।

अण्णया धणज्जणत्थं अण्णम्मि दियहे कयमंगलोवयारा, आउच्छि-ऊण सयण-णिद्धवग्गं गहिय पच्छयणा णिग्गया दुवे वि। तत्थ अ ाय गिरि-सरियासयसंकुलाओ अडईओ उल्लंघिऊण कह कह वि पत्ता प.ट्ठ णं णाम

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

णयरं। तहिं च णयरे अणेय धणधण्ण-रयणसंकुले महासग्गणायरसरिसे णाणा-वाणिज्जाइं कयाइं, पेसणाइं च करेमाणेहिं कह कह वि एक्केक्क-मेहिं विढत्ताइं पंच पंच सुवण्ण-सहस्साइं।

भणियं च णेहिं परोप्परं– 'अहो ! विढत्तं अम्हेहिं जं इच्छामो अत्थं। एयं च चोराइ-उवद्दवेहिं ण य णेउं तीरइ सएसट्ठत्तं। ता तं इमेण अत्थेण सुवण्णसहस्समोल्लाइं रयणाइं पंच पंच गेण्हिमो। ताइं सदेसं गयाणं सम-मोल्लाइं अहिय-मोल्लाइं वा वच्चहि।' ति भणिऊण गहियं एक्केक्क सुवण्ण सहस्समोल्लं। एवं च एयाइं एक्केक्कस्स पंच पंच रयणाइं। ताइं च दोहि मि जणेहिं दस वि रयणाइं एक्कम्मि चेय मल-धूलीधूसरे कप्पडे सुबद्धाइं। कयं च णेहिं वेस-परियत्तं।

तेहिं कयाइं मुंडावियाइं सीसाइं। गहियाओ छत्तियाओ। लंबियं डंडयग्गे लावुयं। धाउ-रत्तयाइं कप्पडाइं। विलग्गाविया सिक्कए करंका। सव्वहा विरइओ दूर-तित्थयत्तियवेसो। ते य एवं परियत्तिय-वेसा अलक्खिया चोरेहिं भिक्खं भममाणा पयट्टा। कहिंचि मोल्लेणं कहिंचि सत्तागारेसु कहिंचि उद्ध-रत्थासु भुंजमाणा पत्ता एक्कम्मि संणिवेसे।

तत्थ भणियं थागुणा– 'भो भो मित्त ! ण पारेमो परिसंता भिक्खं भमिऊणं, ता अज्ज मंडए कारावेउं आहारेमो।' भणियं च मायाइच्चेणं– 'जइ एवं, ता पविससु तुमं पट्टणं। अहं समुज्जुओ ण याणिमो कय-विक्कयं, तुमं पुण जाणसि। तुरियं च तए आगंतव्वं।' भणियं च थागुणा– 'एवं होउ, किं पुण रयण-पोत्तडं कहं कीरउ' ति। भणियं मायाइच्चेण– 'को जाणइ पर-पट्टणाण थिई ? ता मा आवाओ को वि होहि त्ति तुह पविट्ठस्स मह चेव समीवे चिट्ठउ रयण-कप्पडं' ति। तेण वि एवं भणमाणेण सम-प्पियं तं रयण-कप्पडं। समप्पिऊण पविट्ठो पट्टणं।

चिंतियं च मायाइच्चेणं– 'अहो ! इमाइं दस रयणाइं, ता एत्थ मह पंच। जइ पुण एयं कहिंचि वंचेज्ज ता दस वि मह चेव हवेज्ज' त्ति चिंतयंतस्स बुद्धी समुप्पण्णा 'दे घेत्तूण पलायामि। अहवा ण महंती वेला गयस्स, संपयं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पावइ ति । ता जहा ण याणाइ तहा पलाइस्सामि' त्ति चिंतिऊण गहिओ णेण रच्छाधूलिधूसिरो अवरो तारिसो चेव कप्पडो । णिबद्धाइं ताइं रयणाइं । तम्मि त चिरंतणे रयण-कप्पडे णिबद्धाइं तप्पमाणाइं वट्टाइं दस पाहाणाइं । तं च तारिसं कूड-कवडं संघडंतस्स सहसा आगओ सो थाणू ।

तस्स य हल्लफलेण पाव-मणेण ण णाओ कत्थ परमत्थ-रयण-कप्पडो, कत्थ वा अलिय-रयणकप्पडो त्ति । तओ णेण भणियं– 'वयंस ! कीस एवं समाउलो ममं दट्ठूणं ?' ति । भणियं मायाइच्चेणं– 'वयंस ! एस एरिसो अत्थो णाम भओ चेय पच्चक्खो, जेण तुमं पेच्छिऊण सहसा एरिसा बुद्धी जाया– 'एस चोरो' ति । ता इमिणा भएणं अहं सुसंभंतो ।' भणियं च थाणुणा– 'धीरो होहि' त्ति । तेण भणियं— 'वयंस ! गेण्ह एयं रयण-कप्पडं, अहं बीहिमो । ण कज्जं मम इमिणा भएण' ति भणमाणेण अलिय-रयण-कप्पडो त्ति काऊण सच्च-रयणकप्पडो वंचणबुद्धीए एस तस्स समप्पिओ । तेण वि अवियप्पेण चेय चित्तेण गहिओ ।

तओ तं च समुज्जुय-हिययं पावहियएण वंचिऊण भणियमणेण– 'वयंस ! वच्चामि अहं किंचि अंबिलं मग्गिऊण आगच्छामि' ति भणिउण जं गओ तं गओ, ण णियत्तइ । इमेण य जोयणाइं वारस-मेत्ताइं दियहं राइं च गंतूण णिरूवियं णेण रयण-कप्पडं जाव पेच्छइ ते जे पाहाणा तत्थ बद्धा किर वंचणत्थं तम्मि कप्पडे सो चेय इमो अलिय-रयणकप्पडो । तं च दट्ठूण इमो वंचिओ इव, लुंचिओ इव, पहओ इव, तत्थो इव, मत्तो इव, सुत्तो इव, मओ इव तहाविहं अणायक्खणीयं महंतं मोहमुवगओ ।

खणमेत्तं च अच्छिऊण समासत्थो । चिंतियं च णेण– 'अहो ! एरिसो अहं ,मंदभागो जेण मए चिंतियं किर एयं वंचिमो जाव अहमेव वंचिओ' । चिंतियं च णेण पाव-हियएणं– 'दे पुणो वि तं वंचेमि समुज्जुय-हिययं, तहा करेमि जहा पुणो मग्गेण विलग्गइ ।' त्ति चिंतयंतो गयट्ठो तस्स मग्गालग्गो ।*

---

* कुवलयमालाकहा (सं०-डॉ. ए. एन. उपाध्ये), बम्बई, 1959, पृ 56-58। से संक्षेप रूप में उद्धृत ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

परियलिय	= एकत्र	**अज्जणत्थं**	= कमाने के लिए	**पच्छयणा**	= नास्ता
विढत्त	= कमाना	**छत्तिया**	= छाता	**लावुयं**	= तूमड़ी
करंका	= कांवर	**सत्तागार**	= अतिथिशाला	**मंडए**	= रोटी
पट्टण	= बाजार	**समुज्जुअ**	= भोला	**पोत्तड**	= पोटली
आवाओ	= आपत्ति	**चिरंतण**	= पुराना	**वट्ट**	= गोल

2. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. गंगादित्य का नाम मायादित्य क्यों पड़ा ?
2. दोनों मित्रों ने अपने धन को किस में बदला ?
3. मायादित्य ने रत्न हड़पने के लिए क्या उपाय किया ?

3. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) मायादित्य स्वयं ही किस प्रकार छला गया, संक्षेप में लिखिए ।

(ख) कंकड़ों की पोटली देखने पर मायादित्य की हालत कैसी हो गयी और उसने क्या सोचा ?

(ग) मित्र से कपट करने की कोई दूसरी कथा लिखिए ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 18 : धणदेवस्स पुरिसत्थं

पाठ-परिचय :

उद्द्योतनसूरि द्वारा रचित **कुवलयमालाकहा** में कई उपदेशात्मक और प्रेरणात्मक कथाएं हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह के दुष्परिणामों को इस ग्रन्थ में मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसके लिए चार जन्मों की कथा ग्रन्थकार ने प्रस्तुत की है।

प्रस्तुत गद्यांश लोभदत्त (धनदेव) की कथा का है। इसमें कहा गया है कि धनदेव यद्यपि धन का लोभी था। किन्तु पिता के द्वारा कमाये गए धन को वह अपना नहीं मानता था। अत: पिता की आज्ञा लेकर वह स्वयं धन कमाने को निकलता है। उसका पिता अपने पुत्र के पुरुषार्थ और उत्साह को देखकर उसे विदेश जाने की अनुमति दे देता है। साथ ही रास्ते में आने वाली कठिनाईयों का सामना करने की शिक्षा भी देता है। इस कथा से यह भी पता चलता है कि उस समय धन का उपयोग जन-कल्याणकारी कार्यों में भी किया जाता था।

अत्थि इमम्मि चेय लोए जंबूदीवे भारहे वासे वेयड्ढ-दाहिणमज्झिम-खंडे उत्तरावहं णाम पहं। तत्थ तक्खसिला णाम णयरी। तीए य णयरीए पच्छिम-दक्खिणे दिसाभाए उच्चत्थलं णाम गामं, सग्गणयरं पिव सुर-भवणेहिं, पायालं पिव विविहरयणेहिं, गोट्ठंगणं पिव गो-संपयाए, धणयपुरी-विय धण-संपयाए त्ति।

तम्मि गामे सुद्द-जाइओ धणदेवो णाम सत्थवाहउत्तो। तत्थ तस्स सरिस सत्थवाहउत्तेहिं सह कीलंतस्स वच्चए कालो। सो पुण लोहपरो अत्थ-गहण-तल्लिच्छो मायावी वंचओ अलियवयणो पर-दव्वावहारी। तओ तस्स एरिसस्स तेहिं सरिस-सत्थवाहजुवाणेहिं धणदेवो त्ति अवहरिउं लोहदेवो त्ति से पइट्ठियं णामं। तओ कय-लोहदेवाभिहाणो दियहेसु वच्चंतेसु महाजुवा जोग्गो संवुत्तो।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तओ उद्धाइओ इमस्स लोभो बाहिउंपयत्तो, तम्हा भणिओ य णेण जणओ— 'ताय ! अहं तुरंगमे घेत्तूण दक्खिणावहं वच्चामि । तत्थ बहुयं अत्थं विढवेमो । जेण सुहं उवभुंजामो' त्ति ।

भणियं च से जणएण— 'पुत्त ! केत्तिएण ते अत्थेण ? अत्थि तुहं महं पि पुत्त-पवोत्ताणं पि विउलो अत्थसारो । ता देसु किवणाणं, विभयसु वणीमयाणं, दक्खेसु बंभणे, कारावेसु देवउले, खाणेसु तलाय-बंधे, बंधावेसु वावीओ, पालेसु सत्तायारे, पयत्तेसु आरोग्ग-सालाओ, उद्धरेसु दीण-विहले त्ति । ता पुत्त ! अलं देसांतर-गएहिं ।'

भणियं च लोहदेवेणं— 'ताय ! जं एत्थ चिट्ठइ तं साहीणं चिय, अण्णं अपुव्वं अत्थं आहरामि बाहु-बलेणं ति ।' तओ तेण चिंतियं सत्थवाहेणं- 'सुंदरो चेय एस उच्छाहो । कायव्वमिणं, जुत्तमिणं, सरिसमिणं धम्मो चेय अम्हाणं जं अउव्वं अत्थागमणं कीरइ त्ति । ता ण कायव्वो मए इच्छा-भंगो, ता देवच्चउ' ति चिंतिउं तेण भणिओ— 'पुत्त ! जइ ण ट्ठायसि, तओ वच्च ।'

एवं भणिओ पयत्तो । सज्जीकया तुरंगमा, सज्जियाइं जाण-वाहणाइं, गहियाइं पच्छयणाइं चित्तविया आडियत्तिया, संठविओ कम्मयरजणो, आउच्छिओ गरुयणो, वंदिया रोयणा, पयत्तो सत्थो, चलियाओ वलत्थाउ । तओ भणिओ सो पिउणा— 'पुत्त ! दूरं देसांतरं, विसमा पंथा, णिट्ठुरो लोओ, बहुए दुज्जणा, विरला सज्जणा, दुप्परियल्लं भंडं, दुद्धरं जोव्वणं, दुल्ललिओ तुमं, विसमा कज्जगई, अणत्थरुई कयंतो, अणवरद्ध-कुद्धा चोर त्ति । ता सव्वहा कहिंचि पंडिएणं कहिंचि मुक्खेणं कहिंचि दक्खिणेणं, कहिंचि णिट्ठुरेणं कहिंचि दयलुणा, कहिंचि णिक्किवेणं, कहिंचि सूरेणं, कहिंचि कायरेणं कहिंचि चाइणा, कहिंचि किमणेणं, कहिंचि माणिणा, कहिंचि दीणेणं, कहिंचि वियड्ढेणं, कहिंचि जडेणं ।' एवं च भणिऊण णियत्तो सो जणओ ।

इमो वि लोहदेवो संपत्तो दक्खिणावहं केण वि कालंतरेण । समावासिओ सोप्पारए णयरे भद्दसेट्ठी णाम जुण्णसेट्ठी तस्स गेहम्मि । तओ केण

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

वि कालांतरेण महग्घ-मोल्ला दिण्णा ते तुरंगमा। विढत्तं महंतं अत्थसंचयं। तं च घेत्तूणं सदेसहुत्तं गंतुमणो सो सत्थवाहपुत्तो त्ति।*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

सग्ग	= स्वर्ग	धणय	= कुबेर	सुद्दजाइ	= शूद्र जाति
तल्लिच्छ	= तल्लीन	अलिय	= झूठ	पइट्ठिअं	= रख दिया
उद्धाइओ	= उत्पन्न करना	पवोत्त	= प्रपौत्र	खाण	= खुदाना
आडयत्तिय	= दलाल	कयंत	= यमराज	णियत्त	= लौटना

2. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. धनदेव का नाम लोभदेव क्यों रखा गया ?
2. धनदेव के पिता ने उसे विदेश जाने से क्यों रोका ?
3. अन्त में पिता ने क्या सोचकर धनदेव को अनुमति दे दी ?

3. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) धनदेव के पिता ने किन कार्यों में धन खर्च करने के लिए कहा था ?

(ख) विदेश जाते समय धनदेव को उसके पिता ने क्या शिक्षा दी थी ?

(ग) धनदेव कहाँ गया और उसने कैसे धन कमाया ?

---

* कुवलयमालाकहा, वही, पृ. 64-65।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अण्णया महुर-वयण-विनय-सीलसमा[रा]हण–पमुहगुण–रंजिएण सेट्ठिणा गुणनिप्फण्णं 'चंदणबाल' त्ति बीयं नामं पइट्ठियं। एवं सा तत्थ जहा नियमंदिरे तहा सुहेण कालं गमेइ। तग्गुणावज्जियमाणसो नयरलोगो वि तं पसंसेइ। "अहो ! सीलं। अहो ! सुसीलत्तणं। अहो ! अमय-महुरं वयणं। किं बहुणा ? सव्वमुणमई एसा विहिणा विणिम्मिया।" एवं सव्वत्थ-पत्त-पसंसा तरुणमण-हरिण-हरण-वागुरोवमं जोव्वणमारुहंतीए पत्तो गिम्हकालो चंदणबालाए।

तओ जहा जोव्वणं समारुहइ पसंसिज्जइ य घर-नयर-लोएण, तहा समुप्पण्ण-मच्छरा सयलाणत्थमूला मूला दूमिज्जइ। निय-चित्तेण चिंतेइ– "अहो ! एसा मह अभोयणा विसूइया, निन्निबंधणा विसकंदलि व्व पवड्ढ-माणा सव्वाणत्थनिबंधणा, किंपाग-फल-भक्खणं व विरसावसाणा, लहु-वाहि व्व उव्वेक्खिया दुक्खदायगा भविस्सइ। एवं कुवियप्प-सय-संकुलाए वच्चइ कालो मूलाए।

अण्णया मज्झण्ण-समए एगागी चेव सभवणमागओ सेट्ठी, नत्थि घरे को वि परियण-मज्झाओ। मूला वि धवलहरोवरि मत्तालंबगया चिट्ठइ। अइविणीययाए करवयं गहाय निग्गया चंदणबाला। दिन्नमब्भुक्खणं सज्जी-कयमासणं, चलणसोयणत्थमुवट्ठिया। निवारिया सेट्ठिणा तह वि धोवंतीए पविलुलिओ दीहर-कसिण-कुडिल-सण्हसिणिद्ध-कुंतल-कलाओ मणागमप्पत्तो चेव भूमीए 'मा पंके पडउ' त्ति लीला-लट्ठीए धरेऊण पुट्ठिए आरोविओ सेट्ठिणा बद्धो य सिणेहसारं।

मूला वि उल्लोयण-गया तं पेच्छिऊण दूमिया चित्तेण। चिंतिउं पवत्ता–"अहो ! विनट्ठं। परूढ-पणओ सेट्ठी दीसइ। पडिवण्ण-दुहिया य एसा। न नज्जइ कज्ज-परिणामो। जइ कह वि घरिणी कीरइ, तोहं घर-सामिणी न हवामि। एयमेत्थ पत्तयालं–तरुणी चेव वाही छिज्जइ। को नाम सयन्नो नहच्छेज्जं [.....]करेज्जा ?।" एवमणप्प-कुवियप्पिधण-संवु-क्किय-कोवाणलाए सेट्ठिम्मि निग्गए, ण्हाविय सद्दाविय बोड़ाविया चंदणबाला

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मूलाए । भरिया नियलाण । पहया पण्हिप्पहारेहिं । निब्भच्छिया खर-फरुस-वयणेहिं । सद्दाविऊण भणिओ नियपरियणो–"जो एयं सेट्ठिस्स साहिस्सइ सो सयमेव मए निद्धाडेयव्वो" भिउडिं काऊण भेसिया । पवेसिया य एगम्मि उवरगे । संजमियं दुवारं । दिण्णं तालयं । कया निय-करे कुंचिया ।

खणंतराओ समागओ सेट्ठी । पुच्छइ परियणं–"कहिं चंदणबाला?" मूला-भय-भीओ न साहइ परियणो । सो जाणइ बाहिं रमंति उवरि वा चिट्ठइ । रत्तिं पि समा[ग]ओ पुच्छइ । न को वि साहइ । नूणं सुत्ता भविस्सइ । सुत्तो सेट्ठी । बीय-दिवसे वि न दिट्ठा । पुट्ठो परियणो । न केण वि सिट्ठा । संकिओ मणागं चित्तेण । पुच्छिया मूला–"पिए ! चंदणबाला न दीसइ को एस वुत्तंतो ?" उत्थुंगकिय-मुहीए सकोवं जंपियमिमीए–"किं नत्थि ते किंपि कम्मंतरं जेण दासरूय-चिंतासमाउलो एवं खिज्जसि ? सेट्ठिणा भणियं–'पिए! पियं पयंपसु । न एस सुंदरो समुल्लावो । का तम्मि मच्छरो ?" तीए भणियं–"जइ एवं अहं मच्छरिणी जाणिया तो कीस मं पुच्छसि ?" सेट्ठिणा भणियं–"संपयं मए वि याणियं जहा तुमं मूलं सयलाणत्थाण । अओ परं न पुच्छामि ।"

वोलीणो बीओ वि वासरो । तइय दियहे कुद्धो पुच्छइ परियणं–"साहह, नो भे मारीहामि ।"तओ एगा थेरदासी चिंतेइ–'किं ममवजीविएणं । एसा जीवउ वराई ।' साहिऊण तीए वुत्तंत्तं भणिओ सेट्ठि–'एत्थोरगे चिट्ठइ ।' गओ तत्थ संभंतो । न पेच्छइ कुंचियं ।

तओ भग्गाणि कहकहवि कवाडाणि । तहाविहावत्थं दट्ठूण बालं बाहाविल-लोयणेण खलंतक्खरं जंपियं सेट्ठिणा–"पुत्ति, चंदण-सीयला ! तुमं कहं एरिसं दसंतरं पाविया ? अहवा नत्थि अविसओ दुज्जण-जण-विल-सियस्स ।"

तओ असणं पमग्गिओ । तं पुणं अणागयमेव ओसरियं मूलाए । इओ तओ गवेसयंतेण दिट्ठा सुप्पकोणे कुम्मासे ते तहेव तीए समप्पिऊण नियल-भंजण-निमित्तं गओ अप्पणा लोहार-घरं । सा वि एलुगं विक्खंभइत्ता

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

संपन्नं समीहियं जाया दिव्वदिट्ठी, उल्लसियं अमाणुसोच्चियं वीरियं, समुप्पण्णा अण्णच्चिय देहप्पहा, ता किं भणामि तुमं ? को सुविणे वि तुमं मोत्तूण अण्णो एवंविहं मग्गं परोवयारेक्करसियं पडिवज्जइ ? अहं तुम्ह गुणेहिं उवकरणीकओ ण सक्कुणोमि भासिउं 'गच्छामि' त्ति सकज्जणिट्ठुरया, 'परोपयारतप्परो सि' त्ति अत्थेणं चेव दिट्ठस्स पुणरुत्तं, 'तुम्हायत्तं जीवियं' ति ण णेहभावोचियं, 'बंधवोसि' त्ति दूरीकरणं, 'णिक्कारणं परोपयारित्तणं, ति अणुवाओ कयग्घलावेसु, 'संभरणीओ अहं' ति आणत्तियादाणं। एवमादि भणिऊण गओ भइरवायरिओ सह तेहिं सीसेहिं।*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

पच्चूस	= प्रातःकाल	**वग्घकत्ती**	= व्याघ्रचर्म	**मियकत्ती**	= मृगछाला
खलीकाउं	= मज़ाक करना	**आढत्त**	= प्रारंभ करना	**संवाणिय**	= युक्त
भइयजण	= भक्तजन	**णिव्विकचण**	= धन रहित	**सच्छ**	= निर्मल
अत्थिजण	= याचक	**आयत्ता**	= निर्भर	**आणत्तिया**	= आज्ञा

2. निबन्धात्मक प्रश्न :

1. भैरवाचार्य द्वारा आसन देने पर राजा ने क्या कहा ?
2. राजा को भैरवाचार्य ने क्या कार्य बतलाया ?
3. मन्त्रसाधना पूरी होने पर आचार्य ने किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट की ?
4. पाठ की गाथा नं. 1 एवं 2 का अर्थ समझाकर लिखो।

---

* चउप्पन्नमहापुरिसचरियं (सं.-मुनि पुण्यविजय), वाराणसी, 1961 एवं मुनिचन्द्रकथानक (सं.--डॉ. के.आर. चन्द्रा), अहमदाबाद, 1973, पृ. 41-42।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 20 : चन्दणबाला

पाठ-परिचय :

वर्धमानसूरि ने सन् 1083 में मनोरमाकहा की रचना की थी। इस ग्रन्थ में मनोरमा का चरित प्रमुख है, किन्तु प्रसंगवश कई लौकिक और उपदेशात्मक कथाएं भी दी गयी हैं।

प्रस्तुत कथा भगवान् महावीर की प्रमुख शिष्या चन्दनबाला के जीवन की है। चन्दनबाला वसुमति एक राजपुत्री थी। किन्तु उसके पिता के सेनापति ने अवसर का लाभ उठाकर चन्दनबाला को निराश्रित बना दिया। चन्दनबाला जब चंपा नगरी के बाजार में बेसहारा होकर घूम रही थी तब एक सेठ ने उसकी रक्षा की थी।

वह सेठ चन्दनबाला को पुत्री बनाकर अपने घर ले जाता है। चन्दनबाला वहाँ सबकी सेवा करती है। किन्तु सेठानी मूला उससे ईर्ष्या करने लगती है। अवसर देखकर एक दिन सेठ की अनुपस्थिति में वह चन्दनबाला का सिर मुड़ाकर एवं बेड़ी पहिनाकर उसे एक कोठरी में डाल देती है। सेठ वापिस आकर जब चन्दनबाला को बन्धनमुक्त करने की व्यवस्था करता है, तभी भगवान् महावीर के वहाँ आने पर चन्दनबाला स्वयं बन्धनमुक्त हो जाती है और वह महावीर की शिष्या बन जाती है।

पुच्छिया सेट्ठिणा—"पुत्ति ! का तुमं ? कम्मि कुले समुप्पण्णा ? कस्स वा दुहिया ?" तं सुणिय विमुक्क-थोरंसुया निरुद्ध-सद्दं परुण्णा वसुमई। सेट्ठिणा चिंतियं—"कह उत्तमजणो वसणावडिओ वि नियकुलाइयं कहेहि ? अलं मह पुच्छिएण ?' भणिया वसुमई—"पुत्ति ! मा रुयसु। दुहिया मह तुमं। [आ]सासिया कोमलवयणेहिं। दाऊण जहिच्छियं दविण-जायं होढि-यस्स नीया मंदिरं वसुमई सेट्ठिणा। समाहूया मूला भणिया य—"पिए ! एसा तुह दुहिया। पयत्तेण पालणीया।" तीए वि तहेव पडिवण्णा। विण्णय-समाराहिय-सेट्ठी-परियणा सुहंसुहेण कालं गमेइ वसुमई।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 19 : णरवइणो ववहारो

पाठ-परिचय :

प्राकृत भाषा में 54 महापुरुषों के जीवन को प्रस्तुत करने के लिए 9 वं शताब्दी (सन् 868) के विद्वान् शीलांकाचार्य (विमलमति) ने चउप्पन-महापुरिसचरि नामक एक विशालकाय ग्रन्थ लिखा है । इसमें तीर्थंकरों, राम, कृष्ण, भरत आदि के जीवन-चरितों का वर्णन है । किन्तु इसमें प्रसंगवश कई लौकिक कथाएं भी प्रस्तु की गयी हैं ।

प्रस्तुत कथा एक मुनिचन्द साधु की है । बलदेव के पूछने पर मुनिचन्द्र अ ने गृहस्थ-जीवन का वर्णन करता है, जिसमें वह गुणधर्म नाम का राजा था गुणधर्म ने अपने गुरु भैरवाचार्य की मन्त्रसाधना में रक्षा की थी । प्रस्तुत गद्यांश से गुरु-शिष्य के सौजन्यपूर्ण व्यवहार का ज्ञान होता है ।

बीयदिवसे पच्चूसे कयसयलकरणिज्जो गओ भइरवायरियदंसणत्थं उज्जाणं । दिट्ठो य वग्घकत्तीए उवविट्ठो भइरवायरिओ । अब्भुट्ठिओ य अहं तेण । पडिओ य अहं चलणेसु । आसीसं दाऊण भियकत्तिं दंसिऊण भणियं तेण जहा- 'उवविससु' त्ति । मए भणियं- 'भयवं ! ण जुत्तमेवं अवर-णारवतिसमाणत्तणेण मं खलीकाउं । अवि य ण तुम्ह एस दोसो, एस इमीए एवंविह णारवइ-सयसेवियाए रायलच्छीए दोसो त्ति, जेण भयवन्तो वि सीसजणे ममम्मि णिय-आसणप्पयाणेणं एवं ववहरन्ति । भयवं ! तुम्हे मज्झ दूरट्ठिया वि गुरवो', अहं पुण नियपुरिसुत्तरीए उवविट्ठो ।

थेववेलाए भणिउमाढत्तो- 'भयवं ! कयत्थो सो देसो णयरे गाम पएसो वा जत्थ तुम्हारिसा पसंगेणावि आगच्छंति किमंग पुण उद्दिसिउं त्ति, ता अणुग्गहिओ अहं तुम्हागमणेण ।'

जङ्घहारिणा भणियं- 'णिरीहा वि गुणसंदाणिया कुणंति पक्खवायं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

महत्थजणे, ता को ण तुम्ह गुणेहिं समागरिसिओ ? त्ति, अवि य तुम्हारिसाण वि समागयाणं णिक्किंचणो अम्हारिसो किं कुणउ ? ण हु मया जम्मप्पभिति परिग्गहो कओ, दविणजाएण य विणा ण लोगजत्ता संपज्जइ' त्ति ।

एवमायण्णिऊण भणियं मए– 'भयवं ! किं तुम्ह लोगजत्ताए पओयणं ? तुम्हासीसाए चेव अत्थित्तं लोयस्स ।' पुणो भणियं जडहारिणा– 'महाभाय !

गुरुयणपूया पेम्मं भत्ती सम्माणसंभवो विणओ ।
दाणेण विणा ण हु णिव्वडंति सच्छम्मि वि जणम्मि ।। 1 ।।

दाणं दविणेण विणा ण होइ, दविणं च धम्मरहियाणं ।
धम्मो विणयविहूणाण, माणजुत्ताण विणओ वि ।। 2 ।।

एयमायण्णिऊण भणियं मए– 'भयवं ! एवमेवेयं, किन्तु तुम्हारिसाणं अवलोयणं चेव सम्माणं, ता आइसंतु भयवन्तो किं मए कायव्वं ?' त्ति । भणियं भइरवायरिएण – 'महाभाग ! तुम्हारिसाणं परोवयार-करण तल्लिच्छाणं अत्थिजणदंसणं मणोरहपूरणं ति,ता अत्थि मे बहूणि य दिवसाणि कयपुव्वसेसस्स मन्तस्स, तस्स सिद्धी तुमए आयत्ता, जइ एगदिवसं महाभागो समत्तविग्घपडिघायहेउत्तणं पडिवज्जइ तओ महं सहलो अट्ठंवरिस-मंतजाव-परिस्समो होइ' त्ति ।

तओ मए भणियं– 'भयवं ! अणुग्गहिओ इमिणाएसेणं ति ता किं मए कहिं वा दिवसे कायव्वं ?' त्ति आइसंतु भयवन्तो ।' तयणंतरमेव भणियं जडहारिणा जहा– 'महाभाग ! इमीए किण्हचउद्दसीए तए मंडलग्गवावडकरेण णयरुत्तरबाहिरियाए एगागिणा मसाणदेसे जामिणीए समइक्कंते जामे समागन्तव्वं ति, तत्थाहं तिहिं जणेहिं समेओ चिट्ठिस्सामि त्ति ।' तओ मए भणियं— 'एवं करेमि ।'

आयरिएण सिद्धमन्तेण भणियं—'महाभाग ! तुहाणुहावेण सिद्धो मंतो,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बइट्ठा। तओ दट्ठूण उच्छंग-गय-सुप्पकोण-कय-कुम्मासे अहिणवालाणबद्ध-करि व्व विभं नियकुलं सरिऊण रोविउमारद्धा।

तओणंतरं चिंतियं च णाए—'कह महं तइयदिणाओ अकय-सुपत्त-संविभागा पारेमि ? सोहणं हवइ जइ किंचि सुपत्तं समागच्छइ।'

तओ भगवया महावीरो दिण्णो उवओगो जाव पडिपुण्णो चउव्विहो वि अभिग्गहो ताहे पाणी-पसारिओ। दिण्णा तीए सुप्पकोणेण कुम्मासा। पारिओ। एत्थं चलियासणा समागया सुरगणा। पाउब्भूयाणि पंचदिव्वाणि पडिपुण्णपइण्णे, सयल-जगजीव-निक्कारणबंधवे दुट्ठट्ठकम्मकंदउक्कंदणे पारविए तिसलानंदणे चंदणबाला वि तित्थयरदाण-धम्मोवज्जिय पुण्ण-पब्भारेण इह लोगे वि धन्ना जाया।

तहा वित्थरिया सयले वि तिहुयणे कुंदिदु-निम्मला कित्ती। अहो धण्णा, अहो कयत्था, कयलक्खणा चंदणबाला। सुलद्धं जम्मजीवियफलं चंदणबालाए।*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

दुहिया	= पुत्री	**वसण**	= आपत्ति	**आसास**	= सान्त्वना देना
होंढिय	= अपहर्ता	**सव्वत्थ**	= सब जगह	**वागुर**	= फंदा
अणत्थ	= अनर्थ	**दूम**	= दुखी होना	**वाहि**	= रोग
मत्तालंब	= बालकनी	**सोयण**	= साफ करना	**मणागं**	= थोड़ा
लीलालट्ठी	= हाथ	**परूढ**	= दृढ़	**पणअ**	= प्रेम
संधुक्क	= धोंकना	**बोडाविया**	= मुड़ाया	**नियल**	= बेड़ी
उवरग	= कोठा	**निद्धड**	= निकाल दो	**वासर**	= दिन
बराई	= बेचारी	**एलुगं**	= देहरी	**सुपत्त**	= सत्पात्र
अभिग्गह	= प्रतिज्ञा	**कुम्मास**	= उड़द	**कित्ती**	= यश

---

* मनोरमाकहा (सं०- पं० रूपेन्द्र) अहमदाबाद, 1982 पृ० 49-51 से संक्षिप्त रूप में उद्धृत।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. चन्दनबाला से ईर्ष्या थी—

(क) सेठ को (ख) राजा को

(ग) मूला सेठानी को (घ) नगरजनों को [ ]

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. वसुमति का नाम चन्दनबाला क्यो पड़ा ?
2. मूला सेठानी को चन्दनबाला से क्या भय था ?
3. चन्दनबाला ने किसको आहार दिया था ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) चन्दनबाला की कथा संक्षेप में लिखो।

(ख) भगवान् महावीर की क्या प्रतिज्ञा थी, इसे पताकर लिखो।

———

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 21 : जहा गुरु तहा सीसो

पाठ-परिचय :

नेमिचन्द्रसूरि ने उत्तराध्ययनसुखबोधाटीका आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त लगभग 11 वीं शताब्दी में चन्द्रावती नगरी (राज.) में **रयणचूडरायचरियं** नामक चरितग्रन्थ भी लिखा है। इस ग्रन्थ में रत्नचूड राजा के पूर्व-जन्म एवं जीवन-चरित आदि का वर्णन है। प्रसंगवश अन्य लौकिक कथाएं भी हैं।

प्रस्तुत कथा स्वप्न की सत्यता का निराकरण करने के लिए कही गयी है। एक मठ के आचार्य ने स्वप्न में मठ के कमरों को मिष्ठान से भरा हुआ देखा। नींद खुलने पर उन्होंने यह बात अपने शिष्य से कही। उस शिष्य ने स्वप्न के मिष्ठान्न को खिलाने के लिए सारे गांव का निमन्त्रण कर दिया। अन्त में लोगों के सामने उन्हें अपनी मूर्खता पर अपमानित होना पड़ा।

एगम्मि गामे बहु-वक्खारिगे मढे एग-सीसेण संजुओ परमायरिओ वसइ। अन्नया तेण रयणीए सुविणे दिट्ठा–मोयगपडिपुन्ना वक्खारिगा। विउद्धेण संहरिसं साहियं चेल्लगस्स। तेण भणियं– 'जइ एवं ता निमंतेमो अज्ज गामं। भुत्तपुव्वं बहुसो गामगिहेसु।'

एवं ति पडिवन्ने गंतूण उक्कुरुडियाए निमंतिओ सठक्कुरो गामो चिल्लगेण। 'कत्थ तुम्ह भोयणसामग्गि,' त्ति? अणिच्छन्तो वि धम्माणुभावेण सव्वं भविस्सइ' त्ति बला मन्नाविओ। काराविओ भोयणमंडवो. ठावियाओ आसणपंतीओ। उचियवेलाए समागओ गामलोओ। उवविट्ठो आसणेसु, दिन्नाइं भायणाइं।

एत्थंतरे पविट्ठो मोयगनिमित्तमब्भन्तरे परसमायरिओ। जाव न किंचि तत्थ पेच्छइ। तओ 'अदन्नचित्तो भुल्लो अहं मोयगवक्खारियाए, तो पुणो वि तद्दंसणत्थं सुवामि। तं पुण लोगरोलं निवारेहि' त्ति भणिऊण चेल्लयं सो पसुत्तो।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

एत्थंतरे लोएहिं भणियं– 'छुहाइओ जणो, उस्सूरं च वट्टइ ता किं चेरावेह ?' चेल्लिएण भणियं– 'मा रोलं करह, जा मे गुरु निद्दं लहइ त्ति ।' हिं भणियं– 'को सुवणकालो ?' चेल्लिएण भणियं– 'तुम्ह भोयणट्ठा विणोवलद्धमोयगवक्खारिगाए भुल्लो, पुणो तद्दंसणत्थं सुवइ' त्ति ।

एवं सोऊण– 'अहो मुरुक्खा एए' त्ति दिन्न करतालो हसमाणो गओ ोगो सभवणेसु । ता न सुविणयं दिट्ठं पारमत्थियं ति ।*

अभ्यास

. शब्दार्थ :

वक्खारिग	= कोठा	**सुविण**	= स्वप्न	**विउद्ध**	= जागना
साह	= कहना	**चेल्लग**	= चेला	**उक्कुरुडिया**	= घूरा
बला	= बलपूर्वक	**भायण**	= बर्तन	**सुव**	= सोना
रोलं	= शोरगुल	**उस्सूर**	= सन्ध्या	**मुरुक्खा**	= मूरख
करताल	= ताली	**एए**	= ये लोग	**दिट्ठं**	= देखा हुआ

. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. इस पाठ का मूल उद्धेश्य क्या है ?
2. गांव के लोगों के लिए भोजन-सामग्री कहाँ थी ?
3. गांव के लोगों के आ जाने पर मठ का गुरु क्यों सो गया ?
4. असलियत जानने पर लोगों ने क्या कहा ?

---

* रयणचूडरायचरियं (सं०–विजयकुमुदसूरि), खम्भात, 1942, पत्र 28 ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 22 : मयणसिरीए सिक्खा

पाठ-परिचय :

नेमिचन्द्रसूरि द्वारा रचित **रयणचूडरायचरियं** में कई नारी पात्रों के उदात्त चरितों को प्रस्तुत किया गया है। तिलकसुंदरी आदि रानियों के पूर्वभवों के प्रसंग में उदाहरण-स्वरूप मदनश्री की कथा कही गयी है।

प्रस्तुत कथा में मदनश्री राजा विक्रमसेन को सदाचरण की शिक्षा देती है। विक्रमसेन के प्रेम-प्रस्ताव को सुनकर मदनश्री घबराती नहीं है, अपितु राजा को अपने यहां बुलाकर एक ही भोजन को कई सुन्दर थालियों में परोसकर वह समझाती है कि सभी युवतियों के भीतर मांस-मज्जा, रुधिर, हड्डियां आदि सभी समान है। वे केवल बाहर से आकर्षित दिखती हैं। अतः अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य किसी युवती में आसक्त होना व्यर्थ है। राजा विक्रमसेन अपनी भूल के लिए क्षमा मांगता हुआ मदनश्री को पुरस्कृत करता है।

उज्जेणीए नयरीए विक्कमसेणो राया। तेणं कयाइं कीलणत्थं निग्गच्छंतेणं दिट्ठा गवक्खदुवारेण पासायतलसंठिया देसंतरगयपिययमा मयण सिरी सेट्ठिभारिया। आसत्तनिवेण य पेसिया तीए समीवं नियदासी। भणियं च गंतूण तीए– "मयणसिरि ! कयत्था तुमं जा महाराएण वि पत्थिज्जसि। जओ, संदिट्ठं तेण- सुंदरि ! अमयमयस्सेव तुहदंसणस्सुक्कंठियं मे हिययं। आगच्छंतु मं दिणमेगमेत्थ, अहं वा तत्थेव पच्छन्नुमागच्छामि त्ति। ता देसु सुयणु ! पडिसंदेसं।"

तीएवि 'अहो राइणो ममोवरिं गरुओ अणुबंधो। न तीरए दूरट्ठिएहिं पडिबोहिउं' ति चिंतिऊण– 'आगच्छउ महाराओ एत्थेव महप्पसाएणं' ति भणिऊण पेसिया सा दासी।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कहिया तीए राइणो वत्ता । परितुट्ठो एसो गओ मज्झण्हे अंजणप्पओगेण अदिस्समाणो तीए गेहं । पक्खालियंजणो पयडीभूओ । ससभमाए य दिट्ठो । चिंतियं च तीए– 'अणुरायग्गहगहिओ खु एसो । न मए पाणच्चाए वि सीलं खंडियव्वं । जओ— 'वरं विसभक्खणं, वरं जलणप्पवेसो, वरं उव्बंधणं, वरं भिग्गुपडणं, न सील खंडणं' । ता पडिबोहेमि एयं केणइ उवाएणं'

इति चिंतिऊण- 'सागयं महारायस्स' त्ति सहरिसं भणिऊण दाऊण य आसणं कयं तीए चलणसोयं । कयं मणोहरं भोयणं । एक्कमेव भोयणं ठावियं बहुयाहिं थालियाहिं । ताओ वि ठइयाओ विचित्ता-चित्तपडिपट्ट-दुकूल-खंडेहिं । भणियं च– 'महाराय ! करेह ममाणुग्गहं । भुंजह मणुन्नं चेव भोयणं'

राया वि अणुराएण तमणुवट्टमाणो उवविट्ठो भुंजिउं । पेच्छइ य मणोहर-नत्तणय-नत्तियाओ बहुयाओ थालियाओ । 'अहो, ममावज्झणाय कयाओ इमीए विविहाओ रसवईओ' त्ति परितुट्ठो एसो । तीए वि सव्वथालियाहिंतो दिन्नं कमेणं थेव-थेवं एगमेव भोयणं ।

तओ राइणा सकोउगेण भणियं – 'को एयासिं बहुत्ते हेऊ?' तीए भणियं 'नत्तणयविसेसो' । राइणा भणियं– 'किमेइणा निरत्थगेण विसेसेण?' मयणसिरीए भणियं– 'महाराय ! जइ एवं ता जुवइ-कडेवरेसु वि नत्ताणय सरिसबाहिरतया कओ चेव विसेसो ? जओ अंतो वसा-मस-मिंज-सुक्क-प्फिप्फिस-रुहिरट्ठिण्हारु-संगयं असुइनिहाणं तुल्लं सव्वं चेव जुवइसरीरं । एववेव महाराय ! विज्जमाणेसु वि सदारेसु किं परदारेसु अणुरायकारणं' ति ।

एयं सोऊण संविग्गो विक्कमसेणो राया– 'सुंदरि ! सोहणं तए कयं । जमहं अन्नाणमूढो बोहिओ' ति भणिऊण दाऊण य महंतं पारिओसियं गओ सभवणम्मि ।*

---

* रयणचूडरायचरियं, वही, पृ. 53-54 ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

कयाइं	= कभी	**गवक्ख**	= झरोखा	**पासाय**	= महल
आसत्त	= आसक्त	**कयत्थ**	= कृतार्थ	**पत्थ**	= याचना करना
उक्कंठिय	= उत्कंठित	**पच्छन्नं**	= छिपा हुआ	**सुयणु**	= सुन्दरी
पडिबोह	= समझाना	**पाणच्चाअ**	= प्राण त्याग	**जलण**	= अग्नि
उब्बंधणं	= फांसी	**कयं**	= बनाया	**दुकूल**	= रेशम
मणुन्नं	= मनोनुकूल	**नत्तणय**	= नवीनता	**रसवई**	= रसोई

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. राजा ने मदनश्री के पास अपना संदेश भेजा—

(क) पत्र के द्वारा (ख) कबूतर के द्वारा

(ग) दासी के द्वारा (घ) स्वयं जाकर [ ]

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. मदनश्री ने राजा का प्रेम-निवेदन क्यों स्वीकार किया ?
2. मदनश्री ने किस दृष्टान्त से राजा को समझाया ?
3. विक्रमसेन राजा ने अन्त में क्या कहा ?

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

शब्दरूप	मूलशब्द	विभक्ति	वचन	लिंग
नयरीए	नयरी	सप्तमी	ए. व.	स्त्री.
तीए	त	.....	.....	सर्व.
महाराएण	महाराअ	.....	.....	.....
हिययं	हियय	.....	.....	.....
विसेसेण	.....	.....	.....	.....
सदारेसु	सदारा	.....	.....	.....

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 23 : दमयंती स्वयंवरो

पाठ-परिचय :

सोमप्रभसूरि ने ई. सन् 1184 में **कुमारवालपडिबोह** नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में गुजरात के राजा कुमारपाल का चरित वर्णित है। किन्तु आचार्य हेमचन्द्र द्वारा उनको दिया गया प्रतिबोध भी इस ग्रन्थ का विषय है। इसमें कुल 58 कथाएं आयी हैं, जो प्रेरणादायक हैं।

प्रस्तुत प्रसंग नलकथा का है, जो मूलतः द्यूतक्रीड़ा के दोषों को प्रकट करने के लिए कही गयी है। प्रस्तुत अंश में **दमयन्ती** के स्वयंवर का वर्णन है। उसकी सखी भद्रा प्रत्येक राजा का वर्णन करती है **और दमयन्ती** उस पर अपनी इच्छा प्रकट कर देती है। अन्त में वह नल को वरमाला पहिना देती है।

अत्थि इह भारहखित्ते कोसलदेसम्मि कोसल नयरी। तत्थ इक्खागुकुलुप्पन्नो निरुवमनयचायविक्कमजुत्तो निसहो नाम निवो। तस्स सुंदरीदेवीकुक्खिसंभूया जणमणाणंदे दुवे नंदणा नलो कूबरो य।

इओ य विदब्भदेसमंडणं कुंडिणं नयरं। तत्थ अरिकरिजूहसरहो भीमरहो राया। तस्स सयलंतेउरतरुपुप्फं पुप्फदंती देवी। ताणं विसयसुहमणुहवंताणं समुप्पन्ना सयलतइलोक्कालंकारभूया धूया।

तीए तिलओ जाओ सहजो भालम्मि तरणिपडिबिंबं।
सप्पुरिसस्स व वच्छत्थलम्मि सिरिवच्छवररयणं ॥ 1 ॥

'जणणीगब्भगयाए इमीए मए सव्वे वेरिणो दमिय' त्ति विउणा कयं तीए दमयंति त्ति नामं। सियपक्खचंदलेह व्व सव्वजणनयणाणंदिणी पत्ता सा वुड्ढिं समए समप्पिया कलोवज्झायस्स।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आयंसे पडिबिंबं व बुद्धिजुत्ताइ तीइ सयलकलाओ ।
संकताओ जाओ य सक्खिमत्तं उवज्झाओ ।। 2 ।।

पत्ता य सा जुव्वणं । तं दट्ठूण चिंतियं जणणीजणएहिं— 'एसा असरिसरूवा, विहिणो विन्नाणपगरिसो य । ता नत्थि इमीए समाणरूवो वरो । अत्थि वा तहवि सो न नज्जइ । अओ सयंवरं काउं जुत्तो ।'

तओ पेसिऊण दूए हक्कारिया रायाणो रायपुत्ता य । आगया गयतुरयरहपाइक्कपरियरिया ते । नलो वि निरूवमसत्तो पत्तो तत्थ । भीमनिवइणा कयसम्माणा ठिया ते पवरावासेसु । कराविओ कणयमयक्खंभमंडिओ सयंवरमंडवो । ठवियाइं तत्थ सुवत्तसिंहासणाइं । निविट्ठा तेसु रायाणो ।

एत्थंतरे जणयाएमेण समागया पसरियपहाजालभालतिलयालंकिया पुव्वदिस व्व रविबिंबधुरा पसन्नवयणा पुन्निमनिस व्व संपुन्नससिसुंदरा धवलदुकूलनिवसणा सयंवरमंडवं मंडयंती दमयंती । तं दट्ठूण विम्हियमुहेहिं महिनाहेहिं स च्चेव चक्खुविक्खेवस्स लक्खीकया ।

तो रायाएसेणं भद्दा अंतेउरस्स पडिहारी ।
कुमरीए पुरो निवकुमरविक्कमे कहिउमाढत्ता ।। 3 ।।

'कासिनयरीनरेसो एसो दढभुयबलो बलो नाम ।
वरसु इमं जइ गंगं तुंगतरंगं महसि दट्ठुं ।। 4 ।।

दमयंतीए भणियं– 'भद्दे, परवंचणवसणिणो कासिवासिणो सुव्वंति, ता न मे इमम्मि रमइ मणं ति अग्गओ गच्छ ।' तहेव काऊण भणियं तीए–

'कुंकणवई नरिंदो एसो सिंहो त्ति वेरिकरिसिंहो ।
वरिऊण इमं कयलीवणेसु कीलसु सुहं गिम्हे ।। 5 ।।

दमयंतीए भणियं– 'भद्दे, अकारणकोवणा कुंकणा, ता न पारेमि

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इमं पए पए अणुकूलिउं । तो अन्नं कहेसु ।' अग्गओ गंतूण भणियं तीए—

कम्हीर भूमिनाहो इमो महिंदो महिंदसमरूवो ।
कुंकुम-केयारेसुं कीलिउकामा इमं वरसु ।। 6 ।।

कुमरीए वुत्तं- 'भद्दे, तुसारसंभारभीरुयं मे सरीरयं । किं न तुमं जाणसि ? तो इओ गच्छामो ।' त्ति भणंती गंतूण अग्गओ भणिउं पवत्ता पडिहारी—

एसा निवो जयकोसो कोसंबीए पहू पउरकोसो ।
मयरद्धयसमरूवो किं तुह हरिणच्छि हरइ मणं ।। 7 ।।

कुमरीए वुत्तं— 'कविंजले, अइरमणीया वरमाला विणम्मविया ।' भद्दाए चिंतियं- 'अप्पडिवयणमेव इमस्स नरिंदस्स पडिसेहो ।' तओ अग्गे गंतूण वुत्तं भद्दाए—

कलयंठकंठि ! कंठे कलिंगवइणो जयस्स खिव मालं ।
करवालराहुणा जस्स कवलिया वेरि-जस-ससिणो ।। 8 ।।

कुमरीए वुत्तं— 'ताय-समाण-वयपरिणामस्स नमो एयस्स ।' तओ भद्दाए अग्गओ गंतूण भणियं—

गयगमणि ! वीरमउडो गउडवई तुज्झ रुच्चइ किमेसो ।
जस्स करिनियर-घंटारवेण फुट्टइ व बंभंडं ।। 9 ।।

कुमरीए जंपियं— 'अम्मो ! एरिसं पि कसिणभेसणं मायुसाणं रूवं होइ त्ति तुरियं अग्गओ गच्छ । वेवइ मे हिययं ।' तओ ईसिं हसंती गया अग्गओ भद्दा जंपिउं पवत्ता—

'पउमच्छि पउमनाहं अणंतिनाहं इमं कुणसु नाहं ।
सिप्पातरंगिणीतीरतरुवणे रमिउमिच्छंती ।। 10 ।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कुमरीए वुत्तं– 'हद्धि ! परिस्संतम्हि इमिणा सयंवरमंडवसंचरणेण, ता किच्चिरं अज्ज वि भद्दा जंपिस्सइ ।' चिंतियं च भद्दाए– 'एसो वि न मे मणमाणंदइ त्ति कहियं कुमरीए । ता अग्गओ गच्छामि' त्ति तहेव काउं जंपिउं पवत्ता भद्दा—

'एसो नलो कुमारो निसहसुओ जस्स पिच्छिउं रूवं ।
मन्नइ सहस्सनयणो नयणसहस्सं धुवं सहलं ।। 11 ।।

चिंतियं विम्हियमणाए दमयंतीए— 'अहो ! सयलरूवणंतपच्चाएसो अंगसन्निवेसो, अहो ! असामन्नं लावण्णं, अहो ! उदग्गं सोहग्गं, अहो ! महुरिमनिवासो विलासो । ता हियय, इमं पइं पडिवज्जिऊण पावेसु परमपरिओसं' ति । तओ खित्ता नलस्स कंठकंदले वरमाला । 'अहो ! सुवरियं, सुवरियं' ति समुट्ठिओ जणकलयलो ।*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

निरुवम	= अनुपम	चाय	= त्याग	नंदण	= पुत्र
सरह	= सिंह	तरणि	= सूर्य	दमिय	= शान्त
सियपक्ख	= शुक्लपक्ष	वुड्ढी	= वृद्धी	पगरिस	= प्रकर्ष
नज्ज	= जानना	हक्कार	= बुलाना	पाइक्क	= पैदल सैनिक
पवर	= श्रेष्ठ	महिनाह	= राजा	मह	= चाहना
तुसार	= ठंड	पउर	= प्रचुर	ताय	= पिता

* कुमारपालप्रतिबोध, बड़ोदा, 1920, पृ. 47-50 ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. 'परवंचणवसणिणो' कहा गया है—

(क) कोसाम्बी-वासियों को (ख) अवन्ती के लोगों को
(ग) काशी-वासियों को (घ) चंपा के लोगों को [ ]

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. कोंकण के राजा के सम्बन्ध में दमयन्ती ने क्या कहा ?
2. 'वरमाला अत्यन्त सुन्दर बनी है' दमयन्ती के इस कथन से भद्रा ने क्या समझा ?
3. कलिंग का राजा कैसा दिखता था ?
4. दमयन्ती ने किसको वरमाला पहिनायी ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) इस पाठ के आधार पर प्रत्येक देश के राजाओं का वर्णन लिखो।

(ख) अच्छे वर के क्या गुण होने चाहिए, पाठ के आधार पर लिखो।

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

पिछले पाठों से समास छांटकर लिखें —

महिनाह	महीए + नाह	तत्पुरुष
.....	..... + ...	.....
.....	..... + ...	.....

———

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 24 : विज्जुपहाए साहस-करुणा

पाठ-परिचय :

संघतिलक आचार्य ने लगभग 12 वीं शताब्दी में हरिभद्रसूरि द्वारा रचित सम्यक्त्वसप्तति नामक ग्रन्थ की वृत्ति लिखी है। उसमें उन्होंने **आरामसोहाकहा** प्राकृत पद्य में प्रस्तुत की है। यह आरामशोभाकथा एक लौकिक कथा है। इसमें विद्युत-प्रभा एवं उसकी सौतेली मां के व्यवहार का सूक्ष्म वर्णन है।

प्रस्तुत गद्यांश में विद्युतप्रभा के बचपन की एक घटना का वर्णन है, जिसमें वह निडर होकर एक सर्प की रक्षा करती है। सर्प देवता के रूप में प्रकट होकर उसे वरदान देता है कि उसके सिर पर छाया के लिए हमेशा एक कुंज बना रहेगा।

इहेव जम्बूरुक्खालंकियदीवमज्झट्ठिए अक्खंडछक्खंडमंडिए बहुविहसुह-निवहनिवासे भारहे वासे असेसलच्छिसंनिवेसो अत्थि कुसट्टदेसो। तत्थ पमु-इयपक्कीलियलोयमणोहरो उग्गविग्गहुव्व गोरीसुंदरो सयलधन्नजाईअभिरामो अत्थि बलासओ नाम गामो। जत्थ य चाउद्दिसि जोयणपमाणे भूमिभागे न कयावि रुक्खाइ उग्गइ।

इओ य तत्थ चउव्वेयपारगो छक्कम्मसाहगो अग्गिसम्मो नाम माहणो परिवसइ। तस्स सीलाइगुणपत्तरेहा अग्गिसिहा नाम भारिया। ताण च परमसुहेण भोगे भुंजंताणं कमेण जाया एगा दारिया। तीसे 'विज्जुप्पह' त्ति नाम कयं अम्मापियरेहिं :—

"जीसे लोलविलोयणाण पुरओ नीलुप्पलो किंकरो।
पुन्नो रत्तिवई मुहस्स वहई निम्मललीलं सया' ॥ 1 ॥

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

नासावंसपुरो सुअस्स अपडू चंचूपुडो निज्जरा ।
रूव पिक्खिय अच्छरासु वि धुवं जायंति ढिल्लायरा ।। 2 ।।

तओ कमेण तीसे अट्ठवरिसदेसियाए दिव्ववसा रोगायंकाभिभूया माया कालधम्ममुवगया । तत्तो सा सयलमवि घरवावारं करेइ । उट्ठिऊण पभायसमए विहियगोदोहा कयघरसोहा गोचारणत्थं बाहिं गंतूण मज्झण्हे उण गोदोहाइ निम्मिय जणयस्स देवपूयाभोयणाइं संपाडिऊण सयं च भुत्तूण पुणरवि गोणीओ चारिऊण सज्झाए घरमागंतूण कयपाओसियकिच्चा खणमित्तं निद्दासुहं सा अणुहवइ । एवं पइदिणं कुणमाणी घरकम्मेहिं कयत्थिया समाणी जणयमन्नया भणइ— ताय ! अहं घरकम्मुणा अच्चंतं दूमिया ता पसिय घरिणिसंगहं कुणह ।'

इय तीइ वयणं सोहणं मन्नमाणेण तेण एगा माहणी विसट्ठमसारणी सगहिणी कया । सा वि सायसीला आलसुया कुडिला तहेव घरवावारं तीए निवेसिय सयं ण्हाणविलेवणभूसणभोयणाइभोगेसु वावडा तणमवि मोडिऊण न दुहा करेइ । तओ सा विज्जुपहा विज्जुव्व पज्जलंती चिंतेइ– 'अहो ! मए जं सुहनिमित्तं जणयाओ कारियं तं निरउव्व दुहहेउयं जायं । ता न छुट्टिज्जई अवेइयस्स दुट्ठु कम्मुणो, अवरो उण निमित्तमित्तमेव होई ।' जओ—

सव्वो पुव्वकयाणं, कम्माणं पावए फलविवागं ।
अवराहेसु गुणेसु य, निमित्तमित्तं परो होइ ।। 3 ।।

एवं सा अमणदुम्मणा गोसे गावीओ चारिऊण मज्झण्हे अरस-विरसं सीयलं लुक्खं मक्खियासयसंकुलं भुत्तुद्धरियं भोयणं भुंजइ एवं दुक्खमणुहवंतीए बारसवरिसा वइक्कंता ।

अन्नमि दिणे मज्झण्हे सुरहीसु चरंतीसु गिम्हे उण्हकर-तावियाए रुक्खाभावाओ पाओ च्छायाबज्जिए सतिणप्पएसे सुवंतीए तीए समीवे एगो भुयंगो आगओ—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जो उण अइरत्तच्छो, संचालियजीहजामलो कालो ।
उक्कडफुंकाररव-भयजणओ सव्वपाणीणं ।। 4 ।।

सो य नागकुमाराहिट्ठियतणु माणुसभासाए सुललियपयाए तं जग्गवेइ, तप्पुरओ एवं भणइ य—

भयभीओ तुहपासं, समागओ वच्छि ! मज्झ पुट्ठीए ।
जं एए गारुडिया, लग्गा बंधिय गहिस्संति ।। 5 ।।

ता नियए उच्छंगे, सुइरं ठाविएवि पवरवत्थेणं ।
मह रक्खेसु इहत्थे, खणमवि तं मा विलंबेसु ।। 6 ।।

नागकुमाराहिट्ठिय–काओ गारुडियमंतदेवीणं ।
न खमो आणाभंगं, काउं तो रक्ख मं पुत्ति ।। 7 ।।

भयभंतिं मुत्तूणं, वच्छे! सम्मं कुणेसु मह वयणं ।
तत्तो साऽवि दयालू, तं नागं ठवइ उच्छंगे ।। 8 ।।

तओ तंमि चेव समए करठवियओसहिवलया तप्पिट्ठओ चेव तुरिय-तुरियं समागया गारुडिया, तेहिं पि सा माहणतणया पुट्ठा बाले ! एयंमि पहे कोऽवि गच्छंतो दिट्ठो गरिट्ठो नागो ?, तओ सावि पडिभणइ– भो नरिंदा ! किं मं पुच्छेह ?, जं अहमित्थ वत्थछाइयगत्ता सुत्ता अहेसि । तओ ते परुप्परं संलवंति । जइ एयाए बालियाए तारिसो नागो दिट्ठो हुत्थो तो भयवेविरंगी कुरंगीव उत्तट्ठा हुत्था । अओ इत्थ नागओ सो नागो । तयणु ते अग्गओ पिट्ठओ य पलोइय कत्थवि अलहंता हत्थेण हत्थं मलंता दंतेहिं उट्ठसंपुडं खंडंता विच्छायवयणा पडिनियत्तिऊण गया सभवणेसु गारुडिया ।

तओ तीए भणिओ सप्पो—'नीहरसु इत्ताहे, गया ते तुम्ह वेरिया' । सोऽवि तीए उच्छंगाओ नीहरिऊण नागरूवमुज्झिऊण चलंतकुंडलाहरणं सुररूवं पयडिय पभणेइ— 'वच्छे ! वरेसु वरं जं अहं तुहोवयारेण साहसेण य संतुट्ठम्हि' ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सावि तं तहाख्वं भासुरसरीरं सुरं पिच्छिऊण हरिसभरनिब्भरंगो विन्नवेइ ताय! जइ सच्चं तुट्ठोऽसि, ता करेसु मज्झोवरि च्छायं, जेणायवेण-परिभूया सुहंसुहेण च्छायाए उवविट्ठा गावीओ चारेमि'। तओ तेण तियसेण मणंमि वीसंमियं– 'अहो! एसा सरलसहावा वराई जं ममाओ वि एवं मग्गइ। ता एयाए एयं पि अहिलसियं करेमि' त्ति तीए उवरि कओ आरामो महल्ल-सालद्दुमफुल्लगंधपुप्फंधयगीयसारो च्छायाभिरामो सरसप्फलेहिं पीणेइ जो पाणिगणे सयावि।

तत्तो सुरेण तीइ पुरो निवेइयं– 'पुत्ति ! जत्थ जत्थ तुमं वच्चिहिसि तत्थ तत्थ महमाहप्पाओ एस आरामो तए सह गमिही। गेहाइगयाए तुह इच्छाए अत्ताणं संखेविय च्छत्तुव्व उवरि चिट्ठिस्सइ। तुमईए उण संजाय-पओयणाए आवइकाले अहं सरेयव्वु' त्ति जंपिय गओ सट्ठाणं सो नागकुमारो।*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

ट्ठिए	= स्थित	**निवह**	= समूह	**असेस**	= सम्पूर्ण
छक्कम्म	= षट्कर्म	**माहण**	= ब्राह्मण	**पत्तरेह**	= प्राप्त
ढिल्लयर	= शिथिल	**कालधम्म**	= मृत्यु	**गोणी**	= गाय
पाओसिय	= सांयकालीन	**साय**	= स्वाद	**मोड**	= तोड़ना
निरउ	= नरक	**गोसे**	= प्रातः	**सुरही**	= गाय
पय	= वाणी	**पुट्ठी**	= पीछे	**सुइरं**	= अच्छी तरह
गारुडिय	= सपेरा	**विच्छाय**	= दुखी	**आरामो**	= बगीचा

---

* आरामसोहाकहा (सं.--डॉ. राजाराम जैन), आरा, 1980, पृ. 1-3।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

2. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. विद्युतप्रभा पर घर का काम क्यों आ पड़ा ?
2. विद्युतप्रभा ने पिता को क्या सलाह दी ?
3. विद्युतप्रभा ने शरणागत नाग की रक्षा क्यों की ?
4. नाग ने विद्युतप्रभा की मां क्या मदद की ?
5. सौतेली मां की दिनचर्या क्या थी ?

3. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) बलासक गाँव कैसा था, उसकी कुछ विशेषताएं लिखिए ।

(ख) विद्युतप्रभा ने सौतेली मां के व्यवहार पर क्या चिन्तन किया ?

(ग) सपेरे क्या कहकर वापिस लौट गये ?

(घ) विद्युतप्रभा के गुणों पर 10-15 पंक्तियां लिखिए ।

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

पिछले पाठों से कृदन्त छांटकर लिखो —

भणिऊण	भण + ऊण	सम्बन्ध कृ.
.....	..... + ...	.....
.....	..... + ...	....
.....	..... + ...	... .

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 25 : वरस्स णिण्णयं

पाठ-परिचय :

जिनहर्षसूरि ने सन् 1430 में **चित्तौड़** में **रयणसेहरनिवकहा** नामक ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ में राजा रत्नशेखर और सिंहल की राजकुमारी रत्नवती की कथा का वर्णन है। पर्व के दिनों में धर्मसाधना करने का फल बतलाना इस ग्रन्थ का प्रमुख उद्देश्य है। इस ग्रन्थ को जायसी के पद्मावत का पूर्वरूप कहा जाता है। ग्रन्थ में अन्य भी कई कथाएं हैं।

प्रस्तुत कथा में एक कन्या से विवाह करने चार वर उपस्थित हो गये। अतः कन्या ने उनमें युद्ध की सम्भावना देखकर स्वयं आत्मदाह कर लिया, इससे दुखी होकर उन चारों वरों ने जो कार्य किये, उसी के आधार पर उस कन्या के साथ उनका सम्बन्ध निश्चित किया जाता है।

हत्थिणाउरे नयरे सूर-नामा रायपुत्तो नाणा-गुण-रयण-संजुत्तो वसइ। तस्स भारिया गंगाभिहाणा। सीलाइगुणालंकिया परमसोहग्ग-सारा सुमइनामा तेसिं धूया। सा कम्मपरिणामवसओ जणयजणणी-भाया-माउलेहिं पुढो पुढो वराणं दत्ता।

चउरो वि ते वरा एगम्मि चेव दिणे पणिएउं आगया परोप्परं कलहं कुणंति। तओ तेसिं विसमे संगामे जायमाणे बहुजणक्खयं दट्ठूण अग्गिम्मि पविट्ठा सुमइ-कन्ना। तीए समं निबिडमोहेण एगो वरो वि पविट्ठो। एगो अत्थीणि गंगा-पवाहे खिविउं गओ। एगो चिया-रक्खं तत्थेव जलपूरे खिविऊण तद्दुक्खेण महमहा-गह-गहिओ महीयले हिंडइ। चउत्थो तत्थेव ठिओ तं ठाणं रक्खंतो पइदिणं एगमन्न-पिंडं मुयंतो कालं गमइ।

अह तइओ वरो महीयलं भमंतो कत्थ वि गामे रंधणघरम्मि भोयणं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कराविऊण जिमिउं उवविट्ठो । तस्स घर-सामिणी परिवेसइ । तम्रो तीए लहु पुत्तो अईव रोयइ । तम्रो रोस-पसर-वसंगयाए सो बालो जलणम्मि खिविम्रो । सो वरो भोयणं कुणंतो उट्ठिउं लग्गो । सा भणइ— 'अवच्च-रूवाणि कस्स वि अप्पियाणि न हुंति, जेसिं कए पिउणो अणेम-देवया-पूजा-दाण-मंत-जावाइं किं किं न कुणंति । तुमं सुहेण भोयणं करेहि । पच्छा एयं पुत्तं जीवइस्सामि ।

तम्रो सो वि भोयणं काऊण सिग्घं उट्ठिम्रो जाव ताव तीए निय घर-मज्झाम्रो अमयरस-कुप्पियं आणिऊण जलणम्मि छडुक्खेवो कम्रो । बालो हसंतो निग्गम्रो । जणणीए उच्छंगे णीम्रो ।

तम्रो सो वरो झायइ— 'अहो, अच्छरियं जं एवंविह जलण-जलिम्रो वि जीवायइ । जइ एसो अमयरसो मह हवइ ता अहमवि तं कन्नं जीवावेमि ।' एवं चिंतिऊण धुत्तत्तणेण कूडवेसं काऊण रयणीए तत्थेव ठिम्रो । अवसरं लहिऊण तं अमयकूवयं गिण्हिऊण हत्थिणाउरे आगम्रो ।

तेण पुण तीए जणणाइ-समक्खं चियामज्झे अमयरसो मुक्को । सा सुमई कन्ना सालंकारा जीवंती उट्ठिया । तम्रो तीए समं एगो वरो वि जीवाविम्रो ।

कम्मवसम्रो पुणो चउरो वि वरा एगम्रो मिलिया । कन्नापाणि-गहणत्थं विवायं कुणंता बालचंदरायमंदिरे गया । चऊहि वि कहियं राइणो निय-निय सरूवं । राइणा मंतिणो भणिया जहा— 'एयाणं विवायं भंजिऊण एगो वरो पमाणी कायव्वो ।

मंतिणो वि सव्वे परोप्परं वियारं करेंति, न पुण केणावि विवाम्रो भंजइ । तया एगेण मंतिणा भणियं– 'जइ मन्नह ता विवायं भंजेमि ।'

तेहिं जंपियं— 'जो रायहंसो व्व गुणदोसपरिक्खं काऊण पक्खवाय-रहिम्रो विवायं भंजइ तस्स वयण को न मन्नइ ?'

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तओ तेण भणियं– 'जेण जीवाविया सो जम्म–हेउत्तणेण पिया जाओ। जो सह-जीविओ सो एग-जम्म-ठाणेण भाया। जो अत्थीणि गंगा-मज्झम्मि खिविउं गओ सो पच्छा-पुण्ण-करणेण पुत्तो जाओ। जेण पुण तं ठाणं रक्खियं सो भत्ता।'

एवं मंतिणा विवाए भग्गे चउत्थेण वरेण रूवचंदाहिहाणेण सा परिणीया। कमेण सो स-नयरमागओ। सो पच्छा तीए पभावेण राया जाओ तम्मि चेव नयरे। जओ–

कत्थ वि वर-पुण्णेणं कत्थ वि महिला-सुपुण्ण-जोएण।
दुण्ह वि पुण्णेण पुणो कत्थ वि संपज्जए रिद्धी ॥ 1 ॥*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

माउल	= मामा	**पुढो**	= अलग	**निविड**	= अत्यन्त
रंधणघर	= रसोई	**अपच्च**	= संतान	**जेसिं कए**	= जिनके लिए
कुप्पिय	= कुपिया	**कूडवेसं**	= बनावटी	**लह**	= प्राप्त करना
भंज	= निपटाना	**मन्न**	= मानना	**हेउत्तण**	= कारण
भत्ता	= पति	**चउत्थ**	= चौथा	**जाओ**	= हो गया

* रयणसेहरीनिवकहा (सं० - सेठ हरगोविंददास), वाराणसी।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. एक कन्या के लिए चार वर क्यों एकत्र हुए ?
2. सुमति कन्या ने आत्मदाह क्यों किया ?
3. कन्या पुनः जीवित कैसे हुई ?
4. मन्त्री ने चारों वरों का निपटारा कैसे किया ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) इस पाठ के आधार पर पिता, भाई, पुत्र एवं पति के सम्बन्धों को स्पष्ट कीजिए ।

(ख) कैसा न्याय सबको मान्य होता है, समझाकर लिखिए ।

(ग) इस पाठ की शिक्षा अपने शब्दों में लिखिए ।

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

पिछले पाठों से कृदन्त छांटकर लिखो —

भणिऊण	भण + ऊण	सम्बन्ध कृ.
.....	..... + ...	.....
.....	..... + ...	.....
.....	..... + ...	.....
.....	..... + ...	.....
.....	..... + ...	.....

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 26 : सेट्ठयमा पुत्तलिगा

पाठ-परिचय :

मुनिश्री विजयकस्तूरसूरि ने प्राकृत भाषा में वर्तमान युग में कई ग्रन्थ लिखे हैं। उनके द्वारा रचित पाइअविन्नाणकहा नामक पुस्तक में कुल 55 कथाएं हैं। सरल गद्य में लिखी हुई ये कथाएं विभिन्न विषयों से सम्बन्धित हैं।

प्रस्तुत कथा लोकप्रचलित कथा है। भोज राजा की सभा में एक कलाकार तीन पुतलियां लाता है। वे रूप, रंग, वजन, धातु आदि में बिल्कुल समान हैं। उन पुतलियों में श्रेष्ठतम पुतली कौन-सी है, इसका निर्णय कालिदास नामक विद्वान् करता है। पुतलियों के माध्यम से हितकारी वचन को सुनकर हृदय में धारण करने वाले व्यक्ति को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया गया है।

भोयनरिंदसहाए एगया को वि वेएसिओ समागओ। तया तीए सहाए कालीदासाइणो अणेगे विउसा संति। सो वेएसिओ नरिंदं पणमिअ कहेइ- 'हे नरिंद ! अणेगविउसवरालंकिय तुव सहं नच्चा पुत्तलिगात्तिगमुल्लंकरणट्ठं तुम्ह समीवे हं आगओ म्हि।'

एवं कहिऊण सो समुच्च-वण्ण-रूवं पुत्तलिगातयं रण्णो करे अप्पिऊण कहेइ— "जइ सिरिमंताणं विउसवरा एआसिं उइअं मुल्लं करिस्संति, तया अज्ज जाव अन्ननरवरसहासु जएण मए लद्धा जे विजयंकंकिआ लक्खचंदगा ते दायव्वा, अन्नह अहं विजयक चन्हिअसुवण्णचंदगमेगं तुम्हाओ गिण्हिस्सं"। रण्णा ताओ पुत्तलीओ मुल्लकरणत्थं विउसाणमप्पिआओ। को वि विउसो कहेइ- "पुत्तलिगागयसुवण्णस्स परिक्खं णिहसेण हे मणिगारा ! तुम्हे कुणेह, तुलाए वि आरोविऊण मुल्लं अंकेह"। तया सो वइएसिओ ईसिं हसिऊण कहेइ— "एरिसप्पयारेण मुल्लनिरूवगा जयंमि बहवो संति, अस्स सच्चं मुल्लं जं सिया, तं णाउं भोयनरिंदसभाए समागओ म्हि"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं सोच्चा पंडिआ पुत्तलिगाओ करे गहिऊणं सम्मं निरूविंति, परंतु पुत्तलिगातिगस्स रहस्सं णाउं न तीरंति। तया कुद्धो नरिंदो वएइ— "एयाइ महईए परिसाए किमु कोवि एयासिं मुल्लं काउं न समत्थो ?, धिद्धि तुम्हाणं"।

तया कालीदासो कहेइ— 'दिणत्तएणावस्सं मुल्लं काहामि' त्ति कहिऊण सो पुत्तलिगाओ गहिऊण घरंमि गओ। वारंवारं ताओ दठ्ठूण बहुं विआरेइ। सुहुमदिट्ठीए ताओ निरिक्खेइ। तया ताणं पुत्तलीणं कण्णेसु छिद्दइं पासेइ, पासित्ता तेसु छिद्देसु तणुगं सलागं पक्खिवेइ, एवं सव्वाओ सलागापक्खेवेण निरूविअ तासिं मुल्लं पि अंकेइ। तिदिणंते नरिंदसहाए गच्चा निवस्स पुरओ कमेण ताओ ठविऊण तेण वुत्तं— "पढमाए पुत्तलिगाए मुल्लमेगकवड्डिआमेत्तं, बीआए एगं रूवगं, तइआए मुल्लमेगलक्खरूवगमत्थि"। तं मुल्लं सोच्चा सव्वा सहा अच्छेरमग्गा जाया।

वइएसिएण कहिअं— "एएण सच्चं मुल्लमुत्तं, ममावि तं चिअ अणुमयं"। राइणा कालीदासो पुट्ठो— "तुमए समपमाण-वण्ण-रूवाणं एआसिं कहं विसमं मुल्लं कहिअं" ति !। कालीदासो कहेइ— हे नरिंद ! मए पढमपुत्तलिगाए मुल्लं कवड्डिआमेत्तं कहिअं, जओ इमीए कण्णच्छिद्दे सलागा पक्खिविआ, सा बीअकन्नच्छिद्दाओ निग्गया। तओ सा एवं उवदिसेइ— "जयंमि धम्मसोयारा तिविहा उत्ता, पढमो सोयारो एरिसो होइ, जो अप्पहियगरं वयणं सुणेइ, सुणित्ता अवरकण्णाओ निस्सारेइ, न य तयणुसारेण पयट्टेइ। सो सोयारो पढमपुत्तलिगासरिसो णेओ, तस्स किंपि मुल्लं न, अओ मए पढमसोयारसमपढमपुत्तलिगाए मुल्लं कवड्डियामेत्तं कहिअं"।

बीअपुत्तलिगाए कण्णे पक्खित्ता सलागा मुहेण निग्गया, सा एवं कहेइ— "जयंमि केवि सोयारा एआरिसा हुंति, जे उ अप्पहियगरं वयणं सुणंति, अन्नं च उवदिसंति, किंतु सयं धम्मकिच्चेसु न पवट्टंति, एरिस सोयारा बीअपुत्तलिगा सरिसा नायव्वा" तओ बीअपुत्तलिगाए मुल्लं मा रूवगमेगं कहिअं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तइअपुत्तलिगाए कण्णं पक्खित्ता सलागा बाहिरं न निग्गया, परंतु हियए ओइण्णा, सा एवं उवदिसइ— "केवि भव्वजीवा मम सरिच्छा हवंति, जे उ परलोगहियमरवयणं उवउत्ता सम्मं सुणंति। धम्मकज्जेसु जहसत्ति पवट्टंते, एरिसा सोयारा तइअपुत्तलिगाए समाणा नायव्वा' तओ मए तइअपुत्तलिगाए मुल्लं लक्खरूवगं ति जाणाविअं।

एवं कालीदासस्स वयणं सोच्चा भोयनरिंदो अन्ने वि य पंडिआ संतुट्ठा। सो वेएसिओ पराइओ समाणो तं चंदगलक्खं नरिंदग्गओ ठवेइ। राया तं सव्वं कालिदासस्स अप्पेइ।*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

वेएसिओ	= विदेशी	विउसा	= विद्वान	करणट्ठं	= करने के लिए
उइअं	= उचित	णाउं	= जानने के लिए	तीर	= समर्थ
जय	= संसार	परिसा	= सभा	धिद्धि	= धिक्कार
गच्चा	= जाकर	कवड्डिआ	= कौड़ी	सोच्चा	= सुनकर
अच्छेरमग्गा	= आश्चर्य युक्त	किच्च	= कार्य	सोयारा	= श्रोता
ओइण्णा	= उतर गयी	उवउत्त	= सावधान	सम्मं	= अच्छी तरह

---

* पाइयविन्नाणकहा (सं०-जयचन्द्रविजय), अहमदाबाद, 1967, पृ० 77-80।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. सभा में विदेशी कलाकार पुतलियों को लाया था —

(क) बेंचने के लिए (ख) नचाने के लिए

(ग) उचित मूल्य तय कराने (घ) कला-प्रदर्शन हेतु [ ]

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. उन पुतलियों का बाहरी रूप कैसा था ?
2. पुतलियों का वास्तविक मूल्य कैसे ज्ञात हुआ ?
3. श्रेष्ठतम पुतली कौन-सी थी ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) पुतलियों और श्रोताओं की तुलना अपने शब्दों में करिए।

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

पिछले पाठों से समास छांटकर लिखें —

धम्मकज्ज	धम्मस्स + कज्ज	तत्पुरुष
.....	..... + ...	.....
....	..... + ...	.....

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 27 : परोवगारिणो पक्खिणो

पाठ-परिचय :

आचार्य **विजयकस्तूरसूरि** ने स्वतन्त्र कथानक को लेकर भी प्राकृत में ग्रन्थ लिखे हैं। प्राचीन साहित्य में प्रसिद्ध श्रीचन्द्रराजा की कथा को लेकर उन्होंने वर्तमान युग में **सिरिचंदरायचरियं** नामक विशाल ग्रन्थ लिखा है। श्रीचन्द्रराजा के पुत्रजन्म से लेकर दीक्षा तक के नाना प्रसंगों का सजीव वर्णन इस ग्रन्थ में हुआ है।

प्रस्तुत गद्यांश उस समय का है, जब रानी वीरमती उद्यान में अकेली बैठी थी और संतान न होने से उदास थी। उसी समय वहाँ एक तोता आया। उस तोते और रानी के बीच जो वार्तालाप हुआ उससे पता चलता है कि पक्षी मानव का कितना उपकार करते हैं। अतः पक्षियों के प्रति करुणा की जानी चाहिए।

तइया तीए पुण्णपेरिओ कोवि सुगो कओ वि समागंतूण सहयारतरुसाहाए उवविट्ठो। मिलाणमुहपंकयं वीरमइं पेक्खित्ता परुवयार-तल्लिच्छो सो सुगो मणुसभासाए तं भासेइ— 'सुंदरि ! किं रोएसि ? वसंतकीलारंगं चइऊण किं दुहट्टिओ भायसि ? नियदुहं मम निवेयसु।'

सा वीरमई एवं सुगवयणं सोच्चा उड्ढं पेक्खिअ मणुअभासाभासगं सुगवरं निरिक्खऊण जायकोउगा मउणं चइत्ता भासेइ— 'विहग ! मम मणोगयभावं नच्चा तु किं विहेहिसि ?

फलभक्खी लहू-पक्खी, भमंतो गयणो सया।
तिरिच्छो सि वणे वासी, विवेगविगलो तुमं ।। 1 ।।

जइ मम दुहभंजगो सिया तया तव पुरओ रहस्सकहणं समुइयं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जो मूढमई अण्णेसिं नियरहस्सियवुत्तांतं कहेइ सो केवलं पराभवपयं पावेइ। वुत्तं च—

रहस्सं भासए मूढो, जारिसे तारिसे जणे।
कज्जहाणिं विवत्तिं च, लहए हि पए-पए ।। 2 ।।

अओ रहस्सवुत्तांतं अणुग्घाडियं चेव वरं।'

तओ सो सुगो वएइ— 'महादेवि ! किं एवं संकसे ? पक्खिणो जं जं कज्जं साहिंति तं विहेउं नरा वि असक्का।' तं सुणिऊण विम्हियचित्ता सा कहेइ— 'सुग ! असच्चं वयंतो किं न लज्जेसि ? मणसाओ नाणविरहिआ पक्खिजाई कहं दक्खा ?'

तया सुगो कहित्था— 'देवि ! जगम्मि पक्खिसरिसो को अत्थि ? तिखंडाहिवइ वासुदेवविण्हुस्स वाहणं पक्खिराओ गरुलो अत्थि। कवियण-मुहमंडणं वरप्पयाइणी जडयावहारिणी भगवई सरस्सई हंसवाहणविराइआ अत्थि। एत्थ तीए सोहाकारणं विहगो च्चिअ। कासइ सेट्ठिवरस्स मयबाण-बाहा-असहाए वल्लहाए सुगराओ नव-नव-कहाहिं अखंडसीलं रक्खित्था, इअ तुमए न सुअं ? नलराय-दमयंतीसंबन्धजणगो मरालो होत्था, एवं जयम्मि पक्खिवरेहिं अणेगुवयारा कया। पढियक्खरमेत्ता विहगा वि जीवदयं कुणंति। आगमे वि तिरिक्खा पंचमगुणट्ठाणाहिगारिणो कहिआ संति। अम्हे गयणचारिणो तहवि सत्थसारवेइणो होमो। नियजाइपसंसा समुइआ, न उ अण्णलहुत्तणट्ठं।'

एवं सुगरायवयणं सुणित्ता पमुइयमणा वीरमई वएइ— 'सुगराय ! तुमं सच्चवयणो बुहोसि। तव वयणविलासेण पुलगियदेहा अहं तुमं जीविआओ वि पियअमं मण्णेमि। इह उववणम्मि तुह आगमणं अण्णपेरणाए वा निय-इच्छाए संजायं ?'

सो सुगो वएइ— 'केणइ विज्जाहरेण पालिओ ससिणेहं च सुवण्ण-पंजरे ठविओ अहं, तेण उवइट्ठं सयलकज्जं कुणंतो तस्स चित्तं रंजित्था।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अह अन्नया मं घेत्तूण विज्जाहरो मुणिंदवंदणट्ठं गओ। मुणिंदं पणमिऊण कयंजली तप्पुरओ उवविट्ठो। मुणिवरदंसणेण पावरहिओ अहं पि तं चिअ झायंतो संठिओ। मुणिवरो महुरवायाए धम्मुवएसं कासी। देसणंते पंजरत्थिअं मं निरिक्खित्ता कहेइ— 'जो तिरिक्खबंधणासत्तो होइ तस्स महापावं सिया; तस्स हिययम्मि दया न हवइ, दयं बिणा कहं धम्मसिद्धी सिया? बंधण-पडिया पाणिणो परं दुहं अणुभवंति, तओ धम्मत्थीहिं को वि जीवो बंधण-गओ न विहेयव्वो। सव्वेसिं सुहं चिय पियं। वुत्तं च—

सव्वाणि भूआणि सुहे रयाणि, सव्वाणि दुक्खाउ समुव्वियंति।
तम्हा सुहत्थी सुहमेव देइ, सुहप्पदाया लहए सुहाइं ॥ 3 ॥

इच्चाइ वयणेण पडिबुद्धो सो विज्जाहरो गहिय नियमो बंधणाओ मं मुंचित्था। तओ हं मुणिंदं नच्चा तस्स उवयारं सुमरंतो वणंतरं अइक्कमंतो रमंतो एत्थ समागंतूण अंबतरुसाहाए उवविट्ठो तए पेक्खिओ। देवि! तम्हा मम पुरओ गोवणिज्जं किंचि बि न, असच्चं न वएमि। तव चिंतं अवस्सं भंजिस्सं।'*

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

सहयार	= आम	साहा	= डाली	चइऊण	= छोड़कर
उड्ढं	= ऊपर	मउणं	= मौन	चइत्ता	= त्यागकर
विह	= करना	विगल	= रहित	दक्खा	= चतुर
तिखंड	= तीन लोक	अहिवइ	= स्वामी	जडया	= अज्ञान
कासइ	= किसी	मराल	= हंस	वेइणो	= जानकर
बुहो	= विद्वान्	घेत्तूण	= लेकर	कासी	= किया
देसण	= उपदेश	पदाया	= देनेवाला	इच्चाइ	= इत्यादि

* सिरिचंदरायचरियं (सं.- चन्द्रोदयविजयगणी), सूरत, 1971, पृ० 14-16।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए —

1. मन के दुख कहना चाहिए—

(क) सबके सामने (ख) राजा के सामने

(ग) दुख दूर करने वाले को (घ) किसी को भी नहीं [ ]

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. जिस किसी के सामने अपना रहस्य कहने से क्या हानि है ?
2. पक्षी मनुष्य के लिए क्यों उपकारी हैं ?
3. पक्षियों को बन्धन में क्यों नहीं रखना चाहिए ?

4. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) पाठ के आधार पर प्रमुख पक्षियों और महापुरुषों से उनके सम्बन्ध बताईए।

(ख) मुनि के उपदेश को अपने शब्दों में लिखिए।

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

पिछले पाठों से समास छांटकर लिखें —

धम्मकज्ज	धम्मस्स + ज्ज	तत्पुरुष
.....	..... + ...	.....
.....	..... + ...	.....

———

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 28 : साहु-जीवणं

पाठ-परिचय :

श्री चन्दनमुनि ने वर्तमान युग में प्राचीन शैली में एक प्रेरक कथानक को लेकर रयणवालकहा नामक पुस्तक लिखी है। प्राकृत गद्य में लिखी गयी यह कथा रत्नपाल के साहस, पुरुषार्थ एवं उसकी कर्तव्यपरायणता को प्रकट करती है।

इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर विभिन्न विषयों पर लेखक ने अपने विचार प्रकट किये हैं। प्रस्तुत गद्यांश में विभिन्न ऋतुओं में गृहस्थों और साधुओं के जीवन में क्या अन्तर होता है, इसका प्रतिपादन किया गया है।

ईसिहसिअ-दंसिअधवलदंतपंतिणा राउलेण वाहरिअं— 'ण एत्थ कोइ खेअस्स विसओ। अत्थि किमुक्किट्ठं जणणी-जणयाइरित्तं। तेसिं सेवा खु देव-सेवा। तेसिं दंसणं खु देव-दंसणं। तेसिं आणा किर देव-आणा। किं तेण किमि-कोडि गएण कुलिंगालेण जाएण, जो ण हवइ पिअराण सुहहेऊ? परंतु ण एयं कज्जं तएजारिसाणं गिहत्थाणं। अत्थि मएजारिसाणं-तु वाम-हत्थलीला अणुसंधाणकज्जं।

सोमालसेहर ! ण अणुऊलो गिहत्थाण हेमंत-उऊ। जाला पवहइ अइ सीअलो जगं कंपावेमाणो जडो ऊइणो पवणो, ताला को सुहिओ गिहत्थो गिहाओ णीहरइ? पहिरिअ णागुण्णिअवासो, आरोग्गिअविसिट्ठ सत्तिदाय-गोसहमीसिअ-मिट्ठण्णो, दारापुत्तपरिवारिओ उवाणलं ट्ठिओ वासराइं गमेइ। तत्थ णिप्पिहो झडिलो समणो तावसो गलिअचीवरो दिअंबरो वा साणंदं रुक्खमूलम्मि ठिओ झाणं झायइ, परमिट्ठि सुमिरइ, छुहं अहिआसेइ सुहंसु-हेण सीअआलं च जवेइ।

तहेव उण्हालो वि ण भोईणमणुलोमो। जाहे पतवइ अइ तिग्म-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

रस्सीहिं अंसूमाली। वण्हिसरिच्छा हवइ धरणी। सव्वं पि वायावरणं तात-प्पावेमाणो पवहइ असहणिज्जो मारुओ। वारं वारं परिफुसिअं पि ण सुक्क-त्तणमुवेइ सेअजलं। सुपीअं पि उदयं ण कयाइ पीअं पिव अणुहवंति, तण्हालुआइं ओट्ठतालुकंठ विवराइं ताहे पत्तसमग्गभोगसामग्गीओ णाणाविहं सीअ-पेज्जं पिबंतो वायाणुकूलिअगिहम्मि अल्लीणो सुकई को हम्मिअं चएउं चयइ ? तत्थवि मुणी जत्थ कत्थइ ठिओ, जं किमवि सीउण्हं भुंजंतो, उसिणं जलं पिबंतो, तत्तभूमीअले वि अणत्थुअं सुवंतो, परममुइओ लक्खि-ज्जइ। केण अणुहविज्जइ गिम्हकालतत्ती जो अणुवेलं सरेइ परमं पयं ? जस्स सव्वं पि बाहिरं वत्थुजायं बाहिरं तस्स का सुहस्स दुहस्स वा कप्पणा ? अहो विचित्तो मुणीण मग्गो।

तहेव पाउससमयो वि ण जेट्ठासमीहिं सुसहो, जया वासेंति पयोवाहा, जया-तया हवंति पच्छण्ण-रविबिंबाणि दुद्दिणाणि। हिअयं कंपिअं कुणेमाणी विज्जोअइ विज्जू। गडगडायमाणो कण्णमूलं भिंदेइ पुण थणिअसद्दो। पिच्छिला हवंति वत्तणीओ। सवेआओ वहंति णिण्णआओ। अब्भंतरिओ वि अक्को अईव अंतरंगगिम्हिमं अणुहवावेइ जाउ, तम्मि को सुही जुवइजण-विरहिओ चिट्ठिउं खमो ? विहिपरततो पउत्थो वि कोइ गिहं संभरेइ रत्तिदि-अहं। उक्किट्ठमंतव्वेअणं माणेइ काइ पवसिअभत्तिआ 'पिउ-पिउ' त्ति बप्पीहसद्देण पिअं संसरेमाणी माणिणी।

तहि पाउसम्मि वि पच्चक्खाय-पाणभोअणा गिरिकंदरासु सम-ल्लीणा, ववगयसव्व-सरीरमाणसचिंता, अक्खयबंभचेर-परिवड्ढिअलेस्सा, झाणकोट्ठोवगया अलक्खिअं तक्करणारहिअं सुहं वेलमइवाहयंति। अओ संति सव्वे वि उउणो मुणीणं दाहिणावट्टा।*

* रयणबालकहा (चन्दनमुनि), अहमदाबाद, 1971, पृ० 178-182

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास

1. शब्दार्थ :

ईसि	= थोड़ा	**अइरित्तं**	= अतिरिक्त	**आणा**	= आज्ञा
कुलिंगाल	= कुल-नाशक	**ऊईणो**	= उत्तरी	**तालं**	= तब
उण्णअ	= ऊनी	**णिप्पिहो**	= अनासक्त	**झडिलो**	= जटाधारी
अहिआस	= सहन करना	**उण्हाल**	= गर्मी	**भोई**	= गृहस्थ
सुकई	= पुण्यवान	**अणवेलं**	= प्रतिक्षण	**पयोवाह**	= बादल

2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का क्रमांक कोष्ठक में लिखिए :

1. सभी ऋतुओं में धर्मध्यान में लीन रहते हैं–

(क) संसारी मनुष्य (ख) विद्वान्

(ग) राजा लोग (घ) साधु मुनि [ ]

3. लघुत्तरात्मक प्रश्न :

प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. शीतकाल में सच्चा साधु कहाँ रहता है ?
2. किसका स्मरण करने से साधु को गर्मी का अनुभव नहीं होता ?
3. वर्षाऋतु गृहस्थों को क्यों अनुकूल नहीं होती ?

4 निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) पाठ के आधार पर तीनों ऋतुओं में गृहस्थों की दिनचर्या का वर्णन करें।

(ख) साधु-जीवन के प्रमुख कार्यों का उल्लेख करें।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 29 : चेडरस धम्मबुद्धी

पाठ-परिचय :

प्राकृत भाषा का प्रयोग नाटकों के पात्र भी करते रहे हैं। लगभग गुप्तयुग के पूर्व नाटककार **शूद्रक** द्वारा लिखे गये प्रहसन (नाटक) **मृच्छकटिकं** में विभिन्न प्राकृत भाषाओं का प्रयोग हुआ है। यह प्रहसन भारतीय जनता का प्रतिनिधि नाटक है। अन्यायी राजा के शासन के विरुद्ध सामान्य जनता ने जो लड़ाई लड़ी है, उसकी झांकी इस नाटक में है।

प्रस्तुत कथोपकथन में राजा के विलासी साले और उसके गाड़ीवान् के बीच नगरबधू वसन्तसेना की हत्या करने के सम्बन्ध में जो बातचीत हुई है, वह गाड़ीवान् के दृढ़ चरित्र को तथा अच्छे-बुरे कर्मों के फल को प्रकट करती है।

इस कथोपकथन में मागधी प्राकृत का प्रयोग हुआ है।

सगारो — अधम्मभीलू एशे बुड्ढकोले। भोदु, थावलअं चेडं अणुणेमि। पुत्तका ! थावलका ! चेडा ! शोवण्णकडआइं दइश्शं।

चेडो — अहं पि पलिइश्शं।

सगारो — शोवण्णं दे पीढके कालइश्शं।

चेडो — अहं उवविशश्शं।

सगारो — शव्वां दे उच्छिट्ठं दइश्शं।

चेडो — अहं पि खाइश्शं।

सगारो — शव्वचेडाणं महत्तलकं कलइश्शं।

चेडो — भट्टके ! हुविश्शं।

सगारो — ता मण्णेहि मम वअणं।

चेडो — भट्टके ! शव्वं कलेमि, वज्जिअ अकज्जं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सगारो — अकज्जाह गन्धे वि णत्थि ।

चेडो — भणादु भट्टके !

सगारो — एणं वशन्तशेणिअं मालेहि ।

चेडो — पशीददु भट्टके ! इअं मए अणज्जेण अज्जा पवहण-पलिवत्तणेण आणीदा ।

सगारो — अले चेडा ! तवावि ण पहवामि ?

चेडो — पहवदि भट्टके ! शलीलाह, ण चालित्ताह । ता पशीददु, पशीददु भट्टके ! भआमि क्खु अहं ।

सगारो — तुम मम चेडे भविअ कश्श भाअशि ?

चेडो — भट्टके ! पललोअश्श ।

सगारो — के शे पललोए ?

चेडो — भट्टके ! शुकिद-दुक्किदश्श पलिणामे ।

सगारो — केलिशे शुकिदश्श पलिणामे ?

चेडो — जादिशे भट्टके बहु-शोवण्णमण्डिदे ।

सगारो — दुक्किदश्श केलिशे ?

चेडो — जादिशे हग्गे पलपिण्डभक्खए भूदे । ता अकज्जं ण कलइश्शं ।

सगारो — अले ! ण मालिश्शशि ? (इति बहुविहं ताडयइ)

चेडो — पिट्टदु भट्टके ! मालेदु भट्टके ! अकज्जं ण कलइश्शं ।

जेण म्हि गव्भदाशे विणिम्मिदे भाअधेअदोशेहिं ।
अहिअं च ण काणिस्सं तेण अकज्जं पलिहलामि ।। 1 ।।*

---

* मृच्छकटिकं (शूद्रक), निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, अंक-आठवें से संशोधित रूप में उद्धृत ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 30 : अंगुलीअयस्स पत्ति

पाठ-परिचय :

महाकवि **कालिदास** ने लगभग चौथी शताब्दी में **अभिज्ञानशाकुन्तलं** नाटक लिखा है। उसके अधिकांश पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। इस नाटक में राजा दुष्यन्त एवं ऋषिकन्या शकुन्तला के प्रेम की कथा वर्णित है। राजा की अंगूठी को नाटक में महत्वपूर्ण भूमिका है। वही अंगूठी शकुन्तला की अंगुली से नदी में गिर जाती है। अंगूठी के अभाव में राजा शकुन्तला को अपनी पत्नी स्वीकार नहीं करता है।

प्रस्तुत कथोपकथन में उसी नदी के मछुआरे को राजा के सिपाहियों और कोतवाल ने पकड़ लिया है। मछुआरा अपनी निर्दोषता प्रकट कर रहा है कि उसने अंगूठी चुरायी नहीं है। उसे वह मछली के पेट में मिली है। सिपाही उसे दण्ड दिलाने के लिए राज दरबार में ले जाते हैं। अंगूठी पाकर राजा उस मछुआरे को पुरष्कृत करता है।

(तओ पविसइ णागरिओ सालो, पच्छा बद्धपुरिसं गेण्हंता दुवे रक्खिणा च)

दुवे रक्खिणा — (ताडिऊण) अले, कुंभीलआ ! कहेहि कहिं तुए एशे मणिबंधणुक्किण्णणामहेए लाअकीए अंगुलीअए शमाशादिए ?

पुरिसो — (भीइं णाडियएण) पशीदंतु भावमिश्शे ! हगे ण ईदिकम्मकाली।

पढमो रक्खिणो — किं खु शोहणे बम्हणे त्ति कलिअ लण्णा पडिग्गहे दिण्णे ?

पुरिसो — शुणुह दारिणं। हगे शक्कावदालब्भंतरालवाशी धीवले।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बीओ रक्खिणो — पाडच्चला ! किं अम्हेहिं जादी पुच्छिदा ?

सालो (कोडवालो) — सुअअ ! कहेदु शव्वं अणुक्कमेण । मा णं अन्तरा पडिबन्धह ।

दोण्णि — जं आवुत्तो आणवेदि । कहेहि ।

पुरिसो — अहके जालुग्गालादीहिं मच्छबन्धणोवाएहिं कुडुम्ब-भलणं कलेमि ।

सालो — (हसिऊण) विसुद्धो दाणिं आजीवो ।

पुरिसो — भट्ट ! मा एव्वं भण—

शहजे किल जे वि णिन्दिए ण हु दे कम्मविवज्जणीअए ।
पशुमण्डणकम्मदालुणे अणुकम्पामिदु एव्वं शोत्तिए ।। 1 ।।

सालो — तदो तदो ।

पुरिसो — एक्कशिशं दिअशे खंडशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे । जाव तशश उदलब्भंतले एदं लदणभाशुलं अंगुली-अअं देक्खिअं । पच्छा अहके शे विक्कआअ दंश-अंते गहिदे भावमिश्शेहि । मालेहि वा मुंचेह वा, अअं शे आअमवुत्तंते ।

सालो — जाणुअ ! विस्सगंधी गोहादी मच्छबंधो एव्व णिस्संसअं । अंगुलीअअदंसणं शे विमरिसिदव्वं । राअ-उलं एव्व गच्छामो ।

दुवे रक्खिणा — तह । गच्छ अले गंडभेदअ !*

---

* अभिज्ञानशाकुन्तलं, (कालिदास), निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, अंक छठे से उद्धृत ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास (पाठ 29)

1. प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. शकार ने अनुचित कार्य करने के लिए गाड़ीवान् को क्या-क्या प्रलोभन दिये ?
2. गाड़ीवान् पर शकार का कितना अधिकार था ?
3. चेट ने अच्छे-बुरे कर्मों के फल का क्या उदाहरण दिया ?

2. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) इस कथोपकथन की भाषा के सम्बन्ध में अपने शिक्षक से समझें और उसकी विशेषताएं लिखें।

अभ्यास (पाठ 30)

1. प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. मछुआरे को सिपाहिओं ने क्यों पकड़ा था ?
2. मछुआरे ने अपनी जीविका के सम्बन्ध में क्या सूचना दी ?
3. अंगूठी की प्राप्ति के सम्बन्ध में मछुआरा क्यों निर्दोष था ?

2 निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) इस कथोपकथन की भाषा के सम्बन्ध में अपने शिक्षक से समझें और उसकी विशेषताएं लिखें।

(ख) अभिज्ञानशाकुन्तलं में अंगूठी के महत्त्व को स्पष्ट करें।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 31 : कवि-गोट्ठी

पाठ-परिचय :

महाकवि **राजशेखर** ने 10 वीं शताब्दी में **कर्पूरमंजरी** नामक नाटक (सट्टक) प्राकृत भाषा में लिखा है। इसमें चन्द्रपाल राजा और कर्पूरमंजरी की प्रेमकथा वर्णित है। सौन्दर्य-वर्णन एवं काव्य-चर्चा की दृष्टि से यह नाटक महत्वपूर्ण है।

प्रस्तुत कथोपकथन में राजा के दरबार में उसके मित्र कर्पिंजल नामक विदूषक तथा रानी की प्रमुख दासी विचक्षणा के बीच काव्यात्मक नोंक-झोंक होती है। राजा विचक्षणा का पक्ष लेता है। इससे क्रोधित होकर विदूषक सभा से चला जाता है।

राआ — सच्चं विअक्खणा विअक्खणा, चतुरत्तणेण उत्तीणं विचित्तदाए रीदीणं। ता किं अण्णं कइचूडामणित्तणे ठिदा एसा।

विऊसओ — (सकोहं) ता उज्जुअं जेव किं ण भणीअदि अच्चुत्तमा विअक्खणा कव्वम्मि, अच्चहमो कविजलो बम्हणो त्ति।

विअक्खणा — अज्ज ! मा कुप्प। कव्वं जेव दे कइत्ताणं पिसुणेदि। जदो कान्तारत्तणिन्दणिज्जे वि अत्थे, सुउमारा दे बाणी-लम्बत्थणीए विअ एक्कावली, तुन्दलाए विअ कंचुलिआ, काणए विअ कज्जलसलाआ ण सुट्ठु दरं रमणिज्जा।

विऊसओ — तुज्ज उण रमणिज्जे वि अत्थे ण सुन्दरा सद्दावली। कण-अकडिसुत्तए विअ लोहकिंकिणीमाला, पडिवट्टए विअ तसरविरअणा, गोरंगीए विअ चंदणचच्चा ण चंगत्तणं अवलम्बेदि। तधा वि तुमं वण्णीअसि।

विअक्खणा — अज्ज ! मा कुप्प। का तुम्हेहिं समं पाडिसिद्धी ? जदो तुमं णाराओ विअ णिरक्खरो वि रदणतुलाए णिउज्जी-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

असि । अहं उण तुला विअ लद्धक्खरा वि ण सुवण्णतुलणे णिउज्जीआमि ।

विऊसओ — एवं मं हसंतीए तुह वामं दक्खिणं च जुहिट्ठिरजेट्ठभाअर-णामहेअं अंगं तडत्ति उप्पाडइस्सं ।

विअक्खणा — अहं पि उत्तरफग्गुणीपुरस्सर-णक्खत्तणामहेअं अंगं तुह — तडत्ति खंडिस्सं ।

राआ — वअस्स ! मा एवं भण । कइत्तणे ठिदा एसा ।

विऊसओ — (सकोहं) ता उज्जुअं जेव किं ण भणीअदि अम्हाणं चेडिआ हरिउट्ठ-णंदिउट्ठ-पोट्टिस-हालप्पहुदीणं पि पुरिदो सुकइत्ति ।*

अभ्यास

1. प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. विचक्षणा ने विदूषक की कविता में क्या दोष बतलाया ?
2. विदूषक ने विचक्षणा की कविता में क्या दोष बतलाया ?
3. विचक्षणा ने विदूषक के साथ अपनी तुलना किस उदाहरण को देकर की ?

2. निबन्धात्मक प्रश्न :

(क) इस कथोपकथन की भाषा के सम्बन्ध में अपने शिक्षक से समझें और और उसकी विशेषताएं लिखें ।

(ख) इस पाठ में प्रयुक्त उपमाओं की एक सूची बनाईए ।

(ग) अच्छी कविता में दो गुण कौन-से प्रमुख हैं, इस पाठ के आधार पर लिखिए ।

---

* कर्पूरमंजरी (सं.—डॉ. आर. पी. पोद्दार), वैशाली, 1974, प्रथम जवनिका, पृ. 138-139 से उद्धृत ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ 32 : पाइय-अहिलेहाणि

पाठ-परिचय :

सम्राट अशोक ने धर्मप्रचार के लिए एवं शासन की आज्ञाएं प्रसारित करने के लिए अपने राज्य की सीमाओं में शिलाओं पर अपनी आज्ञाएं खुदवा दी थीं। उसकी ये आज्ञाएं तत्कालीन जन-भाषा प्राकृत में थीं, किन्तु उनमें पालि एवं संस्कृत के भी कुछ प्रयोग सम्मिलित हो गये हैं। अशोक के ये शिलालेख प्राकृत गद्य के सबसे प्राचीन लिखित नमूने हैं।

अशोक के प्रमुख शिलालेख 14 हैं। उनमें से प्रथम, द्वितीय एवं बारहवां शिलालेख यहाँ प्रस्तुत है। इनमें जीवदया, मांसभक्षण-निषेध, चिकित्सासेवा, वृक्षारोपण, धर्म-समन्वय एवं दान आदि के कार्यों पर प्रकाश डाला गया है।

१. जीवदया : मंसभक्खण-निसेहो

1. इयं धंमलिपी देवानं प्रियेन प्रियदसिना राञा लेखापिता।
2. इध न किं चि जीवं आरमित्पा प्रजूहितव्यं।
3. न च समाजो कतव्यो।
4. बहुकं हि दोसं समाजम्हि पसति देवानंप्रियो प्रियद्रसि राजा।
5. अस्ति पि तु एकचा समाजा साधुमता देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो।
6. पुरा महानसम्हि देवानं प्रियदसनो राञो अनुदिवसं बहूनि प्राण सतसहस्रानि आरभिसु सूपाथाय।
7. से अज यदा अयं धंमलिपी लिखिता ती एव प्राणा आरभरे सूपाथाय द्वो मोरा एको मगो, सो पि मगो न धुवो।
8. एते पि त्रो प्राणा पछा न आरभिसरे।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

२. लोगोवयारी कज्जाणि

1. सर्वत विजितम्हि देवानंप्रियदसनो राओ एवमपि प्रचंतेसु यथा-चोडा पाडा सतियपुत केतलपुतो आतंबपंणी अंतियोको योनराजा, ये वा पि तस अंतियकस सामीपं राजानो सर्वत्र देवानंप्रियस प्रियदसिनो राओ द्वे चिकीछ कता–मनुसचिकीछा च पशुचिकोछा च ।
2. ओसुडानि च यानि मनुसोपगानि च पसोपगानि च यत यत नास्ति, सर्वत्र हरापितानि च रोपापितानि च ।
3. मूलानि च फलानि च यत यत नास्ति सर्वत्रा हारापितानि रोपापितानि च ।
4. पंथेसू कूपा च खानापिता, ब्रछा च रोपापिता पसुमनुसानं ।

३. समवायो एव साधु

1. देवानांपिये पियदसि राजा सव पासंडानि च पवजितानि च घरस्तानि च पूजयति दानेन च विविधाय च पूजाय पूजयति ने ।
2. न तु तथा दानं व पूजा व देवानंपिओ मंञ्ञते यथा किति सारवढी अस सब पासंडानं ।
3. सारवढी तु बहुविधा । तस तु इदं मूलं य वचिगुती किति आत्मपासंड-पूजा व परपासंडगरहा व न भवे अप्रकरणम्हि ।
4. लहुका व अस तम्हि तम्हि प्रकरणे । पूजेतया तु एव परपासंडा तेन तेन प्रकरणेन । एवं करुं आत्मपासंडं च वढयति परपासंडस च उपकरोति ।
5. तदंञ्ञथा करोतो आत्मपासंडं च छणति परवासंडस च पि अयकरोति ।
6. यो हि कोचि आत्मपासंडं पूजयति परपासंडं वा गरहति सवं आत्मपासंड-भतिया किति आत्मपासंडं दीपयेम इति सो च पुन तथ करातो आत्म-पासंडं वाढतरं उपहनाति ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

7. त समयावो एव साधु किति अंञमंञस धंमं स्रुणारु च सुसुंसेर च। एवं हि देवानंपियस इछा किति सवपासंडा बहुश्रुता च असु, कलाणागमा च असु।

8. ये च तत्र तते प्रसंना तेहि वतव्यं–देवानंपियो नो तथा दानं व पूजां व मंञते यथा किति सारवढी अस सर्वपासंडानं।

9. बहुका च एताय अथा व्यापता धंममहामाता य इथीभखमहामाता च वचभूमीका च अञे च निकाया। अयं च एतस फल य आत्मपासंडवढी च होती धंमस च दीपना।*

अभ्यास

1. **प्रश्न का उत्तर एक वाक्य में लिखिए :**

   1. अशोक ने किस प्रकार के 'समाज' को न करने का आदेश दिया है?
   2. अशोक ने मांस-भक्षण का निषेध कहाँ से प्रारम्भ किया?
   3. उस समय चिकित्सा की क्या व्यवस्था अशोक ने की थी?
   4. पथिकों के लिए क्या सुविधाएं थीं?
   5. अशोक के मत में 'सारवृद्धि' का क्या अर्थ है?
   6. 'समवाय' का क्या अर्थ है?

2. **निबन्धात्मक प्रश्न :**

   (क) अशोक ने धर्म-समन्वय के लिए कौन-कौन से अधिकारी नियुक्त किये थे?
   (ख) अशोक के द्वारा जन-कल्याणकारी कार्यों का वर्णन कीजिए।
   (ग) इन शिलालेखों की भाषा के सम्बन्ध में अपने शिक्षक से समझें और उसकी विशेषताएं लिखें।

---

* अशोक के अभिलेख (सं.—डॉ. राजबली पाण्डेय), ज्ञानमण्डल वाराणसी, 1965, से उद्धृत।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(ग) प्राकृत भाषा एवं साहित्य

१. प्रमुख प्राकृत भाषाएं

भारत की प्राचीन भाषाओं में प्राकृत-भाषा साहित्य एवं संस्कृति की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। प्राकृत भाषा की प्राचीनता एवं उसकी विशेषताओं के सम्बन्ध में **प्राकृत-स्वयं-शिक्षक** एवं **प्राकृत-काव्य-मंजरी** की भूमिका आदि में प्रकाश डाला जा चुका है। प्राकृत भाषा के भेद-प्रभेदों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

प्राकृत भाषा की उत्पत्ति एवं विकास की दृष्टि से उसके मुख्यतः दो भेद किये जा सकते हैं। प्रथम कथ्य-प्राकृत, जो बोल-चाल में बहुत प्राचीन समय से प्रयुक्त होती रही है। किन्तु उसका कोई लिखित उदाहरण हमारे समक्ष नहीं है। दूसरी प्रकार की प्राकृत साहित्य की भाषा है, जिसके कई रूप हमारे समक्ष उपलब्ध हैं। इस साहित्यिक प्राकृत के भाषा-प्रयोग एवं काल की दृष्टि से तीन भेद किये जा सकते हैं— 1. आदियुग, 2. मध्ययुग एवं 3. अपभ्रंशयुग।

ई. पू. छठी शताब्दी से ईसा की द्वितीय शताब्दी के बीच प्राकृत में निर्मित साहित्य की भाषा प्रथमयुगीन प्राकृत कही जा सकती है। इस प्राकृत भाषा के पांच रूप हैं —

1. **आर्ष प्राकृत** : भगवान बुद्ध और महावीर के उपदेशों की भाषा क्रमशः पालि और अर्धमागधी के नाम से जानी गयी है। धार्मिक प्रचार के लिए सर्व प्रथम इन भाषाओं का महापुरुषों द्वारा उपयोग हुआ इसलिए इनको ऋषियों की भाषा आर्षप्राकृत कहना उचित है।

2. **शिलालेखी प्राकृत** : जन-भाषा प्राकृत को प्रचीन राजाओं ने अपने राज-काज की भाषा भी बनाया। लिखित रूप में प्राकृत भाषा का सबसे पुराना

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

रूप शिलालेखों की भाषा में सुरक्षित है। सर्व प्रथम सम्राट अशोक ने शिलालेखों में प्राकृत भाषा का प्रयोग किया। उसके बाद खारवेल का हाथीगुंफा शिलालेख प्राकृत में लिखा गया। फिर लगभग 400 ई० तक हजारों शिलालेख प्राकृत में लिखे पाये जाते हैं। इन सबकी भाषा जनबोलियों की मिश्रित भाषा है, जिसे विद्वानों ने 'शिलालेखी प्राकृत' कहा है।

3. **निया-प्राकृत :** निया प्रदेश (चीनी तुर्किस्तान) से प्राप्त लेखों की भाषा को 'निया प्राकृत' कहा गया है। इस प्राकृत भाषा का तोखारी भाषा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

4. **धम्मपद की प्राकृत :** पालि धम्मपद की तरह प्राकृत में भी लिखा गया एक धम्मपद मिला है। इसकी लिपि खरोष्ठी है। इसकी प्राकृत पश्चिमोत्तर प्रदेश की बोलियों से सम्बन्ध रखती है।

5. **अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत :** अश्वघोष के नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत जैन सूत्रों की प्राकृत से भिन्न है। यह भिन्नता प्राकृत के विकास को सूचित करती है। इस समय तक मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी नाम से प्राकृत के भेद हो चुके थे।

इस प्रकार प्रथम युगीन प्राकृत भाषा इन आठ सौ वर्षों में प्रयोग की दृष्टि से विभिन्न रूप धारण कर चुकी थी।

ईसा की द्वितीय से छठी शताब्दी तक जिस प्राकृत भाषा में साहित्य लिखा गया है, उसे मध्ययुगीन प्राकृत कहा जाता है। इस युग की प्राकृत को हम साहित्यिक प्राकृत भी कह सकते हैं। किन्तु प्रयोग की भिन्नता की दृष्टि से इस समय तक प्राकृत के स्वरूप में क्रमशः परिवर्तन हो गया था, अतः प्राकृत के वैयाकरणों ने प्राकृत के ये पांच भेद निरूपित किये हैं-अर्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी एवं पैशाची। इनका स्वरूप एवं प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्धमागधी

जैन आगमों की भाषा को अर्धमागधी कहा गया है। प्राचीन आचार्यों ने मगध प्रदेश के अर्धांश में बोली जाने वाली भाषा को अर्धमागधी कहा है। कुछ विद्वान् इसमें मागधी भाषा की कतिपय विशेषताएं होने के कारण इसे अर्धमागधी कहते हैं। मार्कण्डेय ने शौरसेनी के निकट होने से मागधी को ही अर्धमागधी कहा है। वस्तुतः अर्धमागधी में ये तीनों विशेषताएं परिलक्षित होती हैं। पश्चिम में शौरसेनी और पूर्व में मागधी भाषा के बीच के क्षेत्र में बोली जाने के कारण इसका अर्धमागधी नाम सार्थक होता है। यद्यपि इसका उत्पत्ति-स्थान अयोध्या को माना जा सकता है, फिर भी इसका महाराष्ट्री प्राकृत से अधिक सादृश्य है। इसके अस्तित्व में आने का समय ई. पू. चौथी शताब्दी माना जा सकता है।

अर्धमागधी का रूप-गठन मागधी और शौरसेनी की विशेषताओं से मिलकर हुआ है। इसमें लुप्त व्यंजनों के स्थान पर यश्रुति होती है। यथा—श्रेणिकम्→सेणियं। क का 'ग', न का 'ण' एवं प का 'व' में परिवर्तन होता है। प्रथमा एकवचन में 'ए' तथा 'ओ' दोनों होते हैं। धातु-रूपों में भूतकाल के बहुवचन में 'इंसु' प्रत्यय लगता है; तथा कृदन्त में एक धातु के कई रूप बनते हैं। यथा—कृत्वा के कट्टु, किच्चा, करित्ता, करित्ताणं आदि।

शौरसेनी

शौरसेनी प्राकृत शूरसेन (मथुरा) की भाषा थी। इसका प्रचार मध्यदेश में हुआ था। जैनों के षट्खंडागम आदि ग्रन्थों की रचना इसी में हुई थी। बाद में दिगम्बर जैन आगम ग्रन्थों की यह मूल भाषा बन गयी। उपलब्ध साहित्य की दृष्टि से यह सब में प्राचीन प्राकृत है। जैन ग्रन्थों के अतिरिक्त नाटकों में भी इसका प्रयोग हुआ है। इसमें कृत्रिम रूपों की अधिकता पायी जाती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शौरसेनी में त का 'द', थ एवं ह का 'ध' भ का 'ह' में परिवर्तन होता है। यथा–जानाति→जाणादि, कथयति→कधेदि आदि। गच्छति→गच्छदि, गच्छदे; भवति→भोदि, होदि; इदानीम्→दाणिं; पठित्वा→पढिया, पढिदूण आदि रूप शौरसेनी के विशिष्ट प्रयोग हैं।

महाराष्ट्री

सामान्य प्राकृत का दूसरा नाम महाराष्ट्री प्राकृत है, ऐसी कई विद्वानों की धारणा है; किन्तु इसका यह नाम उत्पत्ति-स्थल के कारण ही अधिक प्रचलित हुआ है। महाराष्ट्र प्रदेश में जो प्राचीन प्राकृत प्रचलित थी, उसी के बाद काव्य और नाटकों की महाराष्ट्री प्राकृत का जन्म हुआ है। इस प्राकृत में संस्कृत के वर्णों का अधिकतम लोप होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। इस कारण महाराष्ट्री प्राकृत काव्य में सबसे अधिक प्रयुक्त हुई है। अतः इसे साहित्यिक प्राकृत भी कहा जा सकता है। जैन काव्य-ग्रन्थों और नाटक आदि काव्य-ग्रन्थों की महाराष्ट्री प्राकृत में कुछ भिन्नता है; अतः कुछ विद्वान् महाराष्ट्री और जैन महाराष्ट्री, इसके ऐसे दो भेद भी मानते हैं।

मागधी

अन्य प्राकृतों की तरह मागधी में स्वतन्त्र रचनाएँ नहीं पायी जातीं। केवल संस्कृत-नाटकों और शिलालेखों में इसके प्रयोग देखने में आते हैं। अतः प्रतीत होता है कि मागधी कोई निश्चित भाषा नहीं थी, अपितु उन कई बोलियों का उसमें सम्मिश्रण था, जिनमें ज के स्थान पर य, र→ल, स→श तथा अकारान्त शब्दों में ए का प्रयोग होता था। मागधी का निश्चित प्रदेश तय करना कठिन है; किन्तु सभी विद्वान् इसे मगध देश की ही भाषा मानते हैं, जो अपने समय में राजभाषा भी थी। इसकी उत्पत्ति वैदिक युग की किसी कथ्य भाषा से मानी जाती है, यद्यपि इसकी प्रकृति शौरसेनी को माना गया है। शकारी, चांडाली और शाबरी जैसी लोक-भाषाएं मागधी की ही प्रशाखाएं हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पैशाची

पैशाची का समय ईसा की दूसरी से पांचवीं शताब्दी तक माना गया है। इसके पूर्व की पैशाची के कोई उदाहरण साहित्य में उपलब्ध नहीं हैं। पैशाची भाषा किसी प्रदेश विशेष की भाषा नहीं थी, अपितु भिन्न-भिन्न प्रदेशों में रहने वाली किसी जाति विशेष की भाषा थी, जिस कारण इसका प्रचार कैकय, शूरसेन और पांचाल प्रदेशों में अधिक हुआ है। ग्रियर्सन इसे पश्चिम पंजाब और अफगानिस्तान की भाषा मानते हैं। पैशाची में वर्ण परिवर्तन बहुत होता है; यथा—गकनं←गगनम् मेखो←मेघः, राचा←राजा, पंचा←प्रज्ञा, सतनं←सदनम, कच्चं←कार्यं आदि।

पैशाची भाषा में गुणाढ्य का बृहत्कथा नामक ग्रन्थ लिखे जाने का उल्लेख है। उसके कथा के कई रूपान्तर आज उपलब्ध हैं।

अपभ्रंश

महाराष्ट्री प्राकृत जब धीरे-धीरे केवल साहित्य की भाषा बनकर रह गयी तब जनभाषा के रूप में जो भाषा विकसित हुई उसे विद्वानों ने 'अपभ्रंश भाषा' कहा है। इस अपभ्रंश में 7 वीं शताब्दी से 15 वीं शताब्दी तक पर्याप्त साहित्य लिखा गया है। अपभ्रंश भाषा प्राकृत और हिन्दी भाषा को परस्पर जोड़ने वाली कड़ी है।

२. प्राकृत गद्य साहित्य की रूपरेखा

प्राकृत भाषा में ई० पू० छठी शताब्दी से साहित्य की रचना होने के उल्लेख हैं। भगवान् महावीर ने जो उपदेश दिये थे, उनका संकलन पद्य एवं गद्य दोनों में किया गया है। अतः रचना की दृष्टि से आगम प्राकृत साहित्य प्राचीन है। प्राकृत गद्य के प्राचीन नमूने इस आगम साहित्य में उपलब्ध हैं। छोटे-छोटे वाक्यों, सूक्तियों से प्रारम्भ होकर समासयुक्त शैली में बड़े-बड़े गद्य भी प्राकृत आगम के ग्रन्थों में उपलब्ध हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आचारांगसूत्र की सूक्तियां प्राकृत गद्य की आधारशिला कही जा सकती हैं। अहिंसा की सूक्ष्म व्याख्या करते हुए इसमें कहा गया है:-

अरिहता एवं परूवेंति—सव्वे पाणा सवे भूता सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा। एस धम्मे सुद्धे णिइए सासए समिच्च लोयं खेयण्णेहिं पवेइए।

भगवतीसूत्र, ज्ञाताधर्मकथा, उपासगदशांग, विपाकसूत्र रायपसेणिय, निरयावली आदि आगम ग्रन्थों में प्राकृत गद्य की प्रौढ़ शैली देखने को मिलती हैं। इनमें समासपद एवं काव्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है। राजा प्रसेन जित् अपनी सम्पत्ति के चार भाग करते हुए कहता है—

अहं णं सेयवियानयरी पमोक्खाइं सत्त गामसहस्साइं चत्तारि भागे करिस्सामि। एगं भागं बलवाहणस्स दलइस्सामि, एगं भागं कोट्ठागारे छुभिस्सामि, एगं भागं अंतेउरस्स दलइस्सामि, एगेणं भागेणं महइ महालयं कूडागारसालं करिस्सामि।

आगम के इन ग्रन्थों में प्राकृत गद्य में छोटे-छोटे वाक्यों का भी प्रयोग हुआ है। उनके साथ उपमाएं भी जुड़ी हुई हैं। जम्बुद्दीवपण्णत्ति में ऋषभ के मुनि-जीवन का वर्णन कई उपमाओं के साथ किया गया है। यथा—

कुम्मो इव इंदिएसु गुत्तो, जच्चकंचणगं व जायरूवे, पोक्खरपत्तं व निरुवलेवे, चन्दो इव सोमभावयाए, सूरो व दित्ततेए, अचले जह मंदरे गिरिवरे····।

आगम के व्याख्या सहित्य में भी प्राकृत गद्य का प्रयोग हुआ है। चूर्णि एवं भाष्य साहित्य में प्राकृत गद्य के कई सुन्दर नमूने हैं। उत्तराध्ययनचूर्णि दशवैकालिकचूर्णि एवं आवश्यकचूर्णि में कई प्राकृत कथाएं आयी हैं, जो गद्य में हैं। इनमें कथोपकथन शैली का भी प्रयोग हुआ है। निशीथचूर्णि का एक संवाद दर्शनीय है—

तेण पुच्छित्ता — किं ण गतासि भिक्खाए ?
सा भण्णति — अज्ज ! खमणं मे।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सो भणति — किं निमित्तं ?
सा भणति — मोहतिगिच्छं करेमि ।

अर्धमागधी आगमों के अतिरिक्त शौरसेनी आगम ग्रन्थों में भी कहीं-कहीं गद्य का प्रयोग मिलता है । किन्तु अधिकांश ग्रन्थ पद्य में लिखे गये हैं । 'षट्खंडागम' की टीका 'धवला' में ग्रन्थकार के परिचय के सम्बन्ध में कहा गया है–

तेण वि सोरट्ठ-विसय-गिरि-णयर-पट्टणचंदगुहाठिएण अट्ठंग-महाणिमित्त-पारएण गंथवोच्छेदो होहदि त्ति जादभएण पवयण-वच्छलेण दक्खिणावहाइरिय एं महिमाए मिलियाणं लेहो पेसिदो ।

इस तरह प्राकृत के काव्यग्रन्थों के गद्य की शैली को समझने के लिए प्राकृत आगम ग्रन्थों के गद्य का अध्ययन किया जाना आवश्यक है । इसमें भारतीय प्राचीन गद्य-शैली के विकास के कई बीज सुरक्षित हैं ।

१. प्राकृत कथा साहित्य :

प्राकृत साहित्य में सबसे अधिक कथा-ग्रन्थ लिखे गये हैं । कथाओं की शैली और विविध रूपता के लिए प्राकृत साहित्य प्रसिद्ध है । आगम काल से लेकर वर्तमान युग तक प्राकृत में कथाएं लिखी जाती रही हैं । अतः यह साहित्य पर्याप्त समृद्ध है ।

प्राकृत कथाओं का प्रारम्भ आगम साहित्य में हुआ है, जहाँ संक्षिप्त रूप में कथा का ढांचा प्राप्त होता है । उसके बाद आगम के व्याख्या साहित्य में इन कथाओं को घटनाओं और वर्णनों से पुष्ट किया गया है । ऐसी हजारों कथाएं इस साहित्य में प्राप्त हैं । कथा-प्रधान कुछ आगम गन्थों का परिचय इस प्रकार है :–

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(क) *आगम कथा-ग्रन्थ* :

ज्ञाताधर्मकथा : आगम ग्रन्थों में कथा-तत्व के अध्ययन की दृष्टि से ज्ञाताधर्मकथा में पर्याप्त सामग्री है। इसमें विभिन्न दृष्टान्त एवं धर्मकथाएं हैं, जिनके माध्यम से जैन तत्त्व-दर्शन को सहज रूप में जन-मानस तक पहुँचाया गया है। ज्ञाताधर्मकथा आगमिक कथाओं का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसमें कथाओं की विविधता है और प्रौढ़ता भी। मेघकुमार, थावच्चापुत्र मल्ली तथा द्रोपदी की कथाएं ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत करती हैं। प्रतिबुद्धराजा, अर्हन्नक व्यापारी, राजा रुक्मी, स्वर्णकार की कथा, चित्रकार-कथा चोखा परिव्राजिका आदि कथाएं मल्ली की कथा की अवान्तर कथाएं हैं। मूलकथा के साथ अवान्तर कथा की परम्परा की जानकारी के लिए ज्ञाताधर्मकथा आधारभूत स्रोत है। ये कथाएं कल्पना-प्रधान एवं सोद्देश्य हैं। इसी तरह जिनपाल एवं जिनरक्षित की कथा, तेतलीपुत्र, सुषमा की कथा एवं पुण्डरीक कथा कल्पना-प्रधान कथाएं हैं।

ज्ञाताधर्मकथा में दृष्टान्त और रूपक कथाएं भी हैं। मयूरों के अण्डों के दृष्टान्त से श्रद्धा और संशय के फल को प्रकट किया गया है। दो कछुओं के उदाहरण से संयमी और असंयमी साधक के परिणामों को उपस्थित किया गया है। तूम्बे के दृष्टान्त से कर्मवाद को स्पष्ट किया गया है। चन्द्रमा के उदाहरण से आत्मा की ज्योति की स्थिति स्पष्ट की गयी है। दावद्रव नामक वृक्ष के उदाहरण द्वारा आराधक और विराधक के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। ये दृष्टान्त कथाएं परवर्ती कथा साहित्य के लिए प्रेरणा प्रदान करती हैं।

इस ग्रन्थ में कुछ रूपक कथाएं भी हैं। दूसरे अध्ययन की कथा धन्ना सार्थवाह एवं विजय चोर की कथा है। यह आत्मा और शरीर के में सम्बन्ध का रूपक है। सातवें अध्ययन की रोहिणी कथा पांच व्रतों की रक्षा और वृद्धि को रूपक द्वारा प्रस्तुत करती है। उदकजात नामक कथा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

संक्षिप्त है। किन्तु इसमें जल-शुद्धि की प्रक्रिया द्वारा एक ही पदार्थ के शुभ एवं अशुभ दोनों रूपों को प्रकट किया गया है। अनेकान्त के सिद्धान्त को समझाने के लिए यह बहुत उपयोगी कथा है नन्दीफल की कथा यद्यपि अर्थ-कथा है। किन्तु इसमें रूपक की प्रधानता है। धर्मगुरु के उपदेशों के प्रति आस्था रखने का स्वर इस कथा से तीव्र हुआ है। समुद्री अश्वों के रूपक द्वारा लुभावने विषयों के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

ज्ञाताधर्मकथा पशुकथाओं के लिए भी उद्गम ग्रन्थ माना जा सकता है। इस एक ही ग्रन्थ में हाथी, अश्व, खरगोश, कछुए, मयूर, मेंढक, सियार आदि को कथाओं के पात्रों के रूप में चित्रित किया गया है। मेरुप्रभ हाथी ने अहिंसा का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह भारतीय कथा साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय श्रुतस्कंध में यद्यपि 206 साध्वियों की कथाएं हैं। किन्तु उनके ढांचे, नाम, उपदेश आदि एक-से हैं। केवल काली की कथा पूर्णकथा है। नारी-कथा की दृष्टि से यह कथा महत्त्वपूर्ण है।

उपासकदशांग : उपासकदशांग में महावीर के प्रमुख दश श्रावकों का जीवन-चरित वर्णित है। इन कथाओं मे यद्यपि वर्णकों का प्रयोग है। फिर भी प्रत्येक कथा का स्वतन्त्र महत्त्व भी है। व्रतों के पालन में अथवा धर्म की आराधना में उपस्थित होने वाले विघ्नों, समस्याओं का सामना साधक कैसे करे इसको प्रतिप्रादित करना ही इन कथाओं का मुख्य प्रतिपाद्य है। कथा-तत्वों का बाहुल्य न होते हुए भी इन कथाओं के वर्णन पाठक को आकर्षित करते हैं। समाज एवं संस्कृति विषयक सामग्री उपासदगसाओ की कथाओं में पर्याप्त है। ये कथाएं आज भी श्रावक-धर्म के उपासकों के लिए आदर्श बनी हैं। किन्तु इन श्रावकों की साधना पद्धति के प्रति पाठकों का आकर्षण कम है, उनकी वर्णित समृद्धि के प्रति उनका अधिक लगाव है।

अन्तकृद्दशासूत्र : जन्म-मरण की परम्परा का अपनी साधना से अन्त कर देने वाले दश व्यक्तियों की कथाओं का इसमें वर्णन होने से इस ग्रन्थ को अन्तकृद्-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शांग कहा गया है। इस ग्रन्थ में वर्णित कुछ कथाओं का सम्बन्ध अरिट्ठनेमि और कृष्ण-वासुदेव के युग से है। गजसुकुमाल की कथा लौकिक कथा के अनुरूप विकसित हुई है। द्वारिका नगरी के विनाश का वर्णन कथा-यात्रा में कौतुहल तत्व का प्रेरक है। ग्रन्थ के अंतिम तीन वर्गों की कथाओं का सम्बन्ध महावीर तथा राजा श्रेणिक के साथ है। इनमें अर्जुन मालाकार की कथा तथा सुदर्शन सेठ की अवान्तर-कथा ने पाठक का ध्यान अधिक आकर्षित किया है। अतिमुक्त कुमार की कथा बालकथा की उत्सुकुता को लिए हुए है। इन कथाओं के साथ राजकीय परिवारों के व्यक्तियों का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। साधना के अनुभवों का साधारणीकरण करने में ये कथाएं कुछ सफल हुई हैं।

अनुत्तरोपपातिकदशा : इस ग्रन्थ में उन लोगों की कथाएं हैं, जिन्होंने तप-साधना के द्वारा अनुत्तर विमानों (देवलोकों) की प्राप्ति की है। कुल 33 कथाएं हैं, जिनमें से 23 कथाएं राजकुमारों की हैं, 10 कथाएं इसमें सामान्य पात्रों की। इनमें धन्यकुमार सार्थवाह-पुत्र की कथा अधिक हृदयग्राही है।

विपाकसूत्र : विपाकसूत्र में कर्म-परिणामों की कथाएं हैं। पहले स्कन्ध में बुरे कर्मों के दुखदायी परिणामों को प्रकट करने वाली दश कथाएं हैं। मृगापुत्र की कथा में कई अवान्तर कथाएं गुंफित हैं। उद्देश्य की प्रधानता होने से कथातत्व अधिक विकसित नहीं है। किन्तु वर्णनों का आकर्षण बना हुआ है। अति-प्राकृत तत्वों का समावेश इन कथाओं को लोक से जोड़ता है। व्यापारी, कसाई, पुरोहित, कोतवाल, वैद्य, धीवर, रसोईया, वेश्या आदि से सम्बन्ध होने से इन प्राकृत कथाओं में लोकतत्वों का समावेश अधिक हुआ है। दूसरे स्कन्ध की कथाएं अच्छे कर्मों के परिणामों को बताने वाली हैं। सुबाहु की कथा विस्तृत है। अन्य कथाओं में प्रायः वर्णक हैं। इस ग्रन्थ की कथाएं कथोपकथन की दृष्टि से अधिक समृद्ध हैं। उनकी इस शैली ने परिवर्ती कथा साहित्य को भी प्रभावित किया है। हिंसा, चोरी, मैथुन के दुष्परिणामों को तो ये कथाएं व्यक्त करती हैं। किन्तु इनमें असत्य

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं परिग्रह के परिणामों को प्रकट करने वाली कथाएं नहीं हैं। सम्भवतः इस ग्रन्थ की कुछ कथाएं लुप्त भी हुई हों। क्योंकि नन्दी और समवायांग-सूत्र में विपाकसूत्र की जो कथावस्तु वर्णित है, उसमें असत्य एवं परिग्रह के दुष्परिणामों की कथाएं होने के उल्लेख हैं।

औपपातिक एवं रायपसेणिय : औपपातिकसूत्र में भगवान् महावीर की विशेष उपदेश-विधि का निरूपण है। गौतम इन्द्रभूति के प्रश्नों और महावीर के उत्तरों में जो संवादतत्व विकसित हुआ है, वह कई कथाओं के लिए आधार प्रदान करता है। नगर-वर्णन, शरीर-वर्णन आदि में अलंकारिक भाषा व शैली का प्रयोग इस ग्रन्थ में है। राजप्रश्नीयसूत्र में राजा प्रदेशी और केशो श्रमण के बीच हुआ संवाद विशेष महत्त्व का है। इसमें कई कथासूत्र विद्य-मान हैं। इस प्रसंग में धातु के व्यापारियों की कथा मनोरंजक है। उसे लोक से उठाकर प्रस्तुत किया गया है।

(ख) *आगमिक व्याख्या साहित्य :*

प्राकृत आगमों पर जो व्याख्या साहित्य लिखा गया है, उसमें कई छोटी-छोटी कथाएं आयी हैं। अतः प्राकृत कथा साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से इस व्याख्या साहित्य का भी विशेष महत्त्व है। **आचारांगचूर्णि, सूत्र-कृतांगचूर्णि** और **निशीथचूर्णि** में प्राकृत गद्य में लौकिक कथाएं प्राप्त होती हैं। **उत्तराध्ययनचूर्णि** में बुद्धि-चमत्कार की भी कथाएं हैं। **आवश्यक-चूर्णि** कथाओं का भण्डार है। इसमें लौकिक एवं उपदेशात्मक दोनों प्रकार की कथाएं मिलती हैं। इन चूर्णियों के लेखक जिनदासगणि महत्तर बहुत बड़े दार्शनिक एवं कुशल कथाकार थे। लोक-जीवन को उन्होंने इन कथाओं के द्वारा व्यक्त किया है।

आचार्य हरिभद्र ने **दशवैकालिकवृत्ति** और **उपदेशपद** में कई प्रकार की कथाएं प्रस्तुत की हैं। अतः ये दोनों ग्रन्थ भी प्राकृत कथा के आधार

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ माने जा सकते हैं। टीका साहित्य में नेमिचन्द्रसूरि का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने **उत्तराध्ययन-सुखबोधाटीका** में कई महत्त्वपूर्ण प्राकृत कथाएं प्रस्तुत की हैं। इस व्याख्या साहित्य की कथाओं का डा. जगदीशचन्द्र जैन ने जो अध्ययन प्रस्तुत किया है, उससे इनके स्वरूप एवं महत्त्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

(ग) स्वतन्त्र कथा-ग्रन्थ :

तरंगवतीकहा : प्राकृत में प्राचीन समय से स्वतन्त्र रूप से भी कथा-ग्रन्थ लिखे गये हैं। पादलिप्तसूरि प्रथम कथाकार हैं, जिन्होंने प्राकृत में तरंगवइकहा नामक बड़ा कथाग्रन्थ लिखा है। किन्तु दुर्भाग्य से आज वह उपलब्ध नहीं है। उसका संक्षिप्त सार तरंगलोला के नाम से नेमिचन्द्रगणि ने प्रस्तुत किया है। इसको सम्पादित कर डा. एच. सी. भायाणी ने प्रकाशित कराया है। इस ग्रन्थ में तरंगवती के आदर्श प्रेम एव त्याग की कथा वर्णित है।

वसुदेवहिण्डी : यह ग्रन्थ विश्व कथा-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। क्योंकि वसुदेवहिण्डी की कई कथाएं विश्व में प्रचलित हुई हैं। संघदासगणि ने इस ग्रन्थ में वसुदेव के भ्रमण-वृतान्त का वर्णन किया है। प्रसंगवश अनेक अवान्तरकथाएं भी इसमें आयी हैं। इस ग्रन्थ का दूसरा खण्ड धर्मदासगणि के द्वारा रचित माना जाता है, उसका नाम मध्यमखण्ड है। वसुदेवहिण्डी में रामकथा एवं कृष्णकथा के भी कई प्रसंग हैं तथा कुछ लौकिक कथाएं हैं। इस कारण इस ग्रन्थ में चरित, कथा और पुराण इन तीनो तत्वों का समावेश हो गया है। इस ग्रन्थ का सांस्कृतिक महत्त्व भी है। इस ग्रन्थ को कुछ कथाओं अथवा घटनाओं को लेकर प्राकृत, अपभ्रंश में आगे चलकर कथाएं लिखी गयी हैं। अतः प्राकृत कथा साहित्य का यह आधार ग्रन्थ है।

समराइच्चकहा : यह प्राकृत कथा साहित्य का सशक्त ग्रन्थ है। आचार्य हरिभद्रसूरि ने लगभग 8वीं शताब्दी में चित्तौड़ में इस ग्रन्थ की रचना की थी।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इस ग्रन्थ की कथा का मूल आधार अग्निशर्मा एवं गुणसेन के जीवन की घटना है। अपमान से दुखी होकर अग्निशर्मा प्रतिशोध की भावना मन में लाता है। इस निदान के फल बरूप 9 भवों तक वह गुणसेन के जीव से बदला लेता है। वास्तव में समराइच्चकहा की कथावस्तु सदाचार और दुराचार के संघर्ष की कहानी है। प्रसंगवश इसमें अनेक कथाएं भी गुंथी हुई हैं

समराइच्चकहा में प्राकृत गद्य एवं पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है। कथाकार का कवित्व इस ग्रन्थ में पूरी तरह प्रकट हुआ है। एक स्थान पर राजा की बीमारी से व्याकुल अन्तःपुर का वर्णन करते हुए कथाकार कहता है—

तहा मिलाणसुरहिमल्लदामसोहं, सुवण्णगड्ढवियलियअंगरायं, बाहजलधोय-कवोलपत्तलेहं, करयलपणामियरुव्वायवयणपंकयं, उव्विग्गमन्तेउरं।

—प्रथम भव पृ. 24

समराइच्चकहा गुप्तकालीन संस्कृति की दृष्टि से भी विशेष महत्त्व की है। इस ग्रन्थ में समुद्रयात्रा आदि के जो वर्णन हैं, वे भारतीय पथ-पद्धति पर विशेष प्रकाश डालते हैं।

कुवलयमालाकहा : आचार्य हरिभद्र के शिष्य उद्द्योतनसूरि ने ई. ७७९ में जालौर में कुवलयमालाकहा की रचना की है। यह ग्रन्थ गद्य एवं पद्य दोनों में लिखा गया है। किन्तु इसकी विशिष्ट शैली के कारण इसे प्राकृत का चम्पू ग्रन्थ भी कहते हैं। कुवलयमाला की कथावस्तु भी एक नवीनता लिये हुए है। इसमें क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह जैसी मानसिक वृत्तियों को पात्र बनाकर उनकी चार जन्मों की कथा कही गयी है।

कुवलयमाला नैतिक आचरण को प्रतिपादित करने वाला कथा ग्रन्थ है। । साहित्य के माध्यम से जन-सामान्य के आचरण को कैसे संतुलित किया जा सकता है, इसका उदाहरण यह ग्रन्थ है। प्रेमकथा, अर्थ-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कथा एवं धर्मकथा तीनों का समिश्रण इस ग्रन्थ में है। प्रसंगानुसार इसमें अन्य लौकिक कथाएं भी आयी हैं। कुछ पशु-पक्षियों की भी कथाएं हैं। समुद्र-यात्रा एवं वाणिज्य-व्यापार की प्रामाणिक जानकारी इस ग्रन्थ से मिलती है। अतः भारत के सांस्कृतिक इतिहास के लिए भी कुवलयमाला महत्त्वपूर्ण साहित्यिक साक्ष्य है।

कहारयणकोस : मध्ययुग में स्वतन्त्रकथा ग्रन्थों के साथ प्राकृत में कथाओं के संग्रह-ग्रन्थ भी लिखे जाने लगे थे। देवभद्रसूरि (गुणचन्द्र) ने ई. 1101 में भड़ौच में कहारयणकोस की रचना की थी। इस ग्रन्थ में कुल 50 कथाएं है। गृहस्थ धर्म के विभिन्न पक्षों को इन कथाओं के माध्यम से पुष्ट किया गया है। काव्यात्मक वर्णन भी इस ग्रन्थ में हैं। कथाएं प्रायः प्राकृत गद्य में कही गयीं हैं और वर्णन पद्यों में किये गये हैं। लौकिक जीवन के भी कई प्रसंग इस ग्रन्थ की कथाओं में मिलते हैं। कथा कहने की शैली विवरणात्मक है। यथा—

अत्थि इहेव जंबुद्दीवे दीवे एरावयखेत्ते कलिंगदेसकुलंगणावयणं व मणोहरवाणियं, कम्मगंथपगरणं व बहुविहपयइ इएसगहणं, धण-धन्नसमिद्धं जयत्थलं नाम खेडं। तत्थ य वथव्वो विसाहदत्तो नाम सेट्ठी। सेणा नाम से भज्जा।

—कथा नं० 2, पृ 24

कुमारवालपडिबोह : सोमप्रभसूरि ने सन् 1184 में इस ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में गुजरात के राजा कुमारपालके चरित्र का वर्णन है। किन्तु उसको प्रदान की गयी शिक्षा के दृष्टान्तों के रूप में इस ग्रन्थ में कई कथाएं दी गयी हैं। अतः यह चरित-ग्रन्थ न होकर कथा-ग्रन्थ बन गया है। लघु कथानकों एवं आदर्श चरितों का इसमें समन्वय है। यद्यपि इस ग्रन्थ का वातावरण धार्मिक है, फिर भी इसमें काव्यात्मक छटा देखने को मिलती है। कथाओं के विकास को जानने के लिए इस ग्रन्थ का अध्ययन उपयोगी है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

रयणसेहरनिवकहा : जिनहर्षसूरि ने इस ग्रन्थ की रचना ई० सन् 1430 में चित्तौड़ में की थी : यह एक प्रेमकथा है। इसमें रत्नशेखर सिंहलद्वीप की राजकुमारी रत्नवती से प्रेम करता है, अनेक कष्ट सहकर उसे प्राप्त करता है। इसमें राजा का मंत्री मतिसागर सहायक होता है। कथा के दूसरे भाग में सात्विक-जीवन की साधना का वर्णन है। पर्व के दिनों में धर्म-साधना करना इस ग्रन्थ का प्रमुख स्वर है। किन्तु लौकिक पक्ष भी उतना ही सबल है। इस ग्रन्थ की कथावस्तु के आधार पर जायसी के पद्मावत का इसे मूल आधार माना जाता है।

प्राकृत के इन कथा-ग्रन्थों के अतिरिक्त गद्य में लिखी गयी अन्य रचनाएं भी उपलब्ध हैं। लगभग 12वीं शताब्दी में आचार्य सुमतिसूरि ने **जिनदत्ताख्यान** नामक ग्रन्थ लिखा है। वर्धमानसूरि द्वारा सन् 1083 में लिखित **मनोरमाकहा** एक सरस कथा है। संघतिलक आचार्य ने लगभग 12वीं शताब्दी में **आरामसोहाकहा** की रचना की है। यह कथा विशुद्ध लौकिक कथा है। इन सब कथा-ग्रन्थों का अभी व्यापक प्रचार नहीं हुआ है। इनकी कथा के सूक्ष्म अध्ययन से भारतीय कथा-साहित्य के कई पक्ष समृद्ध हो सकते हैं।

पाइयविन्नाणकहा : श्री विजयकस्तूरसूरि ने 20वीं शताब्दी में प्राकृत कथा-प्रणयन को जीवित रखा है। उन्होंने इस पुस्तक में 55 कथाएं लिखी हैं। प्राकृत गद्य में लिखी ये कथाएं लौकिक-जीवन और परम्परा के चित्र को उजागर करती हैं।

रयणवालकहा : श्री चन्दनमुनि प्राकृत के आधुनिक लेखक हैं। उन्होंने इस ग्रन्थ में रत्नपाल की कथा को प्राकृत के प्रांजल गद्य में प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ को पढ़ने से प्राकृत-कथाओं की समृद्ध परम्परा का आभास हो जाता है।

२. प्राकृत चरित–साहित्य :

प्राकृत गद्य का प्रयोग आगम ग्रन्थों और कथा-ग्रन्थों के अतिरिक्त प्राकृत के चरित ग्रन्थों में भी हुआ है। गद्य-पद्य में मिश्रित रूप से लिखे गये प्राकृत के निम्न प्रमुख चरित ग्रन्थ हैं:—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

1. चउप्पनमहापुरिसचरियं, 2. जंबुचरियं 3. रयणचूडरायचरियं, 4. सिरिपासनाहचरियं एवं 5. महावीरचरियं आदि।

चरित साहित्य के ये ग्रन्थ प्रायः पौराणिक कथानकों पर आधारित हैं। उन्हीं में से ग्रन्थों के नायकों का चयन कर उनके चरितों को विकसित किया गया है। मूल चरितनायक के जीवन को उद्घाटित करने के लिए इन ग्रन्थों में जो अन्य कथाएं एवं दृष्टान्त दिये गये हैं उनसे इन ग्रन्थों का कथात्मक महत्त्व बढ़ गया है। इन ग्रन्थों का गद्य भाग प्रायः सरल है। पद्य भाग में काव्यात्मक शैली अपनायी गयी है।

चउप्पन-महापुरिसचरियं : इस ग्रन्थ की रचना लगभग 9वीं शताब्दी (ई.868) में की गयी थी। शीलंकाचार्य ने इस ग्रन्थ में 24 तीर्थंकरों, 12 चक्रवर्तियों, 9 वासुदेवों एवं 9 बलदेवों इन कुल 54 महापुरुषों के जीवन-चरितों को प्रस्तुत किया है। अतः यह ग्रन्थ विशालकाय है। ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, महावीर, राम, कृष्ण, भरत सभी प्रमुख व्यक्तियों का जीवन इसमें आ गया है। अतः कुछ वर्णन तो केवल परम्परा का निर्वाह करते हैं। किन्तु कुछ चरितों का विश्लेषण सूक्ष्मता से हुआ है। प्रासंगिक कथाएं इस ग्रन्थ को मनोरंजक बनाती हैं।

जंबुचरियं : गुणपाल मुनि ने लगभग 9वीं शताब्दी में इस ग्रन्थ की रचना की है। जम्बुस्वामी के वर्तमान जन्म की कथा जितनी मनोरंजक है, उतनी ही उनके पूर्वजन्मों की कथाएं हैं। इस कारण यह ग्रन्थ पर्याप्त सरस है। धार्मिक वातावरण व्याप्त होने पर भी प्राकृतिक वर्णनों से ग्रन्थकार का कवित्व प्रकट होता है। इस ग्रन्थ का प्राकृत गद्य समासयुक्त और प्रौढ़ है। वासगृह का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

तत्थ वि सुरहिपइन्नकुसुमदामविलंबियपवराहिरामं, कप्पूररेणुकुंकुमकेसरलवंगकत्थूरियसुरहिगंधठ्ठपूरपूरिय ..... पविट्ठो कुमारो वासहरं ति।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

रयणचूडरायचरियं : यह ग्रन्थ लगभग 12वीं शताब्दी में चन्द्रावती नगरी (आबू) में लिखा गया था। इसके रचयिता नेमिचन्द्रसूरि प्राकृत के प्रसिद्ध कथाकार हैं। इस ग्रन्थ में रत्नचूड एवं तिलकसुन्दरी के धार्मिक-जीवन का वर्णन है। किन्तु उनके पूर्वजन्मों का वर्णन करते समय ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ को मनोरंजक और काव्यात्मक बना दिया है। इस ग्रन्थ की कथाएं लौकिक एवं उपदेशात्मक हैं। इसका प्राकृत गद्य प्रांजल एवं समासयुक्त है।

सिरिपासनाहचरियं : इस ग्रन्थ की रचना देवभद्रसूरि (गुणचन्द्र) ने ई. सन् 1111 में की थी। इसमें पार्श्वनाथ के जीवन का विस्तार से वर्णन है। पूर्वभवों के प्रसंग में मनुष्य-जीवन की विभिन्न वृत्तियों का इसमें अच्छा चित्रण हुआ है। अवान्तर कथाएं इस ग्रन्थ के कथानक को रोचक बनाती हैं।

महावीरचरियं : ई० सन् 1082 में गुणचन्द्र ने इस ग्रन्थ की रचना छत्रावली में की थी। इस ग्रन्थ में भगवान् महावीर के जीवन को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रन्थ गद्य और पद्य में लिखा गया है। काव्यात्मक वर्णनों के लिए यह ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

इस प्रकार प्राकृत चरित साहित्य ने भी प्राकृत गद्य-साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

३. प्राकृत नाटक साहित्य :

प्राकृत भाषा में काव्य एवं कथा (चरित) के कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं। साहित्य की एक तीसरी विधा भी है- नाटक। नाटक जन-जीवन का प्रतिबिम्ब होता है। उसकी वेषभूषा, रहन-सहन, संस्कृति आदि नाटकों में प्रस्तुत की जाती है। अतः जनभाषा प्राकृत को भी नाटकों में उपस्थित करने के लिए प्राचीन नाटकों के पात्र प्राकृत में बातचीत करते हैं। भरतमुनि ने कई प्रकार के रूपकों (नाटकों) का उल्लेख किया है। उनमें से कई- प्रहसन, भाण, सट्टक, रासक आदि प्राकृत भाषा में रहे होंगे। किन्तु आज वे

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध नहीं हैं। उनमें से केवल मृच्छकटिकं प्रहसन आज उपलब्ध है, जिसमें सर्वाधिक प्राकृत भाषाओं का प्रयोग हुआ है। मृच्छकटिकं के गद्य सरस एवं काव्यात्मक हैं।

प्राकृत में सम्पूर्ण रूप से लिखे गये सट्टकों की परम्परा आज उपलब्ध है। 10वीं शताब्दी के राजशेखर द्वारा लिखित सट्टक कर्पूरमंजरी प्राकृत का प्रतिनिधि सट्टक है। यह नाटक का लघु संस्करण कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त 17-18वीं शताब्दी में भी प्राकृत में कई सट्टक लिखे गये हैं। इनकी विषयवस्तु प्रेमकथा है। इन सट्टकों में भी प्राकृत गद्य का अच्छा प्रयोग हुआ है।

इनके अतिरिक्त प्राचीन नाटककारों के नाटकों में भी अधिकांश पात्र प्राकृत बोलने वाले हैं। अतः बिना प्राकृत के ज्ञान के उन नाटकों को समझना कठिन है। महाकवि भास के नाटक अविमारक में विदूषक सन्ध्या का वर्णन करते हुए कहता है—

अहो णअरस्स सोहासंपदि। अत्थं आसादिदो भअवं सुय्यो दीसइ दहि-पिंडपंडरेसु पासादेसु अग्गपणालिन्देसु पसारिअगुलमहुरसंगदो विअ।

कालिदास के नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलं में शकुन्तला प्राकृत में वार्तालाप करती है। दुष्यन्त के प्रेम को वह नहीं जानती, किन्तु अपने हृदय में उसके प्रति प्रेम का अनुभव करती हुई विरह में दुखी शकुन्तला कहती है—

तुज्झ ण जाणे हिअअं मम उण कामो दिवापि रत्तिम्मि।
णिग्घिण तवइ बलीअं तुइ वुत्तमणोरहाइं अंगाइं॥

इसी तरह श्रीहर्ष, भवभूति, विशाखदत्त आदि भारत के प्राचीन नाटककारों के नाटकों में अधिकांश पात्र प्राकृत बोलते हैं। उनकी उक्तियां प्राकृत गद्य-साहित्य की महत्त्वपूर्ण निधि हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

४. प्राकृत शिलालेखी साहित्य :

प्राकृत गद्य के प्राचीन नमूने शिलालेखों में देखने को मिलते हैं। शिलालेखी प्राकृत के प्राचीनतम रूप अशोक के शिलालेखों में प्राप्त होते हैं। ये शिलालेख ई. पू. ३०० के लगभग देश के विभिन्न भागों में अशोक ने खुदवाये थे। अशोक के शिलालेख प्राकृत भाषा की दृष्टि से तो महत्त्व-पूर्ण हैं ही, साथ ही वे तत्कालीन संस्कृति के जीते-जागते प्रमाण हैं। अशोक ने अपने शिलालेखों में प्राकृत के छोटे-छोटे वाक्यों में कई जीवन-मूल्य जनता तक पहुंचाए हैं। वह कहता है—

प्राणानां साधु अनारम्भो, अपव्ययता अपभाण्डता साधु —(तृतीय शिलालेख)

(प्राणियों के लिए की गयी अहिंसा अच्छी है, थोड़ा खर्च और थोड़ा संग्रह अच्छा है।)

ईसा की लगभग चौथी शताब्दी तक प्राकृत में शिलालेख लिखे जाते रहे हैं, जिनकी संख्या लगभग दो हजार है। खारवेल का हाथीगुंफा शिला-लेख, उदयगिरि एवं खण्डगिरि के शिलालेख तथा आन्ध्र राजाओं के प्राकृत शिलालेख भाषा एवं इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। प्राकृत गद्य का सबसे छोटा और महत्त्वपूर्ण नमूना **नमो अरहंतानं नमो सवसिधानं** खारवेल के शिलालेखों में मिलता है। अतः भारतीय गद्य साहित्य के विकास के लिए भी प्राकृत के इन शिलालेखों का अध्ययन आवश्यक है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(घ) परिशिष्ट

गद्य पाठों का अनुवाद

पाठ ५ : विद्यारहित नष्ट होता है

दुर्भाग्य-प्रमुख एक ग्रामीण अत्यन्त गरीबी से दुखी था। खेती का कार्य करते हुए भी उसे कुछ नहीं मिलता था। तब उदासीन होकर वह घर से निकला और पृथ्वी पर घूमने लगा। धनोपार्जन के उसने कई उपाय किये, किन्तु कुछ भी पूरा नहीं हुआ। तब निरर्थक भ्रमण से दुखी वह फिर से घर वापिस लौट आया।

एक बार रात्रि में वह एक गांव के मंदिर में सोया हुआ था। तभी मंदिर से हाथ में एक विचित्र घड़ा लिए हुए एक आदमी निकला। वह एक स्थान पर खड़ा होकर उस विचित्र घड़े को पूजकर कहता है— 'शीघ्र ही मेरे लिए अत्यन्त, रमणीय महल सजा दो।' घड़े ने तुरन्त ही वह कर दिया। इसी प्रकार शयन, आसन, धन, धान्य, परिजन, भोग की सामग्री तैयार कर ली। इस प्रकार वह जो जो कहता घड़ा उस-उस को पूरा कर देता। जब तक उस विचित्र घड़े की प्रभा शान्त हो गयी।

उस ग्रामीण के द्वारा वह घड़ा देखा गया। उसके बाद वह सोचता है— 'मुझे अधिक घूमने से क्या लाभ ? इसकी ही सेवा करता हूँ।' उसके समीप जाकर उसने विनयपूर्वक उसकी आराधना की। वह सिद्धपुरुष पूछता है— '(तुम्हारे लिए) क्या करूं ?' ग्रामीण ने कहा— 'मैं मन्दभागी हूँ।' सिद्धपुरुष ने सोचा— 'अहो ! यह बेचारा अत्यन्त गरीबी के दुख से पीड़ित है। महापुरुष दुखियों के प्रति वत्सल होते हैं। और भी—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गाथा 1- 'अपने उपकार को चाहने वाला कौआ भी पेट भर लेता है। अतः (महापुरुषों को) सम्पत्ति पाकर सभी प्राणियों का उपकार करना चाहिए।'

'इसलिए इसका उपकार करता हूँ।' ऐसा सोचकर वह कहता है— 'क्या तुम्हें विद्या दूं अथवा विद्या से अभिमन्त्रित घड़ा?' विद्या की साधना के आचरण से डरने वाले, मंदबुद्धि एवं भोग की इच्छा करने वाले उस ग्रामीण ने कहा— 'विद्या से अभिमन्त्रित घड़ा दे दें।' उसने दे दिया। वह ग्रामीण उसे लेकर प्रसन्न एवं संतुष्ट मन से गांव चला गया। उसने विचार किया—

गाथा 2— 'उस अत्यधिक लक्ष्मी से क्या लाभ, जो अन्य देश में मिले, जिसमें मित्रों का साथ न हो और जिसे शत्रु न देखें।'

तब वह बन्धुओं और मित्रों के साथ इच्छानुसार भवन बनाकर भोगों को भोगता हुआ रहने लगा।

कुछ समय बाद वह ग्रामीण अत्यन्त संतोष से कंधे पर घड़े को रखकर- 'इसके प्रभाव से मैं बन्धुओं के बीच में आनन्द करता हूँ।' ऐसा कहकर शराब पिये हुए नाचने लगा। उसकी असावधानी से वह घड़ा टूट गया। विद्या से प्राप्त सब सम्पत्ति भी नष्ट हो गयी। बाद में दूसरों की सहायता से प्राप्त वैभव को नष्ट कर देने वाला वह ग्रामीण दुखों का अनुभव करने लगा। यदि उस समय उसने वह विद्या ग्रहण की होती तो टूटे हुए घड़े को पुनः बना लेता।

000

पाठ ६ : लोभ का अन्त नहीं

उस युग और उस समय में कौशाम्बी नामक नगरी थी। राजा जितशत्रु था। विद्या का आधार-स्तम्भ काश्यप उपाध्याय राजा के द्वारा सम्मानित था। उसको नौकरी दे दी गयी। उस काश्यप के यशा नामक पत्नी थी। उनके कपिल नामक पुत्र था।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उस कपिल के बचपने में ही काश्यप मृत्यु को प्राप्त हो गया। तब उसके मर जाने पर उसका पद राजा के द्वारा अन्य ब्राह्मण को दे दिया गया। वह घोड़े पर छत्र धारण किये हुए वहाँ से निकला। उसे देखकर यशा रोने लगी। कपिल ने (इसका कारण) पूछा। उसने कहा कि– 'तुम्हारा पिता भी इसी प्रकार की समृद्धि के साथ निकलता था। क्योंकि वह विद्या-सम्पन्न था।'

वह कपिल कहता है— 'मैं भी पढ़ूँगा।' वह कहती है— 'यहाँ पर तुम्हें ईर्ष्या के कारण कोई नहीं पढ़ायेगा। तुम श्रावस्ती चले जाओ, वहाँ तुम्हारे पिता का मित्र इन्द्रदत्त नामक उपाध्याय है। वह तुम्हें सब सिखा देगा।' कपिल श्रावस्ती चला गया और उस उपाध्याय के पास पहुँचा। उसके चरणों पर गिर पड़ा। उसने पूछा— 'तुम कहाँ से ? कपिल ने सब कुछ कह दिया। हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उसने कहा— 'हे भगवन् ! पिता के निधन हो जाने से आपके चरणों में मैं विद्या के लिए आया हूँ। इसलिए विद्या पढ़ाकर मेरे ऊपर कृपा करिए।'

पुत्र की तरह स्नेह धारण करते हुए उपाध्याय ने कहा– 'पुत्र ! विद्याग्रहण करने में तुम्हारा प्रयत्न उचित है। विद्या से रहित मनुष्य पशु के समान होता है। इस और पर लोक में विद्या ही कल्याण करने में साधनरूप है। इसलिए विद्या पढ़ो। विद्या पढ़ने के सब साधन तुम्हें प्राप्त हैं, किन्तु परिग्रहरहित होने के कारण मेरे घर में भोजन नहीं है। उसके बिना पढ़ना नहीं हो सकेगा।'

कपिल ने कहा– 'भिक्षावृत्ति से भी भोजन मिल जायेगा।' उपाध्याय ने कहा– 'भिक्षावृत्ति से पढ़ना संभव नहीं है। इसलिए आओ, तुम्हारे भोजन की व्यवस्था के लिए किसी धनी के यहाँ चलते हैं।' वे दोनों वहाँ के निवासी शालिभद्र धनी के यहाँ गये। उसे आशीर्वाद दिया। धनी ने (आने का) प्रयोजन पूछा। उपाध्याय ने कहा — 'यह मेरे मित्र का पुत्र कौशाम्बी से विद्या पढ़ने के लिए आया है। तुम्हारी भोजन की व्यवस्था में मेरे पास यह विद्या पढ़ेगा। विद्या के साधन जुटाने से तुम्हें बड़ा पुण्य होगा।' उस धनी ने सहर्ष इसे स्वीकार कर लिया। वह कपिल वहाँ भोजन करता हुआ पढ़ने लगा। एक नौकरानी उसे भोजन परोसती थी।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

एक बार वह नौकरानी दुखी दिखायी दी। कपिल ने पूछा— 'तुम किस कारण दुखी हो ?' उसने कहा— 'मेरे पास पत्ते और फूल खरीदने के लिए भी उनकी कीमत नहीं है। सखियों के बीच में मुझे नीचा देखना पड़ता है। अतः तुम मेरे लिए कुछ धन लाओ। यहाँ धन नाम का सेठ है। प्रातःकाल के पहले ही जो उसे सबसे पहले बधाई देता है, वह उसके लिए दो माशा स्वर्ण देता है। वहाँ जाकर तुम बधाई दो।'

'ठीक है' उसके ऐसा कहने पर उस नौकरानी ने सुबह होने के बहुत पहले ही उसे वहाँ भेज दिया। जाते हुए वह सिपाहियों के द्वारा पकड़ा गया और बांध लिया गया। तब प्रातःकाल में राजा प्रसेनजित के पास उसे ले जाया गया। राजा ने उससे पूछा। उसने सरलता से सब कुछ कह दिया। राजा ने कहा— 'जो तुम मांगो वह मैं देता हूँ।' कपिल ने कहा— 'सोचकर मागूँगा।' राजा के द्वारा 'ठीक है' ऐसा कहने पर वह कपिल अशोक वाटिका में सोचने लगा— 'दो माशा सोने से वस्त्राभूषण भी न होंगे। इसलिए सौ स्वर्ण मांगूँगा। किन्तु उनसे भी महल, रथ आदि न होंगे। अतः हजार स्वर्ण मांगूँगा। इनसे भी बाल-बच्चों के विवाह एवं जाति-भोजन आदि नहीं हो सकेंगे। इसलिए लाख (स्वर्ण) मांगता हूँ। यह भी मित्र, स्वजन, बन्धु लोगों के सम्मान के लिए, दीन, अनाथों के दान के लिए, विशिष्ट भोग-उपभोगों के लिए पर्याप्त नहीं है। अतः एक करोड़ अथवा हजार करोड़ मांगता हूँ।'

इस प्रकार से चिन्तन करता हुआ कपिल शुभ कर्मों के उदय से उसी क्षण ही शुभभाव को प्राप्त हो गया और वैराग्य से युक्त वह सोचने लगा— 'अहो! लोभ का फैलाव ? दो माशा स्वर्ण के कार्य से आया और लाभ प्राप्त होते देखकर करोड़ों से भी मनोरथ पूरा नहीं हो रहा है। दूसरी बात यह भी है कि विद्या पढ़ने के लिए यहाँ विदेश में आया हुआ मैं जिस किसी प्रकार से माता की अवहेलना करके, उपाध्याय के हितकारी उपदेशों को कुछ न गिनकर, कुल का अपमान करके इस लोभ से जानते हुए भी मोहित हो गया।' ऐसा सोचकर वह कपिल राजा के पास आया। राजा ने पूछा— 'क्या सोचा ?' तब उसने अपने मनोरथ को विस्तार से कह दिया।

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ ७ : असंतोष का दुष्परिणाम

एक कंडे पाथने वाली बुढ़िया थी। उसने एक व्यंतर को प्रसन्न किया। उस व्यंतर ने उसे वर दिया कि वह जितने कन्डे पाथेगी वे रत्न हो जायेंगे। वह बुढ़िया धनवान हो गयी। उसने चार मंजिल का मकान बनवा लिया।

बुढ़िया की पड़ोसिन ने पूछा-'यह सब क्या है ?' उसने सब कुछ बता दिया। तब वह पड़ोसन भी उसी व्यंतर को पूजने में लग गयी। पूजित व्यंतर पूछता है-'क्या करूँ ?' उसने कहा-'यदि प्रसन्न हो तो पड़ोसिन बुढ़िया के लिए जो वरदान दिया जाय वह मेरे लिए दुगुना हो जाय।'

व्यंतर ने कहा— 'ऐसा ही हो।'

जो जो पहली बुढ़िया मांगती वह सब पड़ोसिन बुढ़िया के लिये दुगुना हो जाता। तब उस पहली बुढ़िया ने जाना कि 'इसने मुझसे दुगुना वरदान प्राप्त कर लिया है।'

वह यह जानकर उसे न सहन करती हुई उस देवता को कहती है—'मेरा चार मंजिल का मकान नष्ट हो जाय। मेरी घास की कुटिया हो जाय।' तब दूसरी बुढ़िया के दो घास की कुटियां बन गयीं। चार मंजिल वाले मकान नष्ट हो गये।

पहली बुढ़िया फिर माँगती है—'मेरी एक आंख कानी हो जाय।' दूसरी बूढ़ी की दोनों आँखें कानी हो गयीं।

फिर वह पहली बूढ़ी मांगती है—'मेरा एक हाथ हो जाय।' पड़ोसिन के दोनों हाथ नष्ट हो गये। फिर वह सोचती है—'मेरा एक पैर हो जाय।' पड़ोसिन बुढ़िया के दोनों पैर नष्ट हो गये। वह गिर पड़ी।

गाथा—'थोड़ी लक्ष्मी से संतोष कर लो, किन्तु अधिक लक्ष्मी की चाह मत करो। अधिक समृद्धि को चाहती हुई बुढ़िया (पड़ोसिन) ने अपने को नष्ट कर लिया।

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ ८ : मेरुप्रभ हाथी की अनुकंपा

तब तुम हे मेघ ! पूर्व जन्म में चार दांतों वाले मेरुप्रभ नाम के हाथी हुए। एक बार उस जंगल की आग को देखकर तुम्हें यह इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ- 'मेरे लिये यह श्रेयष्कर है कि इस समय गंगा महानदी के दक्षिणी तट पर विन्ध्याचल की तलहटी में जंगल की अग्नि से रक्षा करने के लिए अपने झुंड के साथ एक बड़ा मंडल (रक्षा का बड़ा मैदान) बनाऊँ।' ऐसा (विचार) करके इस प्रकार निरीक्षण करते हो। निरीक्षण करके सुखपूर्वक विचरण करते हो।

किसी अन्य समय क्रमशः पांच ऋतुएं व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्मकाल के अवसर पर जेठ के महिने में पेड़ों की रगड़ से उत्पन्न अग्नि के फैल जाने पर मृग, पशु, पक्षी तथा सरकने वाले प्राणियों के विभिन्न दिशाओं पर दौड़ने पर उन बहुत से हाथियों के साथ (तुम भी) जिस ओर वह मंडल था उसी ओर जाने के लिए दौड़े।

उस मण्डल में अन्य बहुत से सिंह, बाघ, भेड़िया, चीते, रीछ, तरच्छ (?) पाराशर, शरभ, शृगाल, बिडाल, कुत्ते, कोल (सुअर), खरगोश, लोमड़ी, चित्र और चिल्लल आदि अग्नि के भय से घबराकर पहले ही आ घुसे थे और एक साथ बिलधर्म के अनुसार (कम स्थान पर अधिक प्राणी ठहराने की तरह) ठहरे थे।

तब हे मेघ ! तुम भी जहाँ वह मंडल था, वहाँ आये और आकर उन बहुत से सिंहों से लेकर चिल्ललों आदि के साथ एक जगह बिलधर्म से ठहर गये।

तब तुमने- 'पैर से शरीर खुजाऊँगा' ऐसा सोचकर एक पैर ऊपर उठाया, इसी समय उस खाली हुई जगह में अन्य बलवान प्राणियों द्वारा धकियाया हुआ एक खरगोश प्रविष्ट हो गया। तुमने शरीर खुजाकर फिर से पैर को नीचे रखूँगा' ऐसा सोचकर नीचे घुसे हुए उस खरगोश को देखा। यह देखकर (दो इन्द्री आदि वाले) प्राणियों की अनुकंपा से, (वनस्पति आदि) भूतों की अनुकंपा से, (स्थावर) सत्त्वों की अनुकंपा से तुमने वह पैर अधर में ही उठाये रखा, उसे नीचे नहीं रखा। (अन्यथा वह खरगोश मर जाता)।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तब तुमने उस प्राणियों की अनुकंपा और सत्त्वों आदि की अनुकंपा से संसार बन्धन को कम किया और मनुष्य-आयु का बन्ध किया। तब वह जंगल की अग्नि अढ़ाई दिन-रात तक उस वन को जलाती रही। जलाकर (वह दावानल) पूरी हो गयी, उपरत हो गयी, उपशान्त हो गयी और बुझ गयी।

तब वे बहुत से सिंह, चिल्लाल आदि प्राणी उस वन की अग्नि को पूरा हुआ, बुझा हुआ देखते हैं। देखकर अग्नि के भय से मुक्त हुए। भूख और प्यास से पीड़ित, दुखी वे पशु उस मंडल से निकल जाते हैं। निकलकर सब ओर जाकर फैल गये।

तब तुम हे मेघ! जीर्ण, जरा से जर्जरित शरीर वाले, शिथिल एवं सिकुड़ने वाली चमड़ी से व्याप्त शरीर वाले, दुर्बल, थके हुए, भूखे-प्यासे, आधार रहित निर्बल, सामर्थ्यरहित, चलने-फिरने में असमर्थ ठूँठ की भांति हो गये। 'मैं वेग से चलूँगा' ऐसा सोचकर ज्योंहि तुमने पैर पसारा कि बिजली से आघात पाये हुए रजत-गिरि के शिखर के समान सभी अंगों से तुम धरती पर धड़ाम से गिर पड़े।

तब तुम्हारे शरीर में वेदना उत्पन्न हुई। तीन दिन-रात तक उस वेदना को भोगते हुए रहे। तब एक सौ वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर इसी जंबूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में राजगृह नगर में श्रेणिक राजा की धारिणी नामक रानी की कूँख में कुमार के रूप में प्रविष्ट हुए।

000

पाठ ६ : नंद मणिकार की जन-सेवा

पुष्करिणी

तत्पश्चात् नंद श्रेणिक राजा से आज्ञा प्राप्त करके प्रसन्न और संतुष्ट होता हुआ राजगृह नगर के बीचोंबीच से निकला। निकलकर वास्तुशास्त्र के पाठकों द्वारा पसंद किये गये भूमिभाग में नन्दा पुष्करिणी (बावड़ी) खुदवाने में प्रवृत्त हो गया।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तब वह नन्दा पुष्करिणी क्रम से खुदती-खुदती चार कौनों वाली एवं समान किनारों वाली हो गयी । अनुक्रम से वह वापी शीतल जल वाली हुई । वह पत्तों, बिषतंतुओं और मृणालों से आच्छादित हुई । वह अनेक उत्पल (कमल) पद्म, कुमुद, नलिनी सुन्दर, सुगंधित पुंडरीक, महापुण्डरीक, शतपत्त एवं सहस्रपत्र वाले फूलों, कमलों की केशर से युक्त हुई । वह परिहत्थ, जलजन्तु, भ्रमणशील और मदोन्मत्त भ्रमरों और अनेक पक्षियों के जोड़ों द्वारा किये गये शब्दों से उत्पन्न मधुर स्वरवाली जानी जाने लगी । वह वापी सबको प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, सुन्दर रूपवाली और अनुपम रूपवाली थी ।

वनखंड

उसके बाद उस नंद मणिकार सेठ ने नन्दा पुष्करिणी की चारों दिशाओं में चार वनखण्ड (बगीचे) बनवाये (लगवाये), उन वनखण्डों की क्रमशः अच्छी रखवाली की गयी, सार-संभाल की गयी, अच्छी तरह उन्हें बढ़ाया गया । तब वे वनखण्ड हरे तथा सघन हो गये । वे पत्तों, पुष्पों, फलों से युक्त होकर हरे-भरे होते हुए अपनी शोभा से अत्यन्त शोभनीय रूप में स्थित हो गये ।

चित्र–सभा

तब नंद मणिकार सेठ ने पूर्व दिशा के बगीचे में एक विशाल चित्रसभा बनवायी । वह कई सौ खंभों पर स्थित, प्रसन्नताजनक, दर्शनीय, सुन्दर एवं अनुपम थी । उस चित्रसभा में बहुत से काले, नीले, लाल,पीले और सफेद रंग वाले काष्ठकर्म (लकड़ी की कला), वस्त्रकर्म (कपड़े पर चित्रकारी), चित्रकर्म तथा लेप्यकर्म (मिट्टी की कलाकृतियां) किये गये थे । धागे से गूंथी हुई, फूलों से लपेटी हुई, भरकर बनायी हुई. तथा जोड़-जोड़ कर बनाई हुई कई कलाकृतियों से दर्शनीय वह चित्रसभा दर्शकों को दिखाने लिए स्थित थी ।

उस चित्रसभा में बहुत से आसन और शयन हमेशा सत्कार के लिए बिछे रहते थे । वहाँ पर बहुत से नाटक करने वाले, नर्तक, स्तुतिगायक, मल्ल, मुष्टि लड़ाने वाले, विदूषक, कथावाचक, तैराक, रास रचने वाले, ज्योतिषी, नट, चित्रपट दिखाने वाले, संगीतज्ञ, तूंबा और वीणा बजाने वाले लोग जीविका, भोजन, वेतन आदि

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

देकर रखे गये थे, जो वहाँ तालाचर (मनोरंजन) कार्य करते हुए रहते थे। राजगृह से निकलने वाले बहुत से लोग वहाँ पर पहले से बिछे हुए आसनों पर, शयनों पर बैठकर या लेटकर संतुष्ट होते हुए कथा सुनते हुए, नाटक देखते हुए और वहाँ की शोभा देखते हुए सुखपूर्वक विचरण करते थे।

भोजनशाला

तब नंद मणिकार सेठ ने बगीचे के दक्षिणखण्ड में एक बड़ी महानसशाला (भोजनशाला) बनवाई। वह अनेक सैकड़ों खंभोंवाली, प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, सुन्दर एवं अनुपम थी। वहाँ पर बहुत से लोग जीविका, भोजन, वेतनभोगी थे, जो विपुल भोजन, पान, खाने योग्य, स्वाद लेने योग्य पदार्थों को बनाते थे। वे बहुत से श्रमण, ब्राह्मण. अतिथि, दरिद्रों. और भिखारियों को भोजन कराते हुए वहाँ रहते थे।

चिकित्साशाला

तब नंद मणिकार सेठ ने पश्चिम दिशा के बगीचे में एक विशाल चिकित्सा-शाला (अस्पताल) बनवायी। वह अनेक खंभोंवाली सुन्दर थी। वहाँ पर अनेक वैद्य, वैद्यपुत्र, ज्ञायक (वैद्यगिरि के जानकार), ज्ञायकपुत्र, कुशल (चिकित्सा में विशेषज्ञ), कुशलपुत्र आजीविका, भोजन और वेतन पर नियुक्त थे। वे बहुत से व्याधित, (मानसिक रोगी) ग्लानों, रोगियों और दुर्बलों की चिकित्सा करते रहते थे। वहाँ पर दूसरे भी बहुत से लोग आजीविका, भोजन और वेतन देकर नियुक्त किये गये थे, जो उन रोगियों की औषधि, भेषज (मिश्रण), भोजन और पानी देकर सेवा, परिचर्या करते हुए रहते थे।

अलंकार–सभा

उसके बाद उस नंद मणिकार सेठ ने बगीचे की उत्तर दिशा में एक विशाल अलंकार-सभा (सेवा-केन्द्र) बनवायी। वह भी अनेक सैकड़ों खंभो से सुन्दर थी। उसमें

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुत से अलंकारिक व्यक्ति (शरीर की सेवा और शृंगार करने वाले नाई आदि) जीविका, भोजन और वेतन देकर रखे गये। वे बहुत से श्रमणों, अनाथों, अशक्तों, रोगियों और दुर्बलों का अलंकार-कर्म (शारीरिक सेवा) करते हुए रहते थे।

तब नंदा पुष्करिणी में बहुत से सनाथ, अनाथ, पंथिक, राहगीर, काँवर ढोने वाले, मजदूर, घसियारे, पत्तों के भार वाले, लकड़हारे आदि आते थे। उनमें से कोई स्नान करते, कोई पानी पीते, कोई पानी भर ले जाते और कोई-कोई पसीने, मैल, आदि को मिटाकर परिश्रम, निद्रा, भूख और प्यास को वहाँ मिटाकर सुखपूर्वक रहते थे।

राजगृह नगरी से घूमने के लिए निकले हुए भी बहुत से लोग उस पुष्करिणी में क्या करते थे ? वे लोग जल में रमण करते थे, विविध प्रकार से स्नान करते थे, कदलीगृहों, लतागृहों, फूलों की विछावनों पर आनन्द करते थे। और अनेक पक्षिओं के समूह के मनोहर शब्दों से युक्त उस पुष्करिणी आदि में क्रीड़ा करते हुए विचरण करते थे।

नंद की प्रशंसा

तब उस नंदा पुष्करिणी में स्नान करते हुए, पानी पीते हुए और पानी भरकर ले जाते हुए बहुत से लोग आपस में इस प्रकार कहते थे—'देवानुप्रिय! नंद मणिकार सेठ धन्य है, कृतार्थ है, उसका जन्म और जीवन सफल है, जिसकी इस प्रकार की नंदा पुष्करिणी आदि है। जहाँ बहुत से लोग आसनों पर, शयनों पर बैठते हुए, संतुष्ट होते हुए, वार्ता करते हुए सुखपूर्वक घूमते हैं। अतः नंद मणिकार का जन्म सुलब्ध है और जीवन सफल है

तब वह नंद मणिकार बहुत लोगों से यह प्रशंसा आदि सुनकर प्रसन्न और संतुष्ट हुआ। मेघ की धारा से आहत कदंब वृक्ष के समान उसके रोमकूप विकसित हो गये। वह सातायुक्त परमसुख का अनुभव करता हुआ रहने लगा।

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ १० : कृष्ण के द्वारा वृद्ध की सेवा

तब कृष्ण वासुदेव ने दूसरे दिन रात्रि के प्रातःकाल तक पहुंचने पर, फूले हुए उत्पल और कमलों के कोमल पत्ते विकसित होने वाले तथा सफेदी लिए हुए प्रभात में, लाल अशोक के प्रकाश, पलाश के पुष्प, सुग्गे के मुख, चिरमु के आधे लाल मुख, बन्धुजीवक पुष्प, कबूतर के पैर और नेत्र, कोयल के लाल नेत्र, जसोदा के फूल, जलती हुई अग्नि, स्वर्ण-कलश, हिंगलू के समूह की तरह लालिमा से अधिक लाल रूप वाली शोभा से उन्हें तिरस्कृत करते हुए अनुक्रम से सूर्य के उदित होने पर, उस सूर्य की किरणों के अवतरित होने से अंधकार के समाप्त हो जाने पर, बाल सूर्यरूपी कुंकम के द्वारा समस्त जीवलोक को व्याप्त कर लिये जाने पर, लोचनों के विषय के प्रसार से लोक दिखायी दिये जाने पर, सरोवरों के कमलवनों को विकसित करने वाले सूर्य के उदित होने पर, हजार किरणों वाले उस सूर्य के तेज के फैल जाने पर स्नान किया। विभूषित होने पर वे कृष्ण हाथी के कंधे पर बैठे। कोरंटपुष्पों की माला के छत्र को धारण करते हुए, श्वेत चामरों के ढोले जाते हुए, अनेक भटों, सेवकों, पथिकों से युक्त वे कृष्ण द्वारवाती नगरी के बीचोंबीच से, जहाँ अरिहंत अरिट्ठनेमि थे, वहाँ जाने के लिए निकले।

तब द्वारावती नगरी के बीचोंबीच से निकलते हुए वे कृष्ण वासुदेव एक वृद्ध, जरा से जर्जरित देह वाले, क्लान्त, कुम्हलाये हुए, थके हुए, दुर्बल एवं दुखी पुरुष को देखते हैं। वह पुरुष राजमार्ग के बाहर से बड़े राशि वाले ईंटों के ढेर में से एक-एक ईंट लेकर भीतर घर में पहुँचा रहा था।

तब उन कृष्ण वासुदेव ने उस पुरुष पर हुई अनुकंपा से हाथी के कंधे पर बैठे हुए ही एक ईंट को उठाया और उठाकर बाहर के राज-पथ से उसके भीतर घर में पहुँचा दी।

तब कृष्ण वासुदेव के द्वारा एक ईंट उठाने से उनका अनुगमन करते हुए अनेक व्यक्तियों ने उस ईंटों की बड़ी राशि को उठाकर बाहर के राजपथ से (उस बूढ़े के) घर के भीतर पहुँचा दिया।

तब वे कृष्ण वासुदेव द्वारावती नगरी के मध्य भाग से बाहर निकल गये।

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ ११ : कलह विनाश का कारण

(किसी एक) जंगल के बीच में मेघ के समान सुशोभित, वनखंड से मंडित अथाह जल से भरा हुआ एक तालाब था। वहाँ बहुत से जलचर (जल के प्राणी), नभचर (आकाश में उड़ने वाले) और थलचर (पशु, जानवर आदि) प्राणी रहते थे। वहाँ पर हाथियों का एक बड़ा झुण्ड भी रहता था। एक बार ग्रीष्मकाल में वह हाथियों का झुंड पानी पीकर और स्नान करके दोपहर के समय में वृक्ष की शीतल छाया में सुखपूर्वक सो रहा था।

और वहाँ समीप में ही दो गिरगिट लड़ने लग गये। उनको देखकर वनदेवता ने सबकी सभा में यह घोषणा की—

गाथा 1.— 'हे हाथियो, जल में रहने वाले प्राणी, त्रस और स्थावर जीवो, सुनो—जहाँ गिरगिट लड़ते हैं, वहाँ नाश हो जाता है।'

देवता ने कहा—'इन लड़ते हुए गिरगिटों की उपेक्षा मत करो। इनको रोको।' (यह सुनकर) उन जलचर, थलचर आदि प्राणियों ने सोचा—'ये लड़ते हुए गिरगिट हमारा क्या बिगाड़ेंगे ?'

तभी वहाँ लड़ता हुआ एक गिरगिट पीड़ित होकर भागा और पीछा किया जाता हुआ वह सुखपूर्वक सोये हुए हाथी के नथुने में 'यह बिल है' ऐसा समझकर घुस गया। दूसरा गिरगिट भी वहीं घुस गया। वे वहीं हाथी के सिर कपाल में लड़ने लगे।

इससे व्याकुल हुए और न सहन करने योग्य अधिक पीड़ा से युक्त उस हाथी ने उस वनखंड को ही नष्ट कर दिया। इससे वहाँ पर रहने वाले बहुत से प्राणी मारे गये। और जल का आलोडन करने से जलचर पीड़ित हुए। तालाब की पाल तोड़ दी गयी। तालाब नष्ट हो गया। इससे सभी जलचर मर गये।

ooo

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ १२ : धूर्त और गाड़ीवान

एक मनुष्य ककड़ियों से भरी हुई अपनी गाड़ी के द्वारा नगर में प्रवेश करता है। प्रवेश करते हुए उसे एक धूर्त कहता है—'जो व्यक्ति तुम्हारी ककड़ियों की गाड़ी को खा ले तो तुम उसे क्या दोगे ?' तब उस गाड़ीवान ने उस धूर्त को कहा—'उस व्यक्ति को मैं वह लड्डू दूँगा, जो नगर के दरवाजे से भी न निकले।'

धूर्त ने कहा—'तब इस ककड़ी की गाड़ी को मैं खा लेता हूँ। तुम फिर वह लड्डू दोगे जो नगर के दरवाजे से न निकले।' गाड़ीवान के यह स्वीकार लेने पर बाद में धूर्त ने गवाह भी कर लिये। फिर गाड़ी पर बैठकर वह उन ककड़ियों के एक एक टुकड़े को तोड़कर फेंक देता है। बाद में उस गाड़ीवान से लड्डू मांगने लगता है।

तब गाड़ीवान ने कहा—'तुमने इन ककड़ियों को नहीं खाया है।' धूर्त कहता है—'यदि नहीं खाया है तो तुम इन ककड़ियों को बेच लो।' बेचने पर कुछ लोग वहाँ आ गये। वे टूटी हुई ककड़ियों को देखते हैं। तब कुछ लोग कहते हैं—'इन खायी हुई ककड़ियों को कौन खरीदेगा ?'

उस कारण से तब फैसला किया गया—'ककड़ियां खायी गयी हैं' ऐसा मानकर गाड़ीवान शर्त हार गया। तब धूर्त के द्वारा फिर लड्डू मांगा गया। गाड़ीवान को नहीं छोड़ा गया। तब गाड़ीवान ने बुद्धिमानों की सेवा की। उन्होंने संतुष्ट होकर सब पूछा। गाड़ीवान ने उनसे सब कुछ यथावत् कह दिया। ऐसा कहने पर उन्होंने उसे एक उपाय सिखा दिया कि—'तुम एक छोटे लड्डू को नगर के दरवाजे पर रखकर कहो—'देखो यह लड्डू नगर के दरवाजे से स्वयं नहीं निकलता है। अतः इसे ले लो।' ऐसा करने पर तब वह धूर्त हार गया।

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ १३ : कृतघ्न कौए

आज से अतीत काल में बारह वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ा। उसमें कौए झुण्ड बनाकर आपस में बात करते हैं—'हम लोगों के द्वारा अब क्या किया जाना चाहिये ? बड़ी भुखमरी उपस्थित हुई है। जनपदों में कौओं के लिये कोई भोजन नहीं है। दूसरे, उस तरह का कुछ अन्य छोड़ा हुआ खाद्य पदार्थ भी प्राप्त नहीं होता है। तो कहाँ चलें ?'

तब बूढ़े कौओं के द्वारा कहा गया कि—'हम लोग समुद्रतट पर चलें। वहाँ कार्पिजल हमारे भनेज होते हैं। वे हमें समुद्र से भोजन लाकर देंगे। इस के अतिरिक्त जीवन का उपाय नहीं है।' ऐसा विचारकर वे सब समुद्रतट पर गये। वहाँ कार्पजल प्रसन्न हुए। स्वागत, अतिथ-सत्कार द्वारा कौओं का सम्मान किया गया। उनकी पाहुनी भी की गयी। इस प्रकार से वहाँ कार्पजल उनको भोजन देने लगे। कौए वहाँ पर सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करने हैं।

उसके बाद बारह वर्ष का दुर्भिक्ष समाप्त हो गया। जनपदों में सुभिक्ष हो गया। तब उन कौओं ने कौओं के मुखिया को 'जनपद को देखकर आओ' ऐसा कह-कर वहाँ भेजा। 'यदि सुकाल होगा तो हम लोग जायेंगे।'

तब वह मुखिया शीघ्र ही पता करके आ गया और कौओं को कहता है कि—'जनपदों में कौओं के भोजन-पिण्ड दान दिये हुए पड़े हैं। उठो, चलते हैं।' तब वे कहते हैं—'जब हमसे अभी जाने को नहीं कहा गया है तब क्यों जाना चाहिए ?' यह जानकर कार्पजल को बुलाकर इस प्रकार कहते हैं—'भनेज ! हम जाते हैं।'

तब उन्होंने कहा—'क्यों जा रहे हैं।' तब वे कहते हैं—'सूर्य के निकलने के पहले ही प्रतिदिन तुम्हारे अहोभाग्य को देखना सम्भव नहीं है।' ऐसा कहकर वे चले गये।

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ १४ : शिल्पी कोक्कास

इसके बाद वह कोक्कास पड़ौस में रहने वाले शास्त्र पढ़े हुए शिल्पी बढ़ई के घर जाकर दिन व्यतीत करता। उस शिल्पी के पुत्र नाना प्रकार के काष्ठकर्म सीखते थे। किन्तु उस शिल्पी पिता के द्वारा सिखाये जाने पर भी (शिक्षा) ग्रहण नहीं करते थे। तब उस कोक्कास के द्वारा उन्हें कहा जाता–'ऐसा करो तो ऐसा होगा' यह सुनकर तब उस आचार्य ने विस्मित हृदय से कहा —'पुत्र ! तुम उपदेश सीखो। मैं तुम्हें सिखाऊँगा।' तब कोक्कास ने कहा—'स्वामी ! जैसी आपकी आज्ञा।' ऐसा कहकर तब से वह सीखने में लग गया। आचार्य के सिखाने के गुण से सब प्रकार का काष्ठ-कर्म वह सीख गया। गुरु की आज्ञा से निपुण वह कोक्कास जहाज पर चढ़कर ताम्र-लिप्ति वापिस आ गया।

वहाँ शान्ति से समय व्यतीत हो रहा था। तब उसने अपनी जीविका के उपाय के लिए राजा को पता कराने के लिए एक कपोत विमान का जोड़ा बनाया। वे कपोत प्रतिदिन जाकर छत पर सूख रहे राजा के धान को लेकर आ जाते। तब रक्षकों ने धान को चोरी जाते हुए देखकर शत्रु का दमन करने के लिए राजा को निवेदन किया। राजा ने मन्त्री को बुलाकर कहा—'पता लगाओ'।

तब उन नीतिकुशलों ने आकर राजा को निवेदित किया कि—'देव ! कोक्कास के घर का यन्त्र कपोतों का जोड़ा आकर (धान्य) ले जाता है। राजा ने आदेश दिया—'उसको पकड़कर लाओ'। ऐसा कहने पर वह कोक्कास लाया गया और उससे पूछा गया। उसने सब कुछ पूरी तरह राजा को कह दिया।

तब संतुष्ट राजा के द्वारा कोक्कास का सम्मान किया गया और उसे कहा गया—'आकाश में जाने के लिए यन्त्र तैयार करो। उस विमान के द्वारा हम दोनों जनें इच्छित स्थान को जाकर वापिस आते हैं। तब कोक्कास ने राजा की आज्ञा के साथ ही यन्त्र तैयार कर दिया। राजा और वह उस पर चढ़े तथा इच्छित स्थान को जाकर वापिस आ गये। इस प्रकार से समय व्यतीत होता रहा।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उस बात को देखकर पटरानी ने राजा को निवेदन किया—'मैं भी आपके साथ आकाशमार्ग से देशान्तर में जाना चाहती हूँ।' तब राजा ने कोक्कास को बुलाकर कहा—'महादेवी भी हमारे साथ चलें।' ऐसा कहने पर कोक्कास ने कहा–'हे स्वामी ! उस पर तीसरे का चढ़ना उचित नहीं है। दो ही जनों को यह विमान ले जा सकता है।'

तब वह रानी आग्रह करके रोकी जाती हुई भी अपनी जिद करती है। अज्ञानी राजा भी उसके साथ जहाज पर चढ़ गया। तब कोक्कास ने कहा–'हमें पछताना पड़ेगा। दुर्घटना अवश्य होगी।' ऐसा कहकर विमान पर चढ़ते हुए उसने तन्त्री को खींच दिया, आकश को ले जाने वाली यन्त्र की कील पर चोट की तो वह विमान आकाश में उड़ चला। बहुत योजन दूर चले जाने पर अतिरिक्त भार के भर जाने पर तन्त्री टूट गयी, यन्त्र नष्ट हो गया, कील गिर गयी और धीरे से वह विमान जमीन पर स्थित हो गया। वह कोक्कास और रानी सहित राजा पहले बात न सुनने से पश्चाताप से दुखी होने लगे।

000

पाठ १५ : अग्निशर्मा का अपमान

यहाँ पर ही जम्बूद्वीप द्वीप में, अपरविदेह देश में ऊँचे, सफेद परकोटे से सुशोभित, कमलिनियों के वन से ढकी हुई खाई से युक्त, तिराहे, चौराहे एवं चौकों से अच्छी तरह विभक्त, भवनों से इन्द्र के भवन की शोभा को जीतने वाला क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर था।

गाथा– 1. जिस देश की कामिनियां अपने मुखों से कमलों को, वाणी से कोयल को, नेत्रों से नीलकमलों को और अपनी गति से राजहंसों को जीतती हैं।

2. जहाँ पर पुरुषों को विद्याओं में व्यसन था, निर्मल यश में लोभ था, सदा पापों में भीरुता थी तथा धर्म के कार्यों में संग्रह-बुद्धि थी।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

3. वहाँ पर अधीनस्थ राजमंडलों से परिपूर्ण, मदरूपी कलंक से रहित, जनता के मन और नयनों को आनन्द देने वाला पूर्णचन्द्र नाम का राजा था, (जो वास्तव में पूर्णिमा के चन्द्र की तरह था) ।

4. उस राजा के अन्तःपुर में प्रधान कुमुदिनी नामक रानी थी । उसके साथ विषयसुखों की वृद्धि होती रहती थी । वह कामदेव के लिए रति की तरह राजा को प्रिय थी ।

5. उनके गुण-समूहों से युक्त गुणसेण नामक पुत्र था, जो बालकपन में ही व्यंतर देव की तरह मात्र क्रीड़ाप्रिय था ।

और उसी नगर में सब लोगों के द्वारा अत्यन्त सम्मानित, धर्मशास्त्र के समूह का पाठक, लोक-व्यवहार में नीतिकुशल, अल्प हिंसा और अल्प परिग्रह वाला, यज्ञदत्त नामक उपाध्याय था । उसकी पत्नी सोमदेवा के गर्भ से उत्पन्न, बड़ा और तिकौने सिर वाला, पीली और गोल आंखों वाला, स्थान मात्र से मालूम पड़ने वाली चपटी नाक वाला, छेद मात्र से युक्त कानों वाला, ओठों से बाहर निकले हुए बड़े दांतों वाला, टेढ़ी और मोटी गर्दन वाला, असमान और छोटी-छोटी बांहों वाला, अत्यन्त छोटे वक्षस्थल वाला, ऊँचा-नीचा और लम्बे पेट वाला, एक ओर को उठी हुई बेडौल कमर वाला, असमान रूप से स्थित जंघाओं वाला, मोटी, कड़ी और छोटी पिंडलियों वाला, असमान और चौड़े पैरों वाला तथा आग की लपटों की तरह पीले बालों वाला अग्निशर्मा नाम का पुत्र था ।

उस (अग्नि शर्मा नामक) पुत्र को कौतुहलवश कुमार गुणसेन नागाड़े, पटह, मृदंग, बांसुरी, मंजीरों आदि एवं बड़े तूर की आवाज से, नगर के बीच में, हाथों से तालियां बजाता हुआ, हंसता हुआ नचाता था । गधे पर चढ़ाकर, हंसते हुए बहुत से बालकों से घिरे हुए, छत्र के रूप में फटे सूप को धारण कराये हुए, मनोहर पर बेसुरे ताल से डोंडी पिटवाता हुआ, महाराज शब्दों से सम्बोधित करता हुआ बहुत बार राजमार्ग में जल्दी-जल्दी उस अग्निशर्मा को घुमाता था ।

इस प्रकार प्रतिदिन यमराज की तरह उस गुणसेन के द्वारा अपमानित किये जाते हुए उस अग्निशर्मा के (मन में) वैराग्यभावना उत्पन्न हो गयी । वह सोचने लगा—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गाथा– 6. 'पूर्व जन्म में पुण्यकर्म न करने वाले बहुत से लोगों के धिक्कार से पीड़ित और सब लोगों के उपहासयोग्य पुरुष दूसरों के अपमान को सहते हैं।

7. पूर्वजन्म में मुझ मूढहृदय अधन्य के द्वारा, जो सज्जन पुरुषों के द्वारा आचरित अत्यन्त सुख देने वाला धर्म का आचरण नहीं किया गया है।

8. सो अब पुण्य न करने वालों के इस तीव्र फलविपाक को देखकर मैं परलोक में बन्धु के समान एवं मुनियों के द्वारा सेवित इस धर्म को करूँगा।

9. जिससे अगले जन्म में भी दुर्जन लोगों से समस्त लोगों के द्वारा उपहास किये जानी वाली इस प्रकार की विडम्बना को पुनः प्राप्त न करूँ।'

इस प्रकार सोचकर वैराग्य को प्राप्त वह अग्निशर्मा नगर से निकला और एक महीने में उस प्रदेश की सीमा पर स्थित 'सुपरितोष' नामक तपोवन को पहुँच गया। फिर वह तपोवन में प्रविष्ट हुआ। उसने तापसकुल के प्रधान 'आर्जव कौडन्य' को देखा। देखकर उसने उनको प्रणाम किया। ऋषि ने उससे पूछा—'आप कहाँ से आये हैं?' तब अग्निशर्मा ने विस्तार से अपना सब वृतान्त उन्हें कह दिया। तब ऋषि ने कहा—'हे वत्स! पूर्व-जन्मों में किये गये कर्मों के परिणाम के वश से जीव इस प्रकार दूसरों के द्वारा दुख पाने के भागी होते हैं। अतः राज-अपमान से पीड़ितों के लिए, दरिद्रता के दुख से दुखी लोगों के लिए, दुर्भाग्य के कलंक से उदास लोगों के लिए और इष्टजनों के वियोग की अग्नि में जले हुए लोगों के लिए यह आश्रम इस लोक और परलोक में सुख देने वाला तथा परम शान्ति का स्थान है। यहाँ पर–

गाथा– 10. वनवासी सर्वथा धन्य हैं, जो आसक्तिजनित दुख, लोगों के द्वारा किये गये अपमान और दुर्गति में गमन को नहीं देखते हैं।'

इस प्रकार से उपदेश पाये हुए अग्निशर्मा ने कहा—'भगवन्! ऐसी ही बात है, इसमें कोई संदेह नहीं है। अतः यदि आपकी मेरे ऊपर अनुकम्पा है और इस व्रत विशेष के लिए मैं उचित हूँ तो मुझे यह व्रत प्रदान करके अनुग्रहीत करें।' ऋषि ने कहा— हे वत्स! तुम वैराग्यपथ के अनुगामी हो अतः मुझे तुम्हारा अनुरोध स्वी-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कार है। तुम्हारे सिवाय दूसरा कौन इस व्रत के लिए योग्य है।' ऐसा कहकर तब कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर अपने नियम और आचार विस्तार से समझाकर प्रशस्त तिथि, करण, मुहूर्त एवं लगन में उस अग्निशर्मा को तापसदीक्षा दे दी गयी।

महान् तिरस्कार से उत्पन्न अतिशय वैराग्य भावना के कारण उस अग्निशर्मा ने उसी दीक्षा के दिन में ही समस्त तापस लोगों से घिरे हुए गुरु के समक्ष एक महाप्रतिज्ञा की कि—'मैं जीवन-पर्यन्त एक माह के अन्तर से ही भोजन करूँगा। और पारणा के दिन सर्वप्रथम प्रविष्ट पहले घर से ही लौट आऊँगा। भिक्षा प्राप्त हो अथवा नहीं, दूसरे घर में नहीं जाऊँगा।' और इस प्रकार प्रतिज्ञा लेने वाले तथा उसका उसी प्रकार से पालन करने वाले उस अग्निशर्मा के बहुत से दिन व्यतीत हो गये।

000

पाठ १६ : गुणसेन के प्रति निदान

और इधर पूर्णचन्द्र राजा कुमार का विवाह करके उसे राज्य सिंहासन पर बैठाकर कुमुदिनी रानी के साथ तपोवन में रहने चला गया। अनेक सामन्तों के के द्वारा चरणयुगलों को नमन किये जाने वाला, अनेक राजाओं को जीतकर अपने राज्य में मिलाने वाला, दशों दिशाओं में प्रसिद्ध निर्मल यश वाला, धर्म, अर्थ एवं काम इन पुरुषार्थों का सम्पादन करने वाला वह कुमार गुणसेन महाराजा हो गया।

एक बार वह राजा गुणसेन भक्ति और कौतुक से उस तपोवन को गया। उसने वहाँ बहुत से तपस्वियों एवं कुलपति को देखा। और उसने पद्मासन में बैठे हुए, नयन-युगल को स्थिर किये हुए, विचित्र मन के व्यापारों को शान्त किये हुए, उस प्रकार से कुछ-कुछ ध्यान करते हुए अग्निशर्मा तापस को भी देखा। तब राजा ने कहा—हे भगवन्! आपकी इस महाकठिन तपश्चर्या के प्रयत्न का कारण क्या है?' अग्निशर्मा तापस ने कहा—'हे महाप्राणी! दरिद्रता का दुख, दूसरों से प्राप्त अपमान, कुरूपता और महाराज-पुत्र तथा मेरा कल्याणमित्र गुणसेन (इसका कारण है)'

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तब राजा ने बचपन के वृतान्त को यादकर लज्जा से झुकाये हुए मुख से कहा -'भगवन् ! मैं वह महापाप कर्म करने वाला और आपके हृदय को संताप देने वाला अगुणसेन हूँ।' अग्निशर्मा तपास ने कहा—'हे महाराज ! आपका स्वागत है। आप अगुणसेन कैसे हुए ? क्योंकि आपके द्वारा ही दूसरों के भोजन पर पलने वाले मैंने अब इस प्रकार की तप-विभूति प्राप्त की है।' राजा ने कहा—'अहो ! आपकी महानता, अथवा क्या तपस्वीजन प्रिय वचनों को छोड़कर अन्य बोलना जानते हैं? चन्द्रबिम्ब से अग्नि की वर्षा नहीं होती है। अतः अब इसको रहने दें। हे भगवन् ! आपकी पारणा (भोजन) कब होगी ?'

अग्निशर्मा ने कहा—'महाराज ! पांच दिनों के बाद।' राजा ने कहा-'भगवन्। यदि आपको कोई अधिक आपत्ति न हो तो मेरे घर पर भोजन के द्वारा कृपा की जानी चाहिए। मैंने कुलपति के पास से आपकी विशेष प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में जान लिया है। अतः पहले से ही प्रार्थना कर रहा हूँ।' अग्निशर्मा ने कहा—'महाराज तब तक वह दिन आने दीजिए। कौन जानता है कि बीच में क्या होगा ?' राजा ने कहा—'भगवन् ! विघ्न को छोड़कर आप अवश्य आयें।' अग्निशर्मा ने कहा—'यदि आपका ऐसा आग्रह है तो आपकी प्रार्थना स्वीकार की जाती है।' तब प्रसन्नता से पुलकित अंग वाला राजा उन्हें प्रणाम कर कुछ समय वहाँ व्यतीत कर नगर को चला गया।

पांच दिन व्यतीत होने पर पारणा के दिन अग्निशर्मा तापस पारणा के लिए सर्व प्रथम राजा के महल में ही प्रविष्ट हुआ। उस दिन में किसी प्रकार राजा गुणसेन के सिर में अत्यन्त पीड़ा उत्पन्न हो गयी। अतः पूरा राजकुल व्याकुल हो उठा। तब वह अग्निशर्मा तापस इस प्रकार के राजकुल में कुछ समय व्यतीत कर किसी के द्वारा शब्दों से भी उसकी खबर न लेने पर उस राज-गृह से वापिस आ गया। निकल कर तपोवन को चला गया। उसने कुलपति को सब समाचार निवेदित कर दिये।

इधर सिर की पीड़ा शान्त होने पर राजा गुणसेन के द्वारा सेवकों से पूछा गया। सेवकों ने यथास्थिति कह दी। राजा ने कहा—'अहो ! मेरी अधन्यता, महालाभ से मैं चूक गया और तपस्वी के शरीर को (भोजन ने मिलने से) पीड़ा पहुँचने के

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कारण महा अनर्थ हो गया है।' ऐसा पश्चाताप कर दूसरे दिन प्रातःकाल में ही वह तपोवन को गया। उसने कुलपति को अपना प्रमाद और अपराध निवेदित किया।

तब कुलपति ने अग्निशर्मा तापस को बुलवाया। और सम्मानपूर्वक उसके हाथों को पकड़ कर उन्होंने कहा—'हे वत्स! राजा के घर से जो तुम्हें बिना भोजन किये लौटना पड़ा है उसके लिए यह राजा बहुत दुखी हो रहा है। इसमें राजा का कोई दोष नहीं है। अतः अब पारणा का दिन आने पर निर्विघ्न-पूर्वक, मेरे कहने से और इस राजा के बहुत आग्रह से तुम्हारे द्वारा इसके घर ही भोजन किया जाना चाहिए।' अग्निशर्मा तापस ने कहा—'भगवन्! जो आपकी आज्ञा।'

फिर कालक्रम से राजा के द्वारा विषय सुखों का अनुभव किये जाते हुए एवं अग्निशर्मा के द्वारा कठिन तपचर्या की विधि को करते हुए एक माह व्यतीत हो गया। इसके उपरान्त पारणा का दिन उपस्थित होने पर राजकुल में अत्यन्त भाग-दौड़ मच गयी। राजा गुणसेन मन्त्री, सामन्तों के साथ और सेना सहित युद्धभूमि में जाने के लिए तैयार था। उसी समय में अग्निशर्मा तापस पारणा के लिए राजमहल में पहुँचा। तब उस अपार लोगों की भीड़ में राजा के प्रस्थान के लिए व्याकुल प्रधान सेवकों में से किसी ने भी अग्निशर्मा की तरफ ध्यान नहीं दिया। तब कुछ समय वहाँ बिताकर मदोन्मत्त हाथियों और घोड़ों के समूह की चपेट में आ जाने के भय से वह अग्निशर्मा राजा के महल से निकल गया।

(युद्ध से वापिस लौटने पर) अग्निशर्मा के वापिस लौट जाने को सुनकर घबड़ाया हुआ वह राजा तुरन्त उसके रास्ते में चल पड़ा। नगर से निकलते हुए उसने अग्निशर्मा को देखा। तब वह राजा भक्तिपूर्वक उसके चरणों पर गिरकर आदरपूर्वक निवेदन करता है—'हे भगवन्! कृपा करिए, वापिस लौट चलिए। इस प्रकार की असावधानी वाले आचरण के लिए मैं लज्जित हूँ।' तब अग्निशर्मा ने कहा—'महाराज! आपका यह दुःख बिना कारण के है। फिर भी इस दुःख को शान्त करने का उपाय है। विघ्नरहित फिर से पारणा का दिन आने पर आपके महल में ही आहार ग्रहण करूँगा। यह मैंने स्वीकार कर लिया है। अतः आप संताप न करें।'

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तब राजा ने कहा—'भगवन् आपका मैं अनुग्रहीत हूँ। यह आप जैसे निःस्वार्थी वत्सलता वालों के अनुरूप ही है।' ऐसा कहकर और अग्निशर्मा को प्रणाम कर राजा वापिस लौट गया। अग्निशर्मा ने भी तपोवन में जाकर कुलपति को सारा वृतान्त कह दिया।

तदनन्तर प्रतिदिन वैराग्य की ओर बढ़ने वाले राजा के द्वारा सेवा किये जाते हुए अग्निशर्मा का वह एक माह पूरा हुआ। तथा राजा के सैकड़ों मनोरथों से वह पारणा का दिन आया। और उस पारणा के दिन राजा गुणसेन की रानी वसन्तसेना ने पुत्र को जन्म दिया। तब राजा के आदेश से नगर में महोत्सव मनाया जाने लगा। इस प्रकार रानी के पुत्रजन्म के अभ्युदय के आनन्द से अत्यन्त मस्त राजा के साथ राजा के सेवकों के होने पर पारणा के लिए राजकुल में प्रविष्ट अग्निशर्मा को वचनों से भी किसी के द्वारा नहीं पूछे जाने पर अशुभकर्मों के उदय से आर्त (दूषित) ध्यान को प्राप्त वह अग्निशर्मा शीघ्र ही वहाँ से निकल गया।

तब अग्निशर्मा ने सोचा—'अहो ! यह राजा बचपन से ही मेरे प्रतिकूल एवं बैरभाव रखने वाला है। उसके अत्यन्त रहस्यपूर्ण आचरण को देखो तो सही, मेरे आगे तो मनोनुकूल बातें करके क्रिया में विपरीत आचरण करता है।' इस प्रकार से चिन्तन करता हुआ वह नगर से निकल गया।

इसके बाद अज्ञान के दोष से पारमार्थिक मार्ग का चिन्तन न करने से वह अग्निशर्मा बुरी भावनाओं (कषायों) द्वारा जकड़ लिया गया। उसकी परलोक-भावना चली गयी, धर्मश्रद्धा नष्ट हो गयी, समस्त दुखरूपी वृक्ष के बीज की तरह अमैत्री उत्पन्न हो गयी और उसे शरीर को पीड़ा देने वाली अत्यन्त भूख लगी। वह भूख से तिलमिला उठा। तब—

गाथा– 1. प्रथम परीषह (भूख के दुख) से आक्रान्त, अज्ञान और क्रोध के वशीभूत उस मूढहृदय अग्निशर्मा के द्वारा यह घोर निदान (संकल्प) किया गया—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

2. 'यदि मेरे द्वारा अच्छी तरह से पालन किये गये इस व्रत विशेष का कोई फल हो तो प्रत्येक भव में मेरा जन्म इस गुणसेन के वध करने के लिए हो।

3. जो पुरुष अपने प्रिय-जनों के लिए उनका प्रिय (कार्य) एवं शत्रुओं के लिए अप्रियकार्य नहीं करता है तो केवल माता के यौवन को नष्ट करने वाले उस व्यक्ति के जन्म से क्या लाभ ?

4. यह पापी राजा बिना किसी अपराध के बचपन से ही मेरा शत्रु है। अतः मैं इसका अप्रिय करूँगा।'

5. इस प्रकार निदान करके उस (बैर भावना के) स्थान से न लौटते हुए, क्रोध की अग्नि में जलते हुए उसे अग्निशर्मा ने अनेक बार ऐसे भाव किये।

इसी बीच में वह तपोवन में पहुँचा। वहाँ अकेला बैठा हुआ वह अपमान के कारण पुनः सोचने लग गया—'अहो ! उस राजा का मेरे ऊपर कितना शत्रुभाव है ? उस प्रकार बार-बार निमन्त्रण करके और पारणा पूरी न कराके वह मेरा उपहास करता रहा। अथवा मैंने आहार-भाव की आसक्ति सर्वथा नहीं छोड़ी इसलिए मेरा इतना उपहास किया जा सकता है। अतः जिसमें मात्र तिरस्कार समाया हुआ है ऐसा आहार अब में जीवन भर नहीं करूँगा।' इस प्रकार निश्चय कर उसने जीवनभर के लिए महा उपवास व्रत ग्रहण कर लिया।

यह सब जानकर कुलपति ने उसे कहा—'हे वत्स ! यदि तुमने आहार भी छोड़ दिया है तो अब तुम्हें आज्ञा देने का समय नहीं रहा। तपस्वी तो सत्य प्रतिज्ञा वाले होते हैं। किन्तु तुम्हें राजा के ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिए। क्योंकि—

गाथा- 6. सब लोग पूर्वजन्मों में किये गए कर्मों के फलरूपी परिणाम को प्राप्त करते हैं। अपराध अथवा गुणों में तो दूसरा व्यक्ति मात्र निमित्त होता है।'

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ १७ : मित्र का कपट

महानगरी वाराणसी के पश्चिम-दक्षिण दिशाभाग में शालिग्राम नामक गाँव है। वहाँ एक वैश्य जाति का गंगादत्त नामक व्यक्ति रहता था। अनेक धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण से समृद्ध लोगों वाले उस गाँव में वह अकेला ही एक जन्म से दरिद्र था। उसके कपटपूर्ण व्यहार से उसका मायादित्य नाम प्रसिद्ध हो गया। और उसी गाँव में पहले से प्राप्त वैभव वाला स्थाणू नामक एक वणिक रहता था। किसी प्रकार मायादित्य के साथ उस स्थाणू का स्नेह हो गया। उनमें मैत्री हो गयी।

एक बार धन कमाने के लिए एक दिन वे दोनों मंगल-उपचार करके, स्वजन और स्नेहीवर्ग को पूछकर रास्ते का नास्ता लेकर निकल पड़े। तब अनेक पर्वतों, सैकड़ों नदियों से युक्त अटवियों (जगलों) को पारकर किसी-किसी प्रकार वे प्रतिष्ठान नामक नगर को पहुँचे। अनेक धन, धान्य, रत्नों से युक्त महास्वर्ग नगर के समान उस नगर में अनेक प्रकार के वाणिज्यों को किया गया और व्यापारिक कार्यों को करते हुए उन दोनों के द्वारा किसी-किसी प्रकार एक-एक ने पाँच-पांच हजार स्वर्ण रत्न कमा लिये।

उन्होंने आपस में विचार किया 'अहो! जो धन हम चाहते थे वह हमने कमा लिया है। किन्तु चोरों के उपद्रवों के कारण से अपने देश इसको ले जाना सम्भव नहीं हैं। इसलिए इस धन से एक हजार स्वर्ण के मोल के पांच-पांच रत्न ले लेते हैं। अपने देश में जाकर वे रत्न बराबर मूल्य में अथवा अधिक मूल्य में बेच दिये जायेंगे।' ऐसा कहकर प्रत्येक ने हजार स्वर्ग मोल के रत्न ले लिये। इससे एक-एक के पास पांच-पांच रत्न हो गये। तब उन दोनों जनों के द्वारा उन दसों रत्नों को एक ही मैल और धूली से धूसरित कपड़े में अच्छी तरह बांध लिया गया। और उन्होंने अपना वेष भी परिवर्तित कर लिया।

उनके द्वारा मुंडे सिर करा लिये गए। छाते ले लिये गये। डंडे के अग्रभाग में तुम्बी लटका ली गयी। गेरुए रंग के कपड़े पहिन लिये गये। रस्सी के सींकों से बनी हुई काँवरें लटका ली गयीं। सब प्रकार से दूर जाने वाले तीर्थ-यात्रियों का वेष

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बना लिया गया। तब इस प्रकार परिवृतित वेष वाले वे दोनों चोरों के द्वारा न लक्ष्य किये जाते हुए, भिक्षा मांगते हुए चल दिये। कहीं पर मोल खरीदकर, कहीं पर भोजनशालाओं में, कहीं पर अतिथिशालाओं में भोजन करते हुए एक संनिवेश (नगर के नजदीक) में वे पहुँचे।

वहाँ पर स्थाणू ने कहा—'अरे मित्र! थके होने से अब भीख मांगते हुए घूमना हमारे वश का नहीं है। अतः आज स्वयं रोटी बनाकर खायेंगे।' तब मायादित्य ने कहा—'यदि ऐसा है, तुम बाजार में जाओ। क्योंकि मैं भोला, खरीदना बेचना नहीं जानता, किन्तु तुम जानते हो। शीघ्र ही तुम आ जाना।' तब स्थाणू ने कहा—'ठीक है, ऐसा ही हो। किन्तु फिर इस रत्न की पोटली का क्या करें?' ऐसा पूछने पर मायादित्य ने कहा—'दूसरे के बाजार की स्थिति कौन जानता है? इसलिए वहाँ प्रवेश करने वाले तुम्हें कोई आपत्ति न हो इस कारण मेरे ही पास इस रत्न-पोटली को रहने दो।' उस स्थाणू ने ऐसा कहने पर वह रत्न-पोटली उसे दे दी। देकर वह बाजार को चला गया।

तब मायादित्य ने सोचा—'अहो! ये दस रत्न हैं। इनमें से पांच मेरे हैं। यदि इस स्थाणू को किसी प्रकार धोखा दिया जाय तो दसों रत्न मेरे ही हो जायेंगे।' ऐसा सोचते ही उसके बुद्धि उत्पन्न हुई कि—'इनको लेकर भाग जाता हूँ।' अथवा उसे गये हुए अधिक समय नहीं हुआ है। अभी वापिस आ जायेगा। इसलिए जिस प्रकार से वह नहीं जान पाये उस प्रकार से भागूँगा।' ऐसा सोचकर उसने रास्ते की धूलि से वैसा ही मैला दूसरा एक कपड़ा लिया। उसमें वे रत्न बांध दिये। और उस पुराने रत्न के कपड़े में रत्नों के तौल और आकार के गोल दस पत्थर बांध दिये। और इस प्रकार उस कपट-प्रपंच को करते समय ही अचानक वह स्थाणू आ गया।

तब घबड़ाए हुए और पाप मन वाले उस मायादित्य ने नहीं जाना कौन-सा वास्तविक रत्नों का कपड़ा है, और कौन-सा नकली रत्नों का कपड़ा। तब स्थाणू ने कहा—'मित्र! मुझे देखकर इस प्रकार व्याकुल से क्यों दिखायी दे रहे हो?' मायादित्य ने कहा—'मित्र! यहीं इस प्रकार का धन का भय प्रत्यक्ष देख लिया, कि तुम्हें देखकर सहसा ऐसी बुद्धि हुई कि—यह चोर आ गया है। अतः इस भय से मैं घबड़ा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गया ।' स्थाणू ने कहा —'धैर्य धारण करो ।' उसने कहा—'मित्र ! इस रत्न-कपड़े को वापिस लो । मैं डरता हूँ । मुझे इसके भय से कुछ लेना-देना नहीं है ।' ऐसा कहते हुए उस मायादित्य ने 'नकली रत्न-कपड़ा है' ऐसा विचारकर ठगी बुद्धी से उस स्थाणू को असली रत्नों का कपड़ा समर्पित कर दिया । उसने भी बिना किसी विकल्प वाले मन से ग्रहण कर लिया ।

तब उस सरल हृदय वाले स्थाणू को पाप हृदय वाले मायादित्य ने ठगकर इस प्रकार कहा– हे मित्र ! मैं कुछ खटाई आदि मांगकर अभी आता हूँ ।' ऐसा कहकर जो गया सो गया, वापिस ही नहीं लौटा । रात-दिन चलकर बारह योजन दूर निकल जाने पर उस मायादित्य ने जब उस अपने रत्न-कपड़े को देखा तब वे जो पत्थर उसने ठगने के लिए उस कपड़े में बांधे थे वही यह नकली रत्नों का कपड़ा था । उसे देखकर वह ठगे हुए की तरह, लूट लिये गये की तरह, मार दिये गये की तरह, डरे हुए की तरह, पागल की तरह, सोए हुए की तरह, मरे हुए की तरह न कथन करने योग्य महान् मूर्च्छा को प्राप्त हो गया ।

वह क्षणमात्र में चेतना को प्राप्त हुआ । तब उसने सोचा—अहो ! मैं इतना मंदभागी हूँ कि जो मैंने सोचा था कि उसे ठगूँगा तो मैं ही ठगा गया ।' ऐसा सोचकर उस पापहृदयी ने फिर विचार किया—'अच्छा, अब फिर उस सरल हृदय वाले को ठगूँगा । अब ऐसा करता हूँ कि वह पुनः मुझे कहीं मार्ग में मिल जाय ।' ऐसा सोचता हुआ वह मायादित्य उसी मार्ग पर चल दिया (जहाँ स्थाणू को छोड़ा था) ।

000

पाठ १८ : धनदेव का पुरुषार्थ

इस लोक में जम्बूद्वीप में भारतवर्ष में वैताढ्य के दक्षिण मध्यम खंड में उत्तरापथ नामक पथ है । वहाँ तक्षशिला नामक नगरी है । उस नगरी के पश्चिम-दक्षिण दिशाभाग में उच्चस्थल नामक गाँव है, जो देव भवनों से स्वर्ग नगर की तरह, विविध रत्नों से पाताल की तरह, गौ-सम्पदा से गौओं के निवास-स्थान की तरह तथा धन सम्पदा से धनकपुरी की तरह है ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उस गाँव में शूद्र जाति का धनदेव नामक सार्थवाह (बड़े व्यापारी) का एक पुत्र था। वहाँ अपने जैसे सार्थवाह पुत्रों के साथ खेलते हुए उसका समय व्यतीत होता था। किन्तु वह लोभी, धन ग्रहण करने में तल्लीन, मायावी, ठग, झूठ बोलने वाला और दूसरों के धन को हरण करने वाला था। तब उसके समान सार्थवाह युवकों के द्वारा ऐसे उसका धनदेव नाम बदलकर लोभदेव नाम प्रतिष्ठित कर दिया गया। तब लोभदेव नाम वाला वह दिनों के बीतने पर बड़े युवक की तरह हो गया।

तब बाहर जाने के लिए इसके लोभ उत्पन्न हुआ, इसलिए उसने अपने पिता से कहा—'हे पिता ! घोड़े लेकर दक्षिणापथ को जाऊँगा और वहाँ बहुत अधिक धन कमाऊँगा, जिससे सुख का उपभोग करेंगे।'

ऐसा कहने पर उसके पिता ने कहा-'हे पुत्र ! तुम्हें धन से क्या प्रयोजन ? तुम्हारे और मेरे पुत्र-पौत्रों के लिए भी विपुल सारयुक्त धन मेरे पास है। इसलिए गरीबों को दान दो, याचकों की मांग पूरी करो, ब्राह्मणों को दक्षिणा दो, मंदिरों को बनवाओ, तालाब और बांध खुदवाओ, वापियों को बंधवाओ, निशुल्क भोजन. शालाओं को चलाओ, औषधालयों को बनवाओ, दीन एवं विह्वल लोगों का उद्धार करो। किन्तु हे पुत्र ! विदेश जाने से रहने दो।'

तब लोभदेव ने कहा—'हे पिता ! जो यहाँ है वह तो अपने अधीन है ही। किन्तु अपनी बाहुओं के पुरुषार्थ से अन्य अपूर्व धन कमाना चाहता हूँ।' तब उस सार्थवाह ने सोचा —'इसका उत्साह ठीक ही है। यह करने योग्य, उचित एवं हमारे अनुकूल है। हमारा धर्म ही है— अपूर्व धन कमाना। इसलिए मुझे इसकी इच्छा को नहीं तोड़ना चाहिए। अतः यह जाय।' ऐसा सोचकर उसने कहा—'हे पुत्र ! यदि तुम नहीं रुक सकते तो जाओ।'

ऐसा कहे जाने पर वह जाने को तैयार हो गया। घोड़े सजाये गये। गाड़ीवान सज्जित की गयीं, रास्ते का खाना रखा गया, दलालों को सूचना दी गयी, मजदूर लोगों को एकत्र किया गया, गुरुजनों से पूछा गया, दिशा-देवता की वन्दना की

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गयी, सार्थ तैयार हुआ और जल्दी से चल पड़ा। तब उसके पिता ने उसे कहा—'हे पुत्र! देशान्तर दूर है, रास्ते भयानक हैं, लोग निष्ठुर हैं, दुर्जन अधिक हैं, सज्जन विरले हैं, मित्र कठिनता से मिलते हैं, यौवन कठिन है, बड़ी मुश्किल से तुम पाले गये हो, कार्यों की गति विषम है, यमराज अनर्थ करने वाला है, क्रोधी चोर निरन्तर मिलते हैं। इसलिए कहीं पर पंडिताई से, कहीं पर मूर्खता से, कहीं चतुरता से, कहीं निष्ठुरता से, कहीं दयालुता से, कहीं निर्दयता से, कहीं शूरता से, कहीं कायरता से, कहीं त्याग से, कहीं कंजूसी से, कहीं मान से, कहीं दीनता से, कहीं बुद्धिमानी से और कहीं मूर्खता से (अपना कार्य सिद्ध करना)।

ऐसा कहकर वह पिता वापिस लौट गया।

वह लोभदेव किसी समय के बाद दक्षिणापथ को पहुँचा। वहाँ सोपारक नगर में भद्रश्रेष्ठि नामक पुराने सेठ के घर में वह ठहरा। तब कुछ समय के बाद उसने अत्यधिक मोल से उन घोड़ों को बेच दिया। उससे बहुत अधिक धन का संचय किया। और उसको लेकर अपने देश की ओर वह सार्थवाह-पुत्र जाने को तैयार हो गया।

000

पाठ १६ : राजा का व्यवहार

दूसरे दिन प्रातःकाल में समस्त कार्यों को करके मैं भैरवानन्द आचार्य के दर्शन के लिए उद्यान में गया। और व्याघ्रचर्म पर बैठे हुए भैरवाचार्य को मैंने देखा। उनके द्वारा मेरा स्वागत किया गया। मैं उनके चरणों पर गिरा। आशीष देकर मृगचर्म दिखाकर उन्होंने मुझसे कहा—'इस पर बैठिए।' मैंने कहा—'हे भगवन्! यह उचित नहीं है कि अन्य दूसरे राजाओं के समान मुझसे व्यवहार किया जाय। दूसरे, इसमें आपका भी कोई दोष नहीं है, इस प्रकार की अनेक राजाओं से सेवित इस राज्यलक्ष्मी का ही यह दोष है कि मुझ जैसे शिष्य को भी आप अपना आसन प्रदान करते हुए ऐसा व्यवहार कर रहे हैं। भगवन्! आप तो दूर में स्थित रहते हुए भी मेरे गुरु हैं।' इसके बाद मैं अपने सेवक के टट्टू पर ही बैठ गया।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

थोड़ी देर में ही मैंने कहना प्रारम्भ किया—'हे भगवन् ! वह देश, नगर, गाँव अथवा प्रदेश कृतार्थ हो जाता है, जहाँ आप जैसे लोगों की चर्चा भी आ जाती है, फिर आपके स्वयं आने से तो कहना ही क्या ? इसलिए आपके आगमन से मैं अनुग्रहीत हूँ।'

उन जटाधारी ने कहा-'निरीह साधु लोग भी गुणों से आकृष्ट होकर भक्त-जनों में पक्षपात करते हैं। अतः तुम्हारे गुणों से कौन आकर्षित नहीं होता ? और भी, तुम्हारे जैसे लोगों के आ जाने पर हम जैसे अपरिग्रही साधु लोग तुम्हारा क्या स्वागत करें ? क्योंकि मैंने जन्म से ही परिग्रह नहीं किया। द्रव्य, पैसा आदि के बिना लोक-व्यवहार पूरा नहीं होता है।'

ऐसा सुनकर मैंने कहा—'हे भगवन् ! आपको लोक-व्यवहार से क्या प्रयोजन ? आपकी आशीष ही लोक का आतिथ्य है।' तब फिर उन जटाधारी,ने कहा—'हे महाभाग !

गाथा-- 1. निर्मल जन में भी गुरुजनों की पूजा, भक्ति और सम्मान युक्त विनय दान के बिना संभव नहीं होती है।

2. दान धन के बिना नहीं होता, धर्मरहित व्यक्तियों के धन नहीं होता और विनय से रहित लोगों के धर्म नहीं, तथा अभिमान से युक्त लोगों के विनय नहीं होती है।

ऐसा सुनकर मैंने कहा—,भगवन् ! यह ठीक है, किन्तु आप जैसे लोगों का देख लेना ही दान है, आदेश ही सम्मान है। अतः आदेश करें कि आपके लिए मुझे क्या सेवा करनी चाहिए ?' भैरवाचार्य ने कहा—'हे महाभाग ! आप जैसे परोपकार में तल्लीन लोगों का याचक-जन को देख लेना ही मनोरथ की पूर्ति होना है। बहुत दिनों से किये जा रहे मेरे एक मन्त्र की सिद्धि तुम्हारे द्वारा ही होनी है। यदि एक दिन समस्त विघ्नों को दूर करने के लिए आप आना स्वीकार लें तो आठ वर्ष के मन्त्रजाप का मेरा परिश्रम सफल हो जायेगा।'

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तब मैंने कहा'—हे भगवन् ! आपके इस आदेश से मैं अनुग्रहीत हूँ। तो कहाँ पर और किस दिन मुझे क्या करना है ? ऐसा आप आदेश करें। उसके बाद ही जटाधारी ने कहा कि—'हे महाभाग ! इसी कृष्ण चतुर्दशी को तुम्हें हाथ में तलवार लिये हुए नगर के उत्तर की ओर के बगीचे में अकेले श्यमशान भूमि में रात्रि के एक पहर के बीत जाने पर आना है। वहाँ पर मैं तीन जनों के साथ बैठा हुआ मिलूँगा।' तब मैंने कहा—'ऐसा करूँगा।'

मन्त्र के सिद्ध हो जाने के अन्त में भैरवाचार्य ने कहा 'हे महाभाग ! तुम्हारी कृपा से मन्त्र सिद्ध हो गया। मन की इच्छा पूरी हो गयी, दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गयी, मानुषोत्तर पराक्रम प्राप्त हो गया है, अन्य प्रकार की देहप्रभा भी उत्पन्न हो गयी है। अत: आपके उपकार के लिए क्या कहूँ ? परोपकार करने में ही लगे हुए तुम्हें छोड़कर दूसरा कौन व्यक्ति स्वप्न में भी इस प्रकार के मार्ग को स्वीकार कर सकता है ? मैं तुम्हारे गुणों से उपकृत हो गया हूँ। कहने में समर्थ नहीं हूँ कि 'जा रहा हूँ' यह स्वार्थ पर की पराकाष्ठा होगी। 'परोपकार करने में तुम तत्पर हो' ऐसा कहना प्रत्यक्ष ही परोपकार देख लेने वाले के लिए यह पुनरोक्ति होगी। 'तुमने मुझे जीवन दिया है' स्नेहभाव से यह कहना उचित नहीं है। 'तुम बान्धव हो' यह कहना दूरी दिखना है। 'निष्कारण परोपकारी हो' यह कहना कृतघ्न वचनों का अनुवाद होगा। 'मुझे याद रखना' यह कहना आज्ञा देना है।' इस प्रकार के वचन कहकर अपने तीनों शिष्यों के साथ भैरवाचार्य चले गये।

000

पाठ २० : चन्दनबाला

श्रेष्ठि ने पूछा—'हे पुत्रि ! तुम कौन हो ? किस कुल में उत्पन्न हो ? किसकी पुत्री हो ?' यह सुनकर आंसू गिराती हुई शब्दरहित वह वसुमती रोने लगी। सेठ ने सोचा—'आपत्ति में पड़ा हुआ श्रेष्ठ व्यक्ति अपने कुल आदि को कैसे कहेगा ? मुझे अब नहीं पूछना।' ऐसा सोचकर उसने कहा—'हे पुत्रि ! रोओ मत।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तुम मेरी पुत्री हो।' ऐसे कोमल वचनों से उसे आश्वासन दिया। और अपहरण-कर्त्ता को यथेष्ट धन देकर वह सेठ वसुमती को अपने घर ले गया। वहाँ उसने मूला सेठानी को बुलाया और उसे कहा –'प्रिये ! यह तुम्हारी पुत्री है। प्रयत्नपूर्वक इसका पालन करना।' उसने भी उसी प्रकार स्वीकार किया। विनयपूर्वक सेठ और उसके स्वजनों को सम्मान देती हुई वसुमती सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगी।

एक बार मधुर वचन, विनय, शील आदि प्रमुख गुणों से प्रसन्न सेठ ने उसका गुणसम्पन्न दूसरा नाम 'चन्दनबाला' रख दिया। इस प्रकार वह वहाँ अपने घर की तरह सुखपूर्वक समय व्यतीत करती। उसके गुणों से आकृष्ट नगर के लोग भी वसुमती की प्रशंसा करते थे–'अहो ! शील, अहो ! सौन्दर्य, अहो ! सदाचरण, अहो ! अमृत की तरह मधुर वचन, अधिक क्या कहें ? विधि ने इसे सर्वगुण-सम्पन्न बनाया है।' इस प्रकार सबसे प्रशंसा प्राप्त करती हुई, तरुणजनों के मनरूपी हिरण को हरण करने वाले बन्धन की तरह यौवन को प्राप्त करती हुई चन्दनबाला ग्रीष्मकाल को प्राप्त हुई।

तब जैसे-जैसे वह यौवन की ओर बढ़ी और घर तथा नगर के लोगों के द्वारा प्रशंसित हुई वैसे-वैसे ईर्ष्या से युक्त सब अनर्थों की जड़ वह मूला सेठानी दुखी होने लगी। अपने मन में वह सोचती है–'अहो ! यह मेरे दुर्भाग्य की सूचक, विष-कदली की तरह बढ़ती हुई मुझे फंसाने वाली, सभी अनर्थों की जड़, किंपाकफल को खाने के तरह कटु अन्त वाली, छोटे उपेक्षित रोग की तरह दुःख देने वाली होगी।' इस प्रकार के सैकड़ों कु-विकल्पों से युक्त मूला का समय व्यतीत होता था।

एक बार स्नान के समय में अकेला ही सेठ अपने घर पर आया। घर पर कोई नौकर-चाकर नहीं था। मूला सेठानी भी भवन के ऊपर बालकनी पर थी। तब अत्यन्त विनय से घड़ा लेकर चन्दनबाला निकली। आदर के लिए उसने सेठ को आसन दिया। चरण धोने के लिए वह उपस्थित हुई। उस प्रकार से पैर धोती हुई उस चन्दना के सुन्दर लम्बे, काले, घुंघराले एवं खूब चिकने सिर के बाल जमीन से कुछ ही ऊपर गिरने लगे तब 'कहीं कीचड़ में न गिर जांय' ऐसा सोचकर हाथ से सेठ ने उन बालों को पकड़कर उसकी पीठ पर रख दिये और स्नेह से उन्हें बांध दिया।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मूला सेठानी ऊपर बैठी हुई उस बात को देखकर चित्त में दुखी हुई। वह सोचने लगी—'अहो ! सब नष्ट हो गया। सेठ उसे प्रगाढ़-प्रणय करने वाला दिख रहा है। यह पुत्री है ऐसा स्वीकार किया है, किन्तु कार्य के परिणाम को नहीं जानता है। यदि किसी प्रकार सेठ ने इसे पत्नी बना दिया तो मैं गृह-स्वामिनी न रहूँगी। अतः प्रारम्भिक अवस्था को प्राप्त इस रोग को यहीं नष्ट कर देना चाहिए। बड़े होने पर कौन नखों को काटता है ?' इस प्रकार थोड़े क्रोध के ईंधन से प्रज्वलित क्रोध-अग्नि वाली उस मूला ने सेठ के निकल जाने पर नाई को बुलाकर चन्दनबाला का सिर मुंड़वा दिया। बेड़ी में उसे डाल दिया। जूतों के प्रहार से उसे मारा और कठोर खरे वचनों से उसकी निन्दा की। अपने नौकरों को बुलाकर उसने कहा—'जो इस बात को सेठ को कहेगा उसे मैं स्वयं निकाल दूँगी।' ऐसा कहकर क्रोधपूर्वक उसने डराया। और एक कोठरी में चन्दनबाला को डाल दिया। दरवाजा बन्द कर दिया। ताला लगा दिया और अपने हाथ में चाबी ले ली।

कुछ समय बाद सेठ आया। परिजनों को पूछता है—'चन्दनबाला कहाँ है ?' मूला के भय से डरा हुआ कोई भी नौकर नहीं बोलता है। सेठ समझता है कि वह बाहर खेल रही होगी अथवा ऊपर होगी। रात आने पर वह फिर पूछता है, किन्तु कोई नहीं बताता है। 'निश्चित ही वह कहीं सो रही होगी।' ऐसा सोचकर सेठ सो गया। दूसरे दिन भी वह चन्दनबाला न दिखी। नौकरों को उसने पूछा। किसी ने नहीं बतलाया। तब मन में उसे कुछ शंका हुई तो उसने मूला को पूछा—'प्रिय ! चन्दनबाला दिखायी नहीं दे रही है। उसका क्या हाल है ?' मुँह ऊँचा किये हुए क्रोधपूर्वक मूला ने कहा—'क्या आपको और कोई काम नहीं है जो दास-दासियों की चिन्ता से व्याकुल हो दुःखी हो रहे हो ?' सेठ ने कहा—'प्रिय ! प्रिय वचन बोलो। यह अच्छी बात नहीं है। तुम्हें उससे क्या ईर्ष्या है ?' मूला ने कहा—'यदि मुझे इस प्रकार ईर्ष्यालु जानते हो तो क्यों मुझसे पूछते हो ?' सेठ ने कहा—'अब मैंने भी जान लिया कि सभी अनर्थ की जड़ तुम हो। अतः अब दूसरे को नहीं पूछूँगा।'

दूसरा दिन भी व्यतीत हुआ। तीसरे दिन क्रोधी सेठ नौकरों को पूछता है—'बताओ, अन्यथा तुम सबको मारूँगा।' तब एक बूढ़ी नौकरानी सोचती है—'मेरे

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवन से क्या लाभ ? वही बेचारी जिन्दा रह जाय।' ऐसा सोचकर उसने सेठ को चन्दनबाला का सब वृत्तान्त बताकर कहा—'वह यहाँ एक कोठरी में है।' घबराया हुआ सेठ वहाँ गया। किन्तु वहाँ चाबी नहीं थी।

तब किसी प्रकार किवाड़ों को तोड़ा गया। चन्दनबाला को उस अवस्था में देखकर आखों से आँसू बहाते हुए सेठ ने कहा—'हे पुत्रि ! चन्दन की तरह शीतल ! तुम कैसे इस अवस्था को प्राप्त हुई ? अथवा दुर्जन लोगों की दुष्टता की कोई सीमा नहीं है।'

तब उसने भोजन खोजा। किन्तु मूला के द्वारा भविष्य की तरह उसका अभाव था। इधर-उधर खोजते हुए सेठ ने सूपे के कौने में उड़द देखे। उनको उसी रूप में चन्दनबाला को देकर बेड़ी कटवाने के लिए स्वयं वह लोहार के घर चला गया। वह चन्दनबाला भी दरवाजे की देहरी पर आसरा लेकर बैठ गयी। तब अपनी गोद में सूप के कौने में पड़े हुए उड़दों को देखकर खंभे में बधे नये हाथी की तरह जैसे विन्ध्यपर्वत को याद किया जाता है वैसे ही वह अपने कुल को यादकर रोने लग गयी।

उसके बाद चन्दनबाला ने सोचा—'तीन दिनों से किसी सुपात्र को बिना दान दिये मैं कैसे आज भोजन करूँ ? अच्छा हो यदि कोई सुपात्र यहाँ आ जाय।'

तब भगवान् महावीर ने जो प्रतिज्ञा ली थी वह अभिग्रह सब तरफ से यहाँ परिपूर्ण हो रहा था। अतः उन्होंने चन्दनबाला के सामने आकर हाथ पसार दिये। उसने सूप के कौने से उड़द उन्हें दिये। उन्होंने पारणा कर लिया। इसी समय आसन चलायमान होने से देवता वहाँ आ गये। पांच दिव्य पदार्थ वहाँ उत्पन्न हुए। प्रतिज्ञा पूरी हुई। समस्त जीवलोक के निष्कारण बन्धु, दुष्ट आठ कर्मों को मूल से उखाड़ने वाले त्रिशलानन्दन (महावीर) का आहार हो गया। चन्दनबाला भी तीर्थंकर को आहार देने के धर्म से उपार्जित पुण्य-समूह के द्वारा इस लोक में धन्य हो गयी।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तभी सारे त्रिभुवन में कुंद एवं चन्द्रमा के समान उसका निर्मल यश फैल गया। अहो ! धन्या है, अहो ! कृतार्थ है, अहो चन्दनबाला लक्षणों से युक्त है। उस चन्दनबाला ने अपने जन्म और जीवन का फल प्राप्त कर लिया है।

000

पाठ २१ : जैसा गुरु वैसा चेला

एक गाँव में बहुत से कोठों से युक्त एक मठ में एक शिष्य के साथ बड़ा आचार्य रहता था। एक बार उसने रात्रि में स्वप्न देखा कि— मठ के सभी कोठे (बखरी) लड्डुओं से भरे हुए हैं। जगने पर उसने प्रसन्नतापूर्वक यह बात अपने शिष्य से कही। उसने कहा– 'यदि ऐसा है तो आज हम पूरे गाँव को निमन्त्रण कर देते हैं। गाँव के घरों में हमने बहुत बार खाया है।'

'ठीक है' ऐसा स्वीकार करने पर पूरे पर जाकर उस चेले ने मुखिया समेत पूरे गाँव को निमन्त्रण दे दिया। 'तुम्हारे यहाँ भोजन सामग्री कहाँ से आयी ?' ऐसा पूछे जाने पर भी 'धर्म के प्रभाव से सब होगा' ऐसा कहकर शिष्य द्वारा बल-पूर्वक उन्हें मना लिया गया। भोजन का मंडप बनवाया गया। आसन-पंक्तियाँ बिछायी गयीं। उचित समय पर गाँव के लोग भी आ गये। आसनों पर बैठ जाने पर उन्हें भोजन-पात्र भी दे दिये गये।

इसी समय में वह परम आचार्य लड्डुओं के लिए भीतर घुसा। किन्तु वहाँ कुछ भी नहीं देखता है। तब 'चित्त न लगाने से मैं लड्डुओं वाले कमरे को भूल गया हूँ। अतः उसे देखने के लिए फिर सो जाता हूँ। तब तक तुम लोगों के शोरगुल को रोकना।' चेला को ऐसा कहकर वह आचार्य सो गया।

इसी बीच में लोगों ने कहा— 'लोग भूखे हैं, शाम हो रही है अतः देर क्यों की जा रही है ?' चेले ने कहा—'शोर मत करो क्योंकि मेरे गुरु नींद ले रहे हैं।'

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा सुनने पर लोगों ने कहा—'यह सोने का कौन-सा समय है ?' चेले ने कहा—'आप लोगों के भोजन के लिए स्वप्न में देखे गये लड्डुओं का कोठा गुरूजी भूल गये थे। अतः फिर से उसे देखने के लिए अब सो गये हैं।'

ऐसा सुनकर—'अहो ! इनकी मूर्खता ?' ऐसा कहकर ताली बजाते हुए हँसते हुए लोग अपने घरों को चले गये। इसलिए स्वप्न में देखा हुआ स्थायी नहीं होता।

000

पाठ २२ : मदनश्री की शिक्षा

उज्जयिनी नगरी में विक्रमसेन राजा था। उसने कभी क्रीडा के लिए जाते हुए जिसका पति विदेश गया हुआ है ऐसी सेठ की पत्नि मदनश्री को भवन की मंजिल पर बैठे हुए झरोखे के द्वार से देखा। उस पर आसक्त राजा ने उसके पास अपनी दासी को भेजा। उसने वहाँ जाकर मदनश्री से कहा—'मदनश्री ! तुम कृतार्थ हो जो महाराजा के द्वारा चाही गयी हो। अतः उस राजा ने संदेश दिया है—'हे सुन्दरी ! अमृत की तरह तुम्हारे दर्शन के लिए मेरा हृदय उत्कंठित है। एक दिन को मेरे पास आओ अथवा मैं ही छिपे रूप में तुम्हारे यहाँ आ जाता हूँ। हे सुन्दर शरीरवाली ! इस संदेश का उत्तर अवश्य देना।'

मदनश्री ने 'अहो ! मेरे ऊपर राजा का दृढ़ अनुराग है। दूर रहते हुए उसे समझाना संभव नहीं है।' ऐसा सोचकर 'महाराज मेरे महल पर ही यहाँ आ जाँय' ऐसा उत्तर देकर उस दासी को वापिस भेज दिया।

दासी ने राजा को सब वृतान्त कहा। वह संतुष्ट राजा दोपहर में अंजन के प्रयोग से अदृश्य रूप में उसके घर गया और अंजल धोकर प्रकट हो गया। घबड़ायी हुई मदनश्री ने उसे देखा। उसने सोचा—'यह अनुराग के ग्रह से ग्रसित है। किन्तु मेरे द्वारा प्राण त्यागने पर भी शील को खंडित नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

"विष खा लेना अच्छा, अग्नि में प्रवेश कर जाना अच्छा, फांसी लगा लेना अच्छा, पर्वत से गिर जाना अच्छा किन्तु शील को खंडित करना अच्छा नहीं है।" अतः इस राजा को किसी उपाय से समझाती हूँ।'

ऐसा सोचकर—'महाराज का स्वागत है' प्रसन्तापूर्वक ऐसा कहकर और आसन प्रदान कर उसने राजा के चरण धोए। मनोहर भोजन तैयार किया। एक ही भोजन को बहुत-सी थालियों में सजाया। उन थालियों को सुन्दर चित्रों वाले रेशमी कपड़ों से ढका। तब उसने कहा—'महाराज! मेरे ऊपर कृपा करिये। और मनोनुकूल भोजन कीजिए।'

राजा भी अनुराग से उसका अनुकरण करता हुआ भोजन के लिए बैठा। वह मनोहर कपड़ों से ढकी हुई नयी बहुत-सी थालियों को देखता है—'अहो! मुझे रिझाने के लिए इसने विविध प्रकार की रसोई की है' ऐसा सोचकर राजा संतुष्ट हुआ। उस मदनश्री ने भी सभी थालियों से थोड़ा-थोड़ा लेकर एक ही प्रकार का भोजन परोसा दिया।

तब कौतुकता से राजा ने कहा—'एक ही भोजन के लिए बहुत-सी थालियों का क्या कारण है?' उसने कहा—'नयापन ही इनकी विशेषता है।' राजा ने कहा—'इस प्रकार के निरर्थक विशेषण से क्या लाभ?' मदनश्री ने कहा—'महाराज! यदि ऐसा है तो युवतियों के शरीरों में भी बाह्य नवीनता के अतिरिक्त और कौन-सी विशेषता है? क्योंकि भीतर से वसा, मांस, मज्जा, शुक्र, फुफ्फस, रुधिर, हड्डि आदि अपवित्रता का घर होने से सभी युवतियों का शरीर एक-सा है। इसी प्रकार महाराज! अपनी पत्नी के विद्यमान होने पर दूसरी स्त्रियों में अनुराग करने का कोई कारण नहीं है।'

यह सुनकर वैराग्य को प्राप्त वह राजा विक्रमसेन कहता है—'हे सुन्दरी! तुमने ठीक आचरण किया, जो अज्ञान से मोहित मुझको प्रतिबोध दिया।' ऐसा कहकर और भारी पारितोषिक देकर वह राजा अपने भवन में चला गया।

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ २३ : दमयन्ती का स्वयंवर

इसी भरतक्षेत्र में कौशल नगरी है। वहाँ इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न, अनुपम न्याय, त्याग और पराक्रम से युक्त निषध नाम का राजा है। उसके सुन्दरी नामक रानी की कूँख से उत्पन्न जन-मन को आनन्द देने वाले नल और कूबर नामक दो पुत्र हैं।

और इधर विदर्भ देश के मंडल में कुंडिन नगर है। वहाँ शत्रुरूपी हाथी-समूह को सिंह की तरह भीमरथ राजा है। उसके समस्त अन्तःपुररूपी वृक्ष के पुष्प की तरह पुष्पदन्ती रानी है। विषय-सुख का अनुभव करते हुए उनके समस्त त्रिलोक के अलँकार-स्वरूप एक पुत्री उत्पन्न हुई।

गाथा—1. उस पुत्री के भाल पर सूर्य के प्रतिबिम्ब की तरह एक सहज तिलक उत्पन्न हुआ, जो मानों सज्जन पुरुष के वक्षस्थल पर श्रीवत्सरूपी सुन्दर रत्न हो। 'माता के गर्भ में इस पुत्री के आने से मेरे सभी बैरी दमित (शान्त) हो गये हैं।' ऐसा सोचकर पिता ने उसका नाम 'दमयन्ती' रखा। शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की रेखा की तरह सब लोगों की आँखों को आनन्द देने वाली वह वृद्धि को प्राप्त हुई। समय पर उसे कलाचार्य के पास भेजा गया।

2 बुद्धि से युक्त उस दमयन्ती में उपाध्याय के सिखाते ही समस्त कलाएं पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह तुरन्त ही प्राप्त हो गयीं।

वह दमयन्ती यौवन को प्राप्त हुई। उसे देख कर माता-पिता ने सोचा- 'यह अनुपम सुन्दरी है और सयोग से विज्ञान में प्रवीण भी। अतः इसके उपयुक्त वर प्राप्त नहीं है। और यदि हो भी तो उसे कैसे जाना जाय ? अतः स्वयंवर करना उचित है।'

तब दूत भेजकर राजाओं और राजपुत्रों को बुलाया गया। हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल सैनकों के साथ में (राजा लोग) आ गये। वहाँ अनुपम पराक्रम वाला

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

नल भी पहुँचा। भीमराजा के द्वारा सम्मान प्राप्त वे श्रेष्ठ आवासों में ठहर गये। स्वर्ण के खंभों से युक्त स्वयंवर-मंडप बनवाया गया। वहाँ गोल सिंहासन लगवाये गये। उन पर राजा लोग बैठे।

इसी अवसर पर पिता के आदेश से भाल के तिलक की विस्तीर्ण प्रभा से अलंकृत, सूर्य के बिम्ब को धारण करने वाली पूर्व दिशा की तरह, प्रसन्न मुखवाली, सम्पूर्ण चन्द्रमा से शोभित पूर्णिमा की रात की तरह, श्वेतवस्त्र पहिने हुए दमयन्ती स्वयंवर मंडप को सुशोभित करती हुई वहाँ आयी। उसे देखकर आश्चर्यचकित मुखवाले राजाओं द्वारा चक्षुविक्षेप के लिए वह देखी गयी।

गाथा—3. तब राजा के आदेश से अन्तःपुर की प्रतिहारी भद्रा राजकुमारी के सामने राजपुत्रों के पराक्रम (परिचय) को कहने लगी—

4. 'दृढ़ बाहुबल वाला **बल** नामक यह काशी नरेश है। यदि इसे वरोगी तो ऊँची लहरों वाली गंगा नदी को देख सकोगी।'

दमयन्ती ने कहा 'भद्रे ! काशीवासी दूसरों को ढगने में अभ्यस्त सुने जाते हैं। अतः मेरा मन इसमें नहीं लगता, आगे चलो।' उसी प्रकार आगे बढ़कर भद्रा ने कहा—

गाथा-5. 'शत्रुरूपी हाथियों के लिए सिंहरूपी यह कोंकण का स्वामी राजा **सिंह** है। इसको वर कर ग्रीष्मऋतु में कदलीवनों में सुखपूर्वक क्रीड़ा करना।'

दमयन्ती ने कहा—'भद्रे ! कोंकण के लोग अकारण ही क्रोध करने वाले होते हैं। अतः क्षण-क्षण में इनको अनुकूल मैं नही कर पाऊँगी। अतः दूसरे का परिचय दो।' आगे जाकर उसने कहा—

गाथा—6. 'इन्द्र के समान रूपवाले ये काश्मीर के स्वामी राजा **महेन्द्र** हैं। कुंकुम की क्यारियों में क्रीड़ा करने की इच्छा हो तो इन्हें वरण करो।'

राजकुमारी ने कहा—'भद्रे! मेरा शरीर ठंड से बहुत डरता है, क्या तुम यह नहीं जानती हो ? अतः यहाँ से चलें।' ऐसा कही जाती हुई वह प्रतिहारी आगे जाकर कहने लगी—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गाथा-7. 'अत्यन्त खजाने वाला और कामदेव के समान सुन्दर कौशाम्बी का स्वामी यह राजा **जयकोष** है । हे मृगाक्षी! क्या यह तुम्हारा मन हरता है ?'

राजकुमारी ने कहा- 'हे कपिंजला ! वरमाला अत्यन्त सुन्दर बनायी गयी है ।' भद्रा ने सोचा- 'अप्रकट वचनों से ही इस राजा का निषेध कर दिया गया है ।' तब वह आगे जाकर कहती है —

गाथा-8 'हे कोयल की तरह कंठवाली ! जिसकी तलवार रूपी राहु से वैरी रूपी चन्द्रमा ग्रस लिया गया है उस कलिंगपति **जय** के माला डाल दो ।'

राजकुमारी ने कहा- 'पिताजी के समान आयु वाले इनको प्रणाम करती हूँ ।' भद्रा ने आगे जाकर कहा—

गाथा-9. 'हे गजगामिनी ! जिसके हाथी-समूह के घंटाओं की आवाज से ब्रह्माण्ड फूटने लगता है वह गौड़ देश का राजा **वीरमुकुट** क्या तुझे अच्छा लगता है?'

राजकुमारी ने कहा-' हे माँ ! क्या मनुष्यों का इतना काला रूप भी होता है ?' अतः तुरन्त आगे चलो । मेरा हृदय काँप रहा है ।' तब थोड़ा हंसती हुई वह आगे गयी और कहने लगी—

गाथा-10. 'हे कमल की तरह नयनों वाली ! क्षिप्रा नदी के किनारे वनकुंज में क्रीड़ा करने की इच्छा करती हुई तुम इस अवन्ती देश के राजा **पद्मनाभ** को अपना पति बना लो'

राजकुमारी ने कहा- 'हे सखी ! इस स्वयंवर मण्डप में चलते-चलते थक गयी हूँ। तो क्या अब भी तुम बोलती ही रहोगी ?' तब भद्रा ने सोचा 'यह भी मेरे मन को ठीक नहीं लग रहा है, ऐसा राजकुमारी ने सूचित कर दिया है तो आगे चलती हूँ ।' ऐसा सोचकर वह भद्रा उसी प्रकार कहने लगी—

गाथा-11. 'यह राजा निषध का पुत्र राजकुमार **नल** है, जिसके सौन्दर्य को देखकर हजार नयनों वाला इन्द्र अपने हजार नेत्रों को सफल मानता है ।'

तब विस्मित मनवाली दमयन्ती ने सोचा-'अहो समस्त रूपवन्त अंगो का निवास-स्थान, अहो ! अद्भुत लावण्य, अहो ! अपूर्व सौभाग्य, अहो ! मधुर हास्य का निवास ! इसलिए हे हृदय, इस राजकुमार के प्रति स्वीकृति देकर परम संतोष को प्राप्त करोगे ।' ऐसा सोचकर नल के कंठ में उसने वरमाला डाल दी । 'अहो ! अच्छे वर का वरण किया' इस प्रकार लोगों की आवाजें उठने लगीं ।

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ २४ : विद्युत्प्रभा की बहादुरी और करुणा

यहाँ पर ही जम्बूद्वीप से अलंकृत, द्वीप के मध्य में स्थित, अखण्ड छह खण्डों से सुशोभित, बहुत सम्पूर्ण लक्ष्मी का निवास-स्थान कुसट्ट देश है। वहाँ आनंदित एवं क्रीड़ा करने वाले लोगों से मनोहर, अप्सराओं की तरह गौरियों से सुन्दर बलासक नामक गांव है। वहाँ पर चारों दिशाओं में एक योजन तक के भूमिभाग में कभी भी वृक्ष आदि नही उगते थे।

ऐसे उस गाँव में चारों वेदों में पारंगत, छह कर्मों का साधक अग्निशर्मा ब्राह्मण रहता था। उसके शील आदि गुणों की प्राप्ति से सुशोभित अग्निशिखा नामक पत्नी थी। परम सुख से भोगों को भोगने वाले उनके कालक्रम से एक पुत्री उत्पन्न हुई। माता-पिता के द्वारा उसका नाम विद्युत्प्रभा रखा गया।

गाथा —1. जिसके चंचल नयनों के सामने नीलकमल नौकर था (शोभारहित था) तथा जिसके मुख की निर्मल शोभा को सदा पूर्ण रूप से कामदेव धारण करता था।

2. जिसकी नाक की धार के सामने तोते की चोंच गुणहीन एवं व्यर्थ थी तथा जिसके रूप को देखकर अप्सराओं में भी निश्चित रूप से (लोगों के) आदर (रुचि) शिथिल हो जाते थे।

तब क्रम से उस विद्युत्प्रभा के आठ वर्ष के हो जाने पर दुर्भाग्यवश रोग की व्याधि से ग्रसित उसकी माता मृत्यु को प्राप्त हो गयी। तब से वह घर के समस्त कार्यों को करती थी। प्रातःकाल में उठकर गायों का दोहन कर, घर की सफाई कर, गायों को चराने के लिए बाहर जाकर फिर से दोपहर में गोदोहन आदि कर, पिता के लिए देवपूजा, भोजन आदि के कार्य कर और खाकर फिर से वह गायों को चराकर संध्या में घर आकर सांयकालीन करने योग्य कार्यों को करके क्षणमात्र के लिए नींद का सुख लेती थी। इस प्रकार से प्रतिदिन करती हुई गृहकार्यों से पीड़ित व दुखी वह एक दिन अपने पिता को कहती है—'हे पिताजी ! मैं गृहकार्यों से अत्यन्त दुखी हो गयी हूँ। इसलिए कृपा कर आप दूसरी पत्नी ले आयें।'

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार उसके अच्छे वचनों को मानने वाले उसके पिता के द्वारा बिषवृक्ष की तरह एक ब्राह्मणी ब्याह ली गयी। स्वादशीला, आलसी, दुष्ट वह ब्राह्मणी घर के कार्यों को पहले की तरह विद्युत्प्रभा को सौंपकर स्वयं स्नान, विलेपन, आभूषण, भोजन आदि भोगों में व्याप्त रहती हुई ग्रास को तोड़कर भी दो नहीं करती थी। तब बिजली की तरह जलती हुई वह विद्युत्प्रभा सोचती है-'अहो ! मेरे द्वारा पिता से जो सुख के लिए कराया गया वह नरक की तरह दुख का कारण बन गया। अतः बिना भोगे हुए दुष्कर्मों से नहीं छूटा जा सकता है, दूसरा व्यक्ति निमित्तमात्र ही होता है। क्योंकि—

गाथा—3. 'सभी व्यक्ति पहले किये गये कार्यों के फलों के परिणाम को ही पाते हैं। अपराधों (दुखों) और गुणों (सुखों) में तो दूसरा व्यक्ति निमित्त मात्र ही होता है।

इस प्रकार उदास, दुखी वह विद्युत्प्रभा प्रातःकाल में गायों को चराकर, दोपहर में रसरहित, स्वादहीन, ठंडा, रूखा सैकड़ों मक्खियों से युक्त जूठा भोजन करती थी। इस प्रकार दुःखों को भोगती हुई उसके बारह वर्ष व्यतीत हो गये।

किसी एक दिन दोपहर में गायों को चराती हुई गरमी में गरम किरणों से तपी हुई, वृक्षों के अभाव से वृक्ष की छाया से रहित घास युक्त जमीन पर सोयी हुई उस विद्युत्प्रभा के पास एक सांप आया—

गाथा—4. जो अत्यन्त लाल दोनों जीभों को चलाने वाला, काला और समस्त प्राणियों के लिए विकट फुंकार की आवाज से भय उत्पन्न करने वाला था।

नागकुमार के शरीर को छिपाये हुए वह सांप मनुष्य की भाषा में सुन्दर वचनों से उस कन्या को जगाता है और उसके सामने इस प्रकार कहता है—

गाथा—5. 'हे पुत्री ! भय से डरा मैं तुम्हारे पास आया हूँ। मेरे पीछे लगे हुए जो ये सपेरे हैं, वे मुझे बांधकर पकड़ लेंगे।

6. इसलिए तुम अपनी गोद में श्रेष्ठ वस्त्र से अच्छी तरह ढककर इसी समय मेरी रक्षा करो। उसमें क्षण भर भी देर मत करो।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

7. नागकुमार के शरीर को छिपाये हुए मैं गारुड़िय मन्त्र की देवियों की आज्ञा को भंग करने में समर्थ नहीं हूँ। अतः हे पुत्री ! (किसी प्रकार) मेरी रक्षा करो।

8. हे पुत्री ! भय के संदेह को छोड़कर मेरे वचनों के अनुसार उनका पालन करो।' तब दयालु वह कन्या भी उस नाग को अपनी गोद में छिपा लेती है।

तब उसी समय में उसके पीछे ही औषधि-लता हाथ में लिये हुए सपेरे जल्दी-जल्दी आ पहुंचे। उनके द्वारा वह ब्राह्मण की पुत्री पूछी गयी—'हे बालिके ! इस मार्ग में जाते हुए किसी विशाल नाग को क्या तुमने देखा है ? तब वह उत्तर देती है-'हे राजन ! मुझसे क्या पूछते हो ? क्योंकि कपड़े से शरीर को ढके हुए मैं यहाँ पर सोयी हुई थी।' तब वे सपेरे आपस में बात करते हैं —'यदि इस बालिका के द्वारा उस प्रकार का (भयंकर) नाग देखा गया होता तो भय से कांपती हुई हिरणी की तरह यह उठ कर भाग गई होती। अतः यहाँ वह सांप नहीं आया है।' तब आगे-पीछे देखकर कहीं भी उसे प्राप्त न करते हुए, हाथ से हाथ मलते हुए, दाँतों से होठों को काटते हुए, कांतिहीन मुखवाले वे सपेरे लौटकर अपने घरों को चले गये।

तब उस कन्या ने सर्प को कहा-'यहाँ से अब निकल जाओ, तुम्हारे वे शत्रु चले गये।' वह सांप भी उसकी गोद से निकलकर, सर्प रूप को छोड़ कर हिलते हुए कुंडल आदि आभूषणों से युक्त देवस्वरूप को प्रकटकर उसे कहता है—'हे पुत्री ! वर मांगो क्योंकि मैं तुम्हारे उपकार और साहस से संतुष्ट हूँ।'

वह बालिका भी उस प्रकार के चमके हुए शरीर वाले देव को देखकर समस्त अंगों में हर्ष को भरे हुए निवेदन करती है— 'हे तात ! आप यदि सचमुच संतुष्ट हैं तो मेरे उपर छाया कर दें। उससे गरमी से दुखी मैं छाया में सुखपूर्वक बैठी हुई गायों को चराती रहूँगी।' तब उस देव के द्वारा मन में विचार किया गया—'अहो ! यह बेचारी सरल स्वभाववाली है, जो मुझसे भी यह (तुच्छ वर) मांगती है। अतः इसका यह भी इच्छित कार्य कर देता हूँ।' ऐसा सोचकर उस विद्युत्प्रभा के ऊपर छाया से युक्त एक बगीचा (कुंज) बना दिया गया, जो बड़े साल के वृक्षों के फूलों, सुगन्ध आदि से सुन्दर था तथा मीठे फलों के द्वारा जो सदा प्राणियों के समूह को आनन्द पहुँचाता था।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तब देवता ने उसके सामने निवेदन किया - 'हे पुत्री ! जहाँ-जहाँ तुम जाओगी वहाँ-वहाँ मेरे महात्म्य के प्रभाव से यह बगीचा भी तुम्हारे साथ जायेगा। घर आदि पर जाने पर तुम्हारी इच्छा से अपने को समेट कर छाते की तरह यह तुम्हारे ऊपर ठहर जायेगा। और तुम आपत्तिकाल आने पर काम होने पर मुझे स्मरण करना।' ऐसा कहकर वह नागकुमार चला गया।

000

पाठ २५ : वर का निर्णय

हस्तिनापुर नगर में अनेक गुणरूपी रत्नों से युक्त शूर नामक राजपुत्र रहता था। उसकी गंगा नाम की पत्नी थी। उन दोनों के परम सौभाग्यवाले शील आदि गुणों से अलंकृत सुमति नामक पुत्री थी। कर्मों के फल के वश से पिता, माता, भाई एवं मामा के द्वारा वह कन्या अलग-अलग वरों को दे दी गयी (सगाई कर दी गयी)।

एक ही दिन में विवाह करने के लिए आये हुए वे चारों ही वर आपस में झगड़ा करते हैं। तब उनमें भयंकर लड़ाई हो जाने पर बहुत से लोगों के नाश को देखकर वह सुमति कन्या आग में प्रविष्ट हो गयी। अत्यन्त आसक्ति के कारण एक वर भी उसके साथ प्रवेश कर गया। (उनके जल जाने पर) एक वर (दूसरा) (उनकी) हड्डियों को गंगा की धारा में बहाने के लिए ले गया। एक (तीसरा) वर वहीं पर चिता की राख को जलसमूह में डालकर उस कन्या के दुख से मोहरूपी महान् ग्रह से ग्रसित होकर पृथ्वीमण्डल में घूमने लगा। चौथा वर वहीं पर स्थित होकर उस स्थान की रक्षा करता हुआ और प्रतिदिन वहाँ अन्न का एक पिण्ड डालता हुआ समय व्यतीत करने लगा।

इसके बाद वह तीसरा वर पृथ्वीतल पर घूमता हुआ किसी गांव में रसोईघर में भोजन बनवाकर जीमने के लिए बैठा था। उस घर की मालकिन उसे परोस रही थी। तभी उसका छोटा पुत्र अत्यन्त रोने लगा। तब क्रोध के बढ़ जाने से उस स्त्री ने उस बालक को अग्नि में डाल दिया। (यह देखकर) वह वर भोजन करते हुए उठने लगा। तब वह स्त्री कहती है —'सन्तान किसी के लिए अप्रिय नहीं होती है। क्योंकि जिनके लिए माता-पिता अनेक देवताओं की पूजा, दान, मंत्र-जाप आदि क्या-क्या नहीं करते हैं। तुम सुख-पूर्वक भोजन करो। मैं बाद में इस बच्चे को जीवित कर लूँगी।'

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तब भी वह भोजन करके शिघ्र उठ गया। तभी उस स्त्री ने अपने घर के भीतर से अमृतरस की कुपिया लाकर अग्नि में छिड़काव किया। उससे हँसता हुआ बालक निकल आया। माता ने उसे गोद में ले लिया।

तब वह ध्यान करता है—'अहो ! आश्चर्य है, आश्चर्य है जो इस प्रकार अग्नि में जले हुए को भी जीवित कर लिया गया। यदि यह अमृतरस मेरे पास हो तो मैं भी उस कन्या को जीवित कर दूँ।' इस प्रकार सोचकर वह धूर्तता से कपटवेश धारण कर रात्रि में वहीं ठहर गया। अवसर पाकर उस अमृत-कुपिया को लेकर वह हस्तिनापुर आ गया।

फिर उस वर ने पिता आदि के सामने चिता के बीच में अमृतरस को डाला। वह सुमति कन्या अलंकारों सहित जीवित होती हुई उठ आयी। तब उसके साथ एक वर भी जीवित हो गया।

कर्मों के वश से फिर वे चारों वर एक ही स्थान पर इकठ्ठे हो गये। वे कन्या के साथ विवाह करने के लिए झगड़ते हुए बालचन्द्र राजा के दरबार में गये। चारों ने राजा से अपना-अपना वृतान्त कहा। राजा ने मन्त्रियों से कहा कि— 'इनके झगड़े को निपटाकर किसी एक वर को प्रमाणित करो।'

सभी मन्त्री आपस में विचार करते हैं, किन्तु किसी से वह झगड़ा नहीं निपटा। तब एक मन्त्री ने कहा यदि आप सब स्वीकार करें तो मैं इस झगड़े को निपटाता हूँ।

उन्होंने कहा- 'जो राजहंस की तरह गुण-दोषों की परीक्षा करके पक्षपात से रहित विवाद को निपटाता है उसके वचन को कौन नहीं मानता ?'

तब उस मन्त्री ने कहा—'जिस वर के द्वारा कन्या जीवित की गयी है वह वर उसे जन्म देने में कारण होने से उसका पिता हो गया। जो वर उस कन्या के साथ जीवित हुआ है वह जन्म-स्थान एक होने के कारण कन्या का भाई हो गया। जो वर उसकी अस्थियों को गंगा में डालने गया था वह मृत्यु के बाद पुण्य-कार्य करने वाला होने से कन्या का पुत्र हो गया। किन्तु जिस वर के द्वारा उस स्थान की रक्षा की गया वह वर (रक्षा करने के कारण) पति हुआ।'

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार मन्त्री के द्वारा झगड़ा निपटा देने पर रूपचन्द्र नामक चौथे वर के साथ वह कन्या व्याह दी गयी। क्रमशः वह अपने नगर को लौट आया। बाद में उस कन्या के प्रभाव से उसी नगर में ही वह राजा बन गया। क्योंकि—

गाथा-1. कहीं पर वर के पुण्य से, कहीं पर महिला के सत्पुण्यों के योग से और कहीं पर दोनों के पुण्य से समृद्धि प्राप्त होती है।

000

पाठ २६ : श्रेष्ठतम पुतली

एक बार राजा भोज की सभा में कोई एक विदेशी आया। तब उस सभा में कालिदास आदि अनेक विद्वान् थे। वह विदेशी राजा को प्रणाम करके कहता है - 'हे राजन्! आपकी सभा को अनेक श्रेष्ठ विद्वानों से अलंकृत जानकर तीन पुतलियों के मूल्य कराने के लिए मैं आपके समीप में आया हूँ।'

ऐसा कहकर वह समान ऊँची, समान रंग और समान रूप वाली तीन पुतलियों को राजा के हाथ में देकर कहता है- 'यदि श्रीमान्, आपके श्रेष्ठ विद्वान् इनके उचित मूल्य को (निश्चित) कर देंगे तो आज तक अन्य राजाओं की सभाओं में लोगों के द्वारा जो मैंने विजय से अंकित एक लाख चांदी की मुद्राएं प्राप्त की हैं वे उन्हें दी जायेंगी। अन्यथा विजय के चिन्ह से अंकित एक लाख स्वर्ण मुद्राएं आपसे मैं ग्रहण करूंगा।'

राजा के द्वारा वे पुतलियां मूल्य-निर्धारण करने के लिए विद्वानों को दी गयीं। कोई विद्वान् कहता है- 'हे मणिकार! तुम कसौटी से इन पुतलियों के स्वर्ण की परीक्षा कर लो। और तराजू पर रखकर उनका मूल्य अंकित कर दो।' तब वह विदेशी थोड़ा हंसकर कहता है- 'इस प्रकार से मूल्य-निर्धारण करने वाले तो संसार में बहुत हैं। इनका सच्चा मूल्य यदि हो सके तो उसके लिए राजा भोज की सभा में मैं आया हूँ। ऐसा सुनकर पंडित लोग पुतलियों को हाथ में लेकर उन्हें अच्छी तरह देखते हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु पुतलियों के रहस्य को जानने में समर्थ नहीं होते हैं। तब क्रोधित राजा कहता है— 'क्या इतनी बड़ी सभा में कोई भी इनका मूल्य बताने के लिए समर्थ नहीं है ? तुम सब को धिक्कार है।'

तब कालिदास कहता है— 'तीन दिन के भीतर मैं इनका मूल्य अवश्य बता दूँगा।' ऐसा कहकर वह पुतलियों को लेकर घर चला गया। बार-बार उनको देखकर वह बहुत विचार करता है। सूक्ष्म दृष्टि से उनको देखता है। तब उन पुतलियों के कान में वह छेदों को देखता है। देखकर उन छेदों में पतला तार डालता है। इस प्रकार तार डालकर उन सबको देखकर उन पर मूल्य अंकित कर देता है। तीसरे दिन के अन्त में राजा की सभा में जाकर राजा के सामने क्रमशः उनको रखकर उस कालिदास (पंडित) ने कहा- 'पहली पुतली का मूल्य मात्र एक कौड़ी है। दूसरी का एक रुपया तथा तीसरी का मूल्य एक लाख रुपये है।' उस मूल्य को सुनकर सारी सभा आश्चर्ययुक्त हो गयी।

उस विदेशी ने कहा— 'इस विद्वान् ने सच्चा मूल्य बता दिया है। मैं भी उसी का अनुमोदन करता हूँ।' तब राजा कालिदास को पूछता है— 'समान आकार, रंग और रूप वाली इन पुतलियों के अलग-अलग मूल्य क्यों कहे हैं ? ऐसा पूछने पर कालिदास कहता है— 'हे राजन् ! मैंने पहली पुतली का मूल्य मात्र एक कौड़ी कहा है। क्योंकि इसके कान में एक तार डाला तो वह दूसरे कान के छेद से बाहर निकल गया। अतः यह पुतली उपदेश देती है कि "संसार में धर्म (अच्छी बातों) को सुनने वाले तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम श्रोता ऐसा होता है कि जो आत्म-कल्याण के वचन को सुनता है, सुनकर उसे दूसरे कान से निकाल देता है। उस वचन के अनुसार स्वयं आचरण नहीं करता है। उस श्रोता को पहली पुतली की तरह जानना चाहिए, उसका कोई मूल्य नहीं है। अतः मैंने प्रथम श्रोता के समान पहली पुतली का मूल्य मात्र एक कौड़ी कहा है।'

'दूसरी पुतली के कान में डाला हुआ तार उसके मुख से निकल गया। वह ऐसा कहती है कि संसार में कुछ श्रोता ऐसे होते हैं जो आत्महित के वचनों को सुनते हैं,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरों को उपदेश देते हैं, किन्तु स्वयं धार्मिक कार्यों में संलग्न नहीं होते हैं। ऐसे श्रोताओं को दूसरी पुतली के समान जानना चाहिए।" इसलिए मैंने दूसरी पुतली का मूल्य मात्र एक रुपया कहा है।'

'तीसरी पुतली के कान में डाला गया तार बाहर नहीं निकला, परन्तु उसके हृदय में उतर गया। वह पुतली यह शिक्षा देती है—"कुछ समझदार जीव मेरे समान होते हैं, जो परलोक के हितकारी वचनों को अच्छी तरह सुनते हैं और धर्म के कार्यों में यथाशक्ति संलग्न रहते हैं। ऐसे श्रोताओं को तीसरी पुतली के समान जानना चाहिए।" इसलिए मैंने तीसरी पुतली का मूल्य एक लाख रुपया बताया है।'

कालिदास के ऐसे कथन को सुनकर राजा भोज एवं अन्य पंडित भी संतुष्ट हुए। वह पराजित विदेशी दुखी मन से उन एक लाख चांदी की मुद्राओं को राजा के आगे रख देता है। राजा उस सब को कालिदास को अर्पित कर देता है।

000

पाठ २७ : परोपकारी पक्षी

तब उसके पुण्य से प्रेरित कोई एक तोता कहीं से आकर आम्रवृक्ष की शाखा पर बैठा। कुम्हलाये हुए मुखकमल वाली वीरमती को देखकर परोपकार में संलग्न वह तोता मनुष्य की भाषा में उससे कहता है—'हे सुन्दरी ! तुम क्यों रो रही हो ? बसन्त ऋतु की क्रीड़ा के मनोरंजन को छोड़कर दुःख से दुखी क्यों दिख रही हो ? मुझे अपना दुःख कहो।'

उस वीरमती ने तोते से ऐसे वचन सुनकर ऊपर देखा। मनुष्य की भाषा में बोलने वाले उस श्रेष्ठ तोते को देखकर कौतुहल से युक्त हो मौन त्यागकर वह कहती है—'हे पक्षी ! मेरे मन की भावना को जानकर तुम क्या करोगे ? क्योंकि—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गाथा—1. फल खाने वाले, आकाश में हमेशा घूमने वाले, जगल में रहने वाले, विवेक से रहित तुम एक छोटे पक्षी हो।

'यदि तुम मेरे दुःख को दूर करने वाले होते तो तुम्हारे सामने रहस्य का कथन करना उचित है। जो अज्ञानी अपने रहस्य वृतान्त को दूसरों से कहता है वह केवल अपमान के स्थान को ही पाता है। क्योंकि कहा भी है—

गाथा—2. जो अज्ञानी जिस-किसी व्यक्ति को अपना रहस्य कहता है वह पद-पद पर अपने कार्य की हानि और विपत्ति को ही पाता है।

अतः रहस्य के वृतान्त को न उघाड़ना ही अच्छा है।'

तब वह तोता कहता है—'हे महादेवी ! इस प्रकार की शंका करने से क्या लाभ ? क्योंकि पक्षी जिस-जिस कार्य को कर देते हैं उसे करने में मनुष्य भी असमर्थ हैं।' यह सुनकर विस्मित मन वाली वह कहती है—'हे तोते ! झूठ बोलते हुए लज्जित क्यों नहीं होते हो ? ज्ञान से रहित पक्षी जाति मनुष्य से कैसे चतुर हो सकती है ?

तब तोते ने कहा—'हे देवी ! संसार में पक्षियों के समान कौन है ? तीनों खण्डों के स्वामी वासुदेव विष्णु का वाहन पक्षीराज गरुड़ है। कवियों के मुख की शोभा, वर प्रदान करने वाली, अज्ञान का अपहरण करने वाली भगवती सरस्वती हंस (पक्षी) के वाहन पर ही सुशोभित होती है। यहाँ पर उनकी शोभा का कारण पक्षी ही है। एक सेठ की, कामबाण की बाधा को न सहने वाली किसी प्रियतमा के शील की रक्षा एक तोते ने नयी-नयी कथाओं को सुनाकर की थी, क्या तुमने यह नहीं सुना है ? राजा नल और दमयन्ती का सम्बन्ध कराने वाला एक हंस ही था। इस प्रकार संसार में पक्षियों के द्वारा अनेक उपकार किये गये हैं। अक्षरमात्र को पढ़ने वाले पक्षी भी जीवदया का पालन करते हैं। आगम में भी तिर्यन्चों (पशु-पक्षियों) को पांचवें गुणस्थान का अधिकारी कहा गया है। हम यद्यपि आकाश में चलने वाले होते हैं, किन्तु फिर भी शास्त्रों के सार को जानने वाले होते हैं। अपनी जाति की प्रशंसा उचित है, किन्तु दूसरों को हीन समझना ठीक नहीं है।'

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शुकराज के ऐसे वचन सुनकर आनन्दित मन वाली वीरमती कहती है— 'हे शुकराज ! तुम सत्य बोलने वाले विद्वान् हो । तुम्हारे इन वचनों के कथन से पुलकित शरीर वाली मैं तुम्हें अपने जीवन से भी श्रेष्ठ मानती हूँ । इस उपवन में तुम्हारा आगमन अपनी इच्छा से हुआ है अथवा अन्य किसी की प्रेरणा से ?'

वह तोता कहता है – 'किसी विद्याधर के द्वारा स्नेहपूर्वक पाला हुआ मैं पिंजड़े में रख दिया गया था । उसके आदेश से समस्त कार्यों को करता हुआ मैं उसके चित्त का मनोरंजन करता था । एक बार मुझे लेकर वह विद्याधर मुनि की वंदना करने के लिए गया । मुनीन्द्र को हाथ जोड़कर प्रणामकर वह उनके सामने बैठ गया । मुनिवर के दर्शन से पाप रहित मैं भी उनका ही ध्यान करता हुआ वहाँ रुका । मुनिवर ने मधुर भाषा में धर्मोपदेश दिया । उपदेश के अन्त में पिंजड़े में स्थित मुझे देखकर उन्होंने कहा– 'जो व्यक्ति तिर्यन्चों (पशु-पक्षी) को बांधकर रखने में आसक्त होता है उसे महापाप होता है । उसके हृदय में दया नहीं होती है । दया के बिना धर्म की सिद्धि कैसे होगी ? बन्धन में पड़े हुए प्राणी बहुत अधिक दुख का अनुभव करते हैं । अतः धर्म चाहने वाले लोगों के द्वारा किसी भी प्राणी को बन्धन में नहीं डालना चाहिए । सबको (स्वतन्त्रता का) सुख प्रिय है । कहा भी है—

गाथा— 3. 'सभी प्राणी सुख में रहना चाहते हैं, सभी प्राणी दुःख से दुखी होते हैं । अतः सुख चाहने वाला व्यक्ति दूसरों को भी सुख देता है । सुख प्रदान करने वाले सुखों को प्राप्त करते हैं ।'

इत्यादि वचनों से प्रतिबोधित उस विद्याधर ने व्रत-नियमों को ग्रहण किया और बन्धन से मुझे मुक्त कर दिया । तब मैं उन मुनीन्द्र को नमनकर उनके उपकार को स्मरण करता हुआ कई वनों को पार करता हुआ, आनन्दित होता हुआ यहाँ आकर आम्र के वृक्ष की शाखा पर बैठा और तुम्हारे द्वारा देखा गया । इसलिए हे देवी ! मेरे सामने कुछ भी गोपनीय नहीं है, झूठ नहीं कहता हूँ । तुम्हारी चिन्ता को अवश्य दूर करूँगा ।'

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ २८ : साधु - जीवन

थोड़ा हंसकर सफेद दाँतों की पंक्ति को दिखाने वाले राउल ने कहा—'इसमें खेद का विषय नहीं है। माता-पिता से बढ़कर और क्या श्रेष्ठ है ? उनकी सेवा तो देवता की सेवा है। उनका दर्शन तो देव-दर्शन है। उनकी आज्ञा मानना देव-आज्ञा का पालन करना है। कीड़े की तरह कुल को आग लगाने वाले उस पुत्र से क्या लाभ, जो अपने माता-पिता के लिए सुख देने वाला नहीं होता। किन्तु यह कार्य तुम्हारे जैसे गृहस्थों का नहीं है, अपितु मेरे जैसे योगियों के लिए तो इस कार्य को सम्पन्न करना बांये हाथ का खेल है।'

'हे सुकुमार शेखर ! गृहस्थ लोगों के लिए हेमन्त ऋतु अनुकूल नहीं है। जब (इस ऋतु में) जगत् को कंपाने वाली उत्तरी अत्यन्त शीतल तेज हवा चलती है तब कौन सुखी गृहस्थ घर से निकलता है ? अनेक ऊनी वस्त्र पहिनकर, शक्तिदायक औषधियों से मिश्रित विशेष प्रकार के मिष्ठान्न को खाकर, स्त्री और पुत्रों से घिरा हुआ, अग्नि के पास बैठा हुआ व्यक्ति (हेमन्त के) दिनों को व्यतीत करता है। उस हेमन्त ऋतु में आसक्तिरहित, जटाधारी, श्रमण, तापस, फटे वस्त्र वाला अथवा दिगम्बर साधु वृक्ष के नीचे ठहर कर भी आनन्दपूर्वक ध्यान करता है, और परम इष्टदेव को स्मरण करता है, भूख को सहन करता है और सुखपूर्वक शीतकाल को व्यतीत करता है।

इसी प्रकार सांसारिक (भोगी) लोगों के लिए ग्रीष्मकाल भी अनुकूल नहीं है। उस समय सूर्य अत्यन्त तीव्र किरणों से तपता है। धरती अग्नि की तरह हो जाती है। सारा वातावरण तपा हुआ हो जाता है और न सहने योग्य हवा चलने लगती है। बार-बार पोंछने पर भी पसीना नहीं सूखता है। प्यास से व्याकुल ओंठ, तालु, कंठ अच्छी तरह से पानी पीने पर भी 'पानी कभी नहीं पिया है' ऐसा अनुभव करते हैं। उस गरमी में सभी भोग सामग्री को प्राप्त अनेक तरह के शीतल-पेय को पीता हुआ वातानुकूलित घर में रहता हुआ कौन पुण्यवान् व्यक्ति घर को छोड़ना चाहेगा ? ऐसी ग्रीष्मऋतु में भी मुनि जहाँ कहीं पर ठहरकर जो कुछ भी ठंडा-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गरम खाता हुआ, गरम पानी पीता हुआ, बिना बिछौने के गरम भूमि पर सोता हुआ परम प्रसन्न दिखायी देता है। जो साधु हमेशा परमात्मा का स्मरण करता रहता है उसे ग्रीष्मकाल की गरमी का अनुभव क्यों होगा ? जिसके लिए (सुख की) सभी बाहरी वस्तुएं त्याज्य हैं उस साधु के लिए सुख-दुःख की कल्पना क्या करना ? अहो ! मुनियों का मार्ग विचित्र ही है।

इसी प्रकार ज्येष्ठ आश्रम वालों (गृहस्थों) के लिए वर्षा का समय भी सुखकारी नहीं है। जब बादल बरसते हैं तब इधर-उधर सूर्य छिपने से घना अंधकार हो जाता है। हृदय को कंपाने वाली बिजली चमकने लगती है। गर्जन करता हुआ मेघ का शब्द कान के छेद को फाड़ने लगता है। गलियाँ कीचड़ युक्त हो जाती हैं। नदियाँ एवं नाले वेग से बहने लगते हैं। जब (बादलों में) छिपा हुआ सूर्य भी भीतरी गर्मी का अनुभव करता है (अर्थात् बाहर से ठंडा हो जाता है) तब उस वर्षा ऋतु में अपनी पत्नी से रहित कौन व्यक्ति सुखी रहने में समर्थ होगा ? भाग्य से परवश प्रवास में रहने वाला कोई व्यक्ति भी रात-दिन घर को याद करता रहता है। विदेश गये पति से रहित कोई मानिनी पत्नी भी पपीहा के 'पिउ-पिउ' शब्द से पति को याद करती हुई अत्यन्त आन्तरिक पीड़ा का अनुभव करती है।

ऐसी उस वर्षा ऋतु में भी पानी भोजन का त्याग कर पर्वतों और गुफाओं में रहने वाले, शरीर और मन की समस्त चिन्ताओं से रहित सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन से बढ़े हुए तेज वाले, ध्यान में लीन साधु-मुनि अपूर्व एवं बाधारहित सुख का अनुभव करते हुए समय व्यतीत करते हैं। अतः मुनियों के लिए सभी ऋतुएं अनुकूल होती हैं।

000

पाठ २९ : नौकर की कर्तव्य बुद्धि

शकार— यह बूढ़ा सुअर (विट) अधर्म से डरने वाला है। अच्छा, (अब) स्थावरक (नामक) चेट (अपने नौकर) को मनाता हूँ। हे पुत्र ! स्थावरक ! चेट ! (तुम्हें) सोने के कंगन दूँगा।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चेट — मैं भी पहन लूँगा ।

शकार — तुम्हें सोने का पीढ़ा (आसन) बनवा दूँगा ।

चेट — मैं (उस पर) बैठ जाऊँगा ।

शकार — तुम्हें सब बचा हुआ (जूठा) भोजन दूँगा ।

चेट — मैं भी उसे खा लूँगा ।

शकार — (तुम्हें) सभी नोकरों में प्रधान बना दूँगा ।

चेट — हे स्वमी ! मैं (प्रधान) बन जाऊँगा ।

शकार — तो तुम मेरे (एक) आदेश का पालन कर दो ।

चेट — हे स्वामी ! अनुचित कार्य को छोड़कर सब (काम) कर दूँगा ।

शकार — अनुचित कार्य की तो (उसमें) गन्ध भी नहीं है ।

चेट — हे स्वामी ! तब कहिए ।

शकार — इस वसन्तसेना को मार दो ।

चेट — हे स्वामी ! प्रसन्न हों । मुझ अनार्य (नीच व्यक्ति) के द्वारा गाड़ी बदल जाने के कारण आर्या (वसन्तसेना) को पहले ही यहाँ ला दिया गया है । (अब मैं और अनर्थ नहीं कर सकता हूँ) ।

शकार — अरे चेट ! क्या तुम्हारे ऊपर मेरा अधिकार नहीं है ?

चेट — हे स्वामी ! (आपका) अधिकार है– (मेरे) शरीर पर, किन्तु (मेरे) चरित्र पर नहीं । अतः हे स्वामी ! (मेरे ऊपर आप) कृपा करें, कृपा करें । (मुझे हत्या करने का आदेश न दें) क्योंकि मैं डरता हूँ ।

शकार — तुम मेरे नौकर होकर किससे डरते हो ?

चेट — हे स्वामी ! परलोक (के भय) से ।

शकार — वह परलोक क्या है ?

चेट — हे स्वामी ! अच्छे (पुण्य) और बुरे कर्मों (पाप) का फल (परलोक है) ।

शकार — पुण्य का फल कैसा होता है ?

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चेट — जैसे कि आप अनेक आभूषणों से अलंकृत हैं (यह आपके पुण्य का फल है)।

शकार — पाप का (फल) कैसा होता है ?

चेट — जैसे कि मैं दूसरों का अन्न खाने वाला (नौकर) हुआ हूँ (यह मेरे पाप कर्मों का फल है)। अतः अब कोई अनुचित कार्य नहीं करूँगा।

शकार — अरे ! (तुम वसन्तसेना को) न मारोगे ?
(ऐसा कहकर शकार नौकर को अनेक प्रकार से मारता है)

चेट — हे स्वामी ! मुझे आप पीटें, हे स्वामी ! मुझे आप मार दें तब भी दुष्कार्य नहीं करूँगा। क्योंकि—
भाग्य (पूर्व जन्मों के पापों) के दोषों से मैं जन्म से ही आपका दास बना हूँ। अतः अब (वसन्तसेना को मारकर) अधिक पाप नहीं करूँगा। इसलिए मैं अनुचित कार्य को त्यागता हूँ।

000

पाठ ३० : अंगूठी की प्राप्ति

(इसके बाद नगर का कोतवाल प्रवेश करता है और उसके पीछे-पीछे बंधे हुए मछुआरे को पकड़े हुए दो सिपाही)।

दोनों सिपाही – (पीटकर) अरे चोर ! बता, कहाँ पर तुमने इस मणि-जड़ित एवं खुदे हुए नाम वाली राजकीय अंगूठी को प्राप्त किया है ?

पुरुष – (भय का अभिनय करते हुए) हे महानुभाव ! मुझ पर प्रसन्न हों। मैं ऐसा (चोरी का) काम करने वाला नहीं हूँ।

प्रथम सिपाही – तो क्या तुम उत्तम ब्राह्मण हो, ऐसा मान करके राजा के द्वारा दान में (यह अंगूठी) दी गयी है ?

पुरुष – इस समय (मेरी बात) सुनिये। मैं शुक्रावतार (नदी के तट) के भीतर रहने वाला धीवर (मछुआरा) हूँ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय सिपाही– अरे चोर ! क्या हम लोगों के द्वारा (तुम्हारी) जाति पूछी गयी है ?

कोतवाल – अरे सूचक ! क्रमवार उसे सब कुछ कहने दो । उसे बीच में टोको मत ।

दोनों सिपाही– श्रीमान् जी ! जो आज्ञा दें । (मछुआरे) से आगे बता ।

पुरुष – मैं जाल से निकलने वाली एवं अन्य रूप से मछलियों को पकड़ने के धन्धे (उपाय) से (अपने) परिवार का भरण-पोषण करता हूँ ।

कोतवाल – (मुस्कराकर) तब तो (तुम्हारी) बड़ी पवित्र आजीविका है ।

पुरुष -- हे स्वामी ! ऐसा न कहें । क्योंकि—
जन्म से (परिवार में) चले आ रहे निन्दित कार्य को भी सहजता से छोड़ देना बड़ा कठिन है । अनुकम्पा से दयालु यज्ञ करने वाला ब्राह्मण भी पशुबलि करते समय कठोर हो जाता है ।

कोतवाल -- अच्छा आगे क्या हुआ ?

पुरुष -- एक दिन जब मेरे द्वारा रोहित मछली के टुकड़े किये गये, तब उसके पेट के भीतर रत्न से चमकती हुई यह अंगूठी (मेरे द्वारा) देखी गयी । बाद में उसी अंगूठी को बेचने के लिए दिखाते हुए मैं आप महानुभावों के द्वारा पकड़ लिया गया हूँ । अतः आप मुझे मारें, चाहें छोड़ दें, इस अंगूठी के मिलने का यही वृतान्त है ।

कोतवाल -- जानुक ! कच्चे मांस की गंध वाला यह आदमी निश्चित ही मछुआरा ही है । अंगूठी मिलने का उसका वृतान्त भी विचारणीय है (ठीक लगता है) । अतः अब हम लोग राज-दरबार में ही चलें ।

दोनों सिपाही– ठीक है, ऐसा ही करें । अरे गिरहकट (चोर) ! चल ।

000

पाठ ३१ : कवि-गोष्ठी

राजा -- काव्य के कथनों की कुशलता से तथा रीतियों (काव्य-शैली) के अनोखेपन से विचक्षणा (नामक दासी) सचमुच विचक्षणा (विदुषी) है ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए अन्य (कवि से) क्या, यह ही कवियों में शिरमौर के रूप में स्थित है।

विदूषक — (कोधपूर्वक) तो सीधे ही क्यों नहीं कहा जाता है कि— काव्य-रचना में विचक्षणा अति श्रेष्ठ एवं कपिंजल ब्राह्मण (मैं) अत्यन्त निम्न है।

विचक्षणा — हे आर्य क्रोध न करें। (तुम्हारा) काव्य ही तुम्हारे कवित्व को सूचित कर रहा है। क्योंकि अपनी पत्नी को आनन्दित करने वाले (तुम्हारे काव्य के) अर्थ निन्दनीय हैं। (उन अर्थों के साथ) तुम्हारी सुकुमार वाणी उसी तरह एकदम सुन्दर नहीं लगती है, जिस तरह लटके हुए स्तनों वाली स्त्री के लिए चोली और कानी स्त्री के लिए काजल की रेखा सुन्दर नहीं लगती है।

विदूषक — किन्तु तुम्हारे काव्य के रमणीय अर्थ होने पर भी उसकी शब्दावली सुन्दर नहीं है। सोने की करधनी में लोहे के घुंघरू-समूह की तरह, उल्टे कपड़े पर कढ़ाई के काम के समान और गोरी स्त्री के चन्दन के लेप के समान (तुम्हारी शब्दावली) सुन्दरता को प्राप्त नहीं करती है। फिर भी तुम प्रशंसित हो रही हो।

विचक्षणा — हे आर्य! क्रोध न करें। आपके साथ मेरी क्या बराबरी? क्योंकि आप नाराच (छोटी तराजू पर रखी जाने वाली चमु) के समान निरक्षर (मूर्ख) होते हुए भी रत्नों को तौलने में लगे हुए हो। किन्तु मैं बड़ी तराजू के समान लब्धाक्षर (विदुषी) होते हुए भी सोने के तौलने में भी नियुक्त नहीं होती हूँ। (अर्थात् तुम राजा के मित्र हो और मैं दासी हूँ)।

विदूषक — इस प्रकार मुझ पर हँसती हुई तेरे बाँये और दाहिने युधिष्ठिर के बड़े भाई (कर्ण) के नाम वाले अंग (कान) को जल्दी ही उखाड़कर फेंक दूँगा।

विचक्षणा — मैं भी उत्तर फाल्गुनी के बाद आने वाले नक्षत्र के नाम वाले (हस्त) तेरे अंग (हाथ) को जल्दी ही तोड़ दूँगी।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा — हे मित्र ! इस प्रकार मत झगड़ो (कहो) । यह (विचक्षणा) कवित्व में स्थाप्ति है ।

विदूषक — (क्रोध सहित) तब सीधे ही क्यों नहीं कह दिया जाता है कि हमारी (यह) दासी हरिवृद्ध, नन्दिवृद्ध, पोट्टिश, हाल आदि (प्राकृत कवियों) के समाने भी श्रेष्ठ कवि है ।

000

पाठ ३२ : प्राकृत अभिलेख

१. जीव-दया = मांस-भक्षण का निषेध

1. यह धर्मलिपि देवताओं के प्रिय, प्रियदर्शी राजा (अशोक) द्वारा लिखायी गयी ।
2. यहाँ पर कोई जीव मारकर हवन न किया जाय ।
3. और न समाज (दोषपूर्ण आयोजन) किया जाय ।
4. क्योंकि बहुत दोष समाज में देवानांप्रिय, प्रियदर्शी राजा देखता है ।
5. ऐसे भी एक प्रकार के समाज हैं, जो देवानांप्रिय, प्रियदर्शी राजा के मत में साधु (निर्दोष) हैं ।
6. पहले देवानांप्रिय, प्रियदर्शी राजा की पाकशाला (रसोइ) में प्रतिदिन कई लाख प्राणी सूप (सब्जी आदि) के लिए मारे जाते थे ।
7. ये तीन प्राणी भी पीछे (आगे चलकर) नहीं मारे जायेंगे ।

२. लोकोपकारी कार्य

1. देवानांप्रिय, प्रियदर्शी राजा के राज्य में सर्वत्र, इसी प्रकार प्रत्यन्तों में— चोल, पाण्डय, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी तक यवनराजा अन्तियोक, उस अन्तियोक के समीप जो राजा हैं, (वहाँ) सर्वत्र, देवानांप्रिय, प्रियदर्शी राजा की

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दो (प्रकार की) चिकित्साएं व्यवस्थित हैं— मनुष्यों की चिकित्सा और पशुओं की चिकित्सा।

2. मनुष्योपयोगी और पशूपयोगी जो औषधियाँ जहाँ-जहाँ नहीं हैं (वे) सब जगह लायी गयी हैं और रोपी (उत्पन्न की) गयी हैं।

3. और मूल (जड़ें) तथा फल जहाँ जहाँ नही हैं (वे) सब जगह लाये गये हैं।

4. पशु और मनुष्यों के उपयोग के लिए पंथों (रास्तों) में कुए खोदे गये हैं और वृक्ष रोपे गये हैं।

३. समन्वय ही श्रेष्ठ है

1. देवानांप्रिय, प्रियदर्शी राजा सभी धार्मिक सम्प्रदायों और प्रव्रजितों (साधु-जीवन वालों) और गृहस्थों को पूजता है तथा वह दान और विविध प्रकार की पूजा से (उन्हें) पूजता है।

2. किन्तु दान और पूजा को देवानांप्रिय उतना नहीं मानता, जितना इस बात को (महत्त्व देता है) कि सभी सम्प्रदायों के सार (तत्व) की वृद्धि हो।

3. सार-वृद्धि कई प्रकार की होती है। किन्तु उसका यह मूल है— वचन का संयम। कैसे ? अनुचित अवसरों पर अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा और दूसरों के सम्प्रदाय की निन्दा नहीं होनी चाहिए।

4. किसी-किसी अवसर पर (कारण से) हलकी (आलोचना) होनी चाहिए। किन्तु उन-उन प्रमुख कारणों से दूसरे सम्प्रदाय पूजे जाने चाहिए। ऐसा करते हुए (मनुष्य) अपने सम्प्रदाय को बढ़ाता है तथा दूसरे सम्प्रदाय का उपकार करता है।

5. इसके विपरीत करता हुआ (व्यक्ति) अपने सम्प्रदाय को क्षीण करता है और दूसरे सम्प्रदाय का भी अपकार करता है—

6. जो कोई (व्यक्ति) अपने सम्प्रदाय की पूजा करता है तथा दूसरे सम्प्रदाय की निन्दा करता है— सब अपने सम्प्रदाय की भक्ति (पक्ष) के कारण। कैसे ? कि किस प्रकार अपने सम्प्रदाय का प्रचार (दीपन) किया जाय। वह ऐसा करता हुआ अपने सम्प्रदाय की बहुत हानि करता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

7. इसलिए (समवाय) ही साधु (श्रेष्ठ) है। कैसे ? एक दूसरे के धर्म को सुनना और सुनाना चाहिए। ऐसी ही देवानांप्रिय की इच्छा है। कैसी ? कि सभी सम्प्रदाय बहुश्रुत हों और कल्याणगामी हों।

8. जो अपने अपने सम्प्रदाय में अनुरक्त हों, वे (दूसरे से) कहें—देवानांप्रिय दान और पूजा को उतना नहीं मानते जितना कि इस बात को कि सब सम्प्रदायों में सार की वृद्धि हो।

9. इस प्रयोजन के लिये बहुत से धर्ममहामात्र, और स्त्री-अध्यक्ष-महामात्र, व्रज-भूमिक (यात्री-रक्षक) और अन्य (अधिकारी) वर्ग नियुक्त हैं। इसका यह फल है कि अपने सम्प्रदाय की वृद्धि और धर्म का दीपन (प्रचार) होता है।

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अपठित प्राकृत गद्यांश

१. कुवलयचंदस्स पउत्ती

णयरीए उण तिय-चउक्क-चच्चर-महापह-रच्छामुह-गोउरेसु 'हा कुमार, केण णीओ, कत्थ गओ, कत्थ पाविओ, हा को उण सो तुरंगमो दारुणो त्ति । सव्वहा तं होहिइ जं देवयाओ इच्छंति' त्ति । तरुणियणो-'हा सुहय, हा सुंदर, हा सोडिय, हा मुद्धड, हा वियड्ढ, हा कुवलयचंद-कुमार कत्थ गओ त्ति । सव्वहा कुमार, तुह विरहे कायरा इव पउत्थवइया' । णयरी केरिसा जाया ।

उवसंत-मुरय-सद्दा संगीय-विवज्जिया सुदीण-जणा ।
झीण-विलासासोहा पउत्थवइय व्व सा णयरी ।।१।।

तओ कुमार, एरिसेसु य दुक्ख-वोलावियव्वेसु दियहेसु सोय-विहले परियणे णिवेइयं पडिहारीए महाराइणो 'देव, को वि

पूसराय-मणि-पुंज-सच्छहो पोमराय-मणि-वण्णो ।
किं पि पियं व भणंतो दट्ठुं कीरो महइ देवं ।।२।।

तं च सोऊण राइणा 'अहो, कीरो कयाइ किं पि जाणइ त्ति दे पेसेसु णं' उल्लविए, पहाइया पडिहारी पविट्ठा य, मग्गालग्गो रायकीरो । उवसप्पिऊण भणियं रायकीरेण । अवि य ।

'भुंजसि पुणो वि भुंजसु उयहि-महामेहलं पु इ-लच्छिं ।
वड्ढसि तहा वि वड्ढसु णरणाह ! जसेण धवलेणं ।।३।।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भणिए, णरवइणा अउव्व-दंसणायण्णेण-विम्हय-वस-रस-समुससंत-रोमंच-कंचुय-च्छविणा भणियं 'महाकीर, तुमं कओ, केण वा कारणेण इहागओ सि' त्ति । भणियं च रायसुएणं 'देव. वड्ढसि कुवलयचंद कुमार-पउत्तीए, त्ति भणियमेत्ते राइणा पसरंतंतर-सिणेह-णिब्भर-हियएण पसारिओभय बाहु-डंडेण गहिओ करयलेण, ठाविओ उच्छंगे । भणियं च राइणा 'वच्छ' कुमार-पउत्ती,संपायणेण कुमार-णिव्विसेस-दंसणो तुमं । ता दे साह मे कुमारस्स सरीर-वट्टमाणी । कत्थ तए दिट्ठो, कहिं,वा कालंतरम्मि, कत्थ वा पएसे, केच्चिरं वा दिट्ठस्स' त्ति । एवं च भणिए भणियं कीरेण 'देव' एत्तियं ण याणामि, जं पुण जाणामि तं साहिमो त्ति ।

अत्थि इओ अइदूरे णम्मया णाम महाणई । तीय य दाहिणे कूले देयाडई णाम महाडई । तीए देयाडईए मज्झे णम्मयाए णाइदूरे विंझ-गिरिवरस्स पायासण्णे अणेय-सउण-सावग-संकिण्णे पएसे एणिया णाम महातावसी । तीए आसम-पए अम्हे वि चिट्ठामो । एवं च परिवसंतस्स इओ थोएसुं चेय दियहेसुं एगागी सत्त-मेत्त-परिवारो संपत्तो तम्मि आसम-पएसम्मि कुमारो । तओ अम्हेहिं दिट्ठो । तत्थ य सब्भाव-णेह-णिब्भरालावो पयत्तो । पुणो गतुं समुट्ठिओ पुच्छिओ अम्हेहिं जहा 'कुमार, किं तुज्झ कुलं. किं वा णामं, कत्थ वा गंतुं ववसियं' ति । तओ तेण भणियं । 'सोम-वंस-संभवो दढवम्म-महराओ अओज्झाए परिवसइ । तस्स पुत्तो अहं, कुवलयचंदो मह णामं, गंतव्वं च मए भगवओ मुणिणो समाएसेण विजयाए पुरवरीए, कुवलयमालाए पलंबियस्स पादयस्स पूरणेण परिणेउं संबोहणेणं च' त्ति । एवं च भणिऊण गओ तं दक्खिणं दिसं कुमारो । भणियं च तीय तावसीय 'कुमार, महंतो उव्वेवो तुह गुरूणं, ता जइ तुमं भणसि ता साहेउ एस कीरो गंतूणं सरीर-पउत्ति' त्ति । भणियं च तेण 'को दोसो, पूयणिज्जा गुरुणो, जइ तीरइ गंतुं ता वच्चउ, साहेउ गुरूणं पउत्तिं । साहेयव्वं च मज्झ वयणेणं 'पायवडणं गुरूणं' ति भणमाणो पत्थिओ मण-पवण-वेओ कुमारो' त्ति ।*

000

* कुवलयमालाकथा (संक्षेप), सं.-डॉ. के. आर. चन्द्रा, अहमदाबाद, पृ. 36-38 ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

२. आरामसोहा-परिणयं

सा वि तस्सारामस्सामयरुक्खसरसाणि फलाणि जहिच्छं भुंजिय विगयच्छुहतण्हा तत्थेव ठिया सयलं दिणं। रयणीए उण गोणीओ वालिऊण पत्ता नियमंदिरं। आरामोऽवि तीए गिहं चल्लाइऊण समंतओ ठिओ। जणणीए उण सा वुत्ता—'पुत्ति ! कुणसु भोयणं,' तओ तीए वज्जरियं—'नत्थि मे अज्ज खुहं' त्ति उत्तरं काऊण सा नियसयणीए निद्दासुहमणुहवइ। जाए पच्चूससमए सा गावीओ गहिय तहेव गयाऽरण्णं। आरामोऽवि तप्पिट्ठीए गओ। एवं कुव्वंतीए तीए अइक्कंताणि कइवइ दिणाइं।

एगया मज्झण्हे सुहप्पसुत्ताए सिरिपाडलपुराहिवो चउरंगबलकलिओ विजयजत्ताए पडिनियत्तो जियसत्तु नाम राया आगओ तत्थ। तस्सआरामस्स रमणिज्जयाए अक्खित्तचित्तो मंति खंधावारनिवासत्थमाइसइ। नियासणं च चारुअम्बतरुतले ठाविय सयमुवविसइ। सिन्नं पि तस्स चउद्दिसिं पि आवासेइ। अवि य—

तरल-तरंगवलच्छा, बज्झंति समंतओ य तरुमूले।
कविकालं विज्जंति पल्लाणज्जुया य साहासु ॥१॥
बज्झंति निविडथुडपायवेसु मयमत्तदंतितंतीओ।
वसहकरहाइवाहण—परंपराओ ठविज्जंति ॥२॥

तम्मि य समए सिन्नकोलाहलेण विज्जुपहा विगयनिद्दा समाणी उट्ठिऊण करहाइपलोयणुत्तट्ठाओ गावीओ दूरंगयाओ पलोइय तासिं वालणट्ठा तुरियतुरियं रायाइलोयस्स पिक्खंतस्स वि पहाविया। तीए समं च करभतुरियाइसमेओ आरामोऽवि पत्थिओ। तओ समभंतो राया सपरियणो उट्ठिओ अहो किमेयमच्छरियं ति पुच्छइ मंतिं, सोऽवि जोडियकरसंपुडो रायं विन्नवेइ—"देव ! अहमेवं वियक्केमि, जइओ पएसाओ विगयनिद्दमुद्दा उट्ठिऊण करसंपुडेण नयणे चमढंती उट्ठित्ता पहाविया एसा बाला। इमीए सद्धिं आरामोऽवि, ता माहप्पमेयमेईए चेव संभाविज्जइ। एसा देवंगणा वि न संभाविज्जइ,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

निमेसुम्मेसभावेण नूणमेसा माणुसी।" तओ रण्णा वुत्तं—'मंतिराय ! एयं मे समीवमाणेह।' मंतिणावि धाविऊण सद्दो कओ। सा वि तस्स सद्दसवणेण आरामसहिया तत्थेव ठिया। तओ 'एहि त्ति मंतिणा वुत्ता। सा पडिभणइ—'मम गावीओ दूरं गयाओ।' तओ मंतिणा नियअस्सवारे पेसिऊण आणाविआओ गावीओ। सावि आरामकलिया रायसयासमाणीया। राया वि तीए सव्वमवि चंगमंगअवलोइय 'कुमारि' त्ति निच्छीय सागुराओ मंतिसंमुहमवलोएइ। तेणवि रण्णो मणोभिप्पायं नाऊण वज्जरिया। 'विज्जुपहा !—

नमिर-नरेसरसेहरअमंद-मयरंद-वासियकमग्गं।
रज्जसिरिइ सव्वक्की, होऊण इमं वरं वरमु' ॥३॥

तओ तीए साहियं- 'नाहं सवसा किन्तु जणणिजणयाणमायत्ता।' तओ मंतिणा उत्तं—को ते पिया ? कत्थ वसइ ?', तीए वि संलत्तं—'इत्थेव गामे अग्गिसम्मो माहणो परिवसइ।' तओ मंति तत्थ गमणाय रण्णा आइट्ठो। सो वि गामे गंतूण तस्स घरे पविट्ठो। तेणावि सागयवयणपुरस्सरं आसणे निवेसिऊण भणिओ 'जं करणिज्जं तं मे पसीय आइसह।' आमच्चेण भणियं—'तुम्हं जइ का वि कन्नगा अत्थि, ता दिज्जउ अम्ह सामिणो'। तेणावि "दिन्न" त्ति पडिस्सुयं, जं अम्ह जीवियमवि देवस्स संतियं किं पुण कन्नग त्ति ?", तओ अमच्चेण भणियं—"तुमं पायमवधारेसु देवस्स पासे"। सोऽवि य रायसमीवं गंतूण दिन्नासीसवयणो, मंतिणा बाहरियं वुत्तं, तो रण्णा सहत्थदिन्नासणे उवविट्ठो, भूवइणा वि कालविलंबमसहमाणेण गंधव्वविवाहेण सा परिणीया। पुव्विल्लयं नामं परावत्तिऊण 'आरामसोहं' ति तीए नाम कयं। माहणस्स वि दुवालस गामे दाऊण पणईणि चारामसोहं हत्थिखंधे आरोविऊण सनयरं पइ पत्थिओ पत्थिवो पमोयमुव्वहंतो।

000

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर

अद्यावधि प्रकाशित ग्रन्थ

१.	कल्पसूत्र (सचित्र)	: सम्पादक एवं हिन्दी अनुवादक महोपाध्याय विनयसागर अंग्रेजी अनुवादक- डॉ.मुकुन्द लाठ	200-00 अप्राप्य
२.	राजस्थान का जैन साहित्य	: 2500 वां निर्वाणवर्ष प्रकाशन	30.00
३.	प्राकृत स्वयं-शिक्षक	: डॉ. प्रेम सुमन जैन	15.00
४.	आगाम-तीर्थ	: अनु.- डॉ हरिराम आचार्य	10.00
५.	स्मरण-कला	: पं. धीरजलाल टो. शाह अनु.- मोहन मुनि 'शार्दूल'	15.00
६.	जैनागम दिग्दर्शन	: मुनि नगराज	20.00
७.	जैन कहानियाँ	: उपाध्याय महेन्द्र मुनि	4.00
८.	जाति-स्मरण कला	: उपाध्याय महेन्द्र मुनि	3.00
९.	हाफ ए टैल (अर्ध कथानक)	: कवि बनारसीदास अनु.- डॉ. मुकुन्द लाठ	150.00
१०.	गणधरवाद	: प. दलसुखभाई मालवणिया अनु.- प्रो. पृथ्वीराज जैन सम्पा.— म. विनयसागर	50.00
११	जैन इन्सक्रिप्सन ऑफ राजस्थान	: श्री रामवल्लभ सोमानी	70.00
१२.	एग्जेक्ट साइन्स फ्राम जैन सोर्सेज, पार्ट -I	: प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन	15.00
१३.	प्राकृत काव्य-मंजरी	: डॉ. प्रेम सुमन जैन	16.00
१४.	महावीर का जीवन— सन्देश : युग के सन्दर्भ में	: आचार्य काका कालेलकर	20.00

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org